पूर्व-पीठिका

समग्र विश्व साहित्य में, राम-कथा को कवियों और जनता में जितना सम्मान प्राप्त हुआ, उतना और किसी भी आख्यान को नहीं मिल सका, अत्यन्त प्राचीन काल से आती हुई राम-कथा को अपनी सारग्राहिणी प्रवृत्ति एवं प्रतिभा के बल पर गोस्वामीजी ने जिस 'राम-चरित-मानस' की रचना की, वह संसार-साहित्य में बेजोड़ है। उनकी रचना के सम्बन्ध में अनेक उच्चकोटि के विद्वानों और कला-समीक्षकों ने अनेक पुस्तकें लिखीं, किन्तु इस लोक-प्रिय कवि पर विभिन्न दृष्टिकोणों से पुस्तकें लिखने की अब भी आवश्यकता बनी हुई है।

गोस्वामीजी ने जिस राम-कथा को आधार मानकर हिन्दी-साहित्य में 'मानस' जैसे श्रेष्ठतम ग्रन्थ की रचना की, इस पुस्तक में उसके उद्गम-पल्लवन और प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। राम-कथा साहित्य जितना लिपि-बद्ध है, उसमें कहीं अधिक संत परम्परा में मौखिक भी सुरक्षित है। अत्यन्त प्राचीनकाल से दिगन्तव्यापी राम-कथा अनेक दृष्टिकोणों से ऋषि मुनियों, दार्शनिकों, विचारवेत्ताओं, तत्वज्ञानियों और कवियों द्वारा आदर पाती रही। विभिन्न राम-कथाओं से सार खींचकर एक ऐसे राम-रसायन की सृष्टि गोस्वामीजी ने की, जो मरे हुए समाज की मृतक आत्मा को, उसके खोए हुए आत्म-विश्वास को और आत्माभिमान को जाग्रत कर प्राणवन्त कर सका है। जीवन-दर्शन की महनीय चेतनाओं का कलात्मक ढंग से संवहन कर गोस्वामीजी ने अत्यन्त प्राचीन कथा-वस्तु को ऐसा दिव्यरूप प्रदान किया है, जो नित्य नवीन रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में राम-कथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टिकोणों से विचार किया गया है, जिसके अन्तर्गत विद्वानों की खोजों के आधार पर राम-कथा के मूलस्रोत की रूपरेखा

पुस्तक के नामकरण के सम्बन्ध में केवल इतना ही निवेदन है कि जब-जब राम-कथा का प्रसंग मेरे समक्ष उपस्थित होता है, तब-तब न जाने क्यों मेरे मानस-मन्दिर में सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदास की साधनानिष्ट मूर्ति चित्रित हो उठती है। प्रस्तुत पुस्तक के नामकरण में भी इसी रहस्य का स्वतः प्रेरित परिणाम है। मैं इसके विपरीत न जा सका। पाठकगण क्षमा करेंगे।

हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषद,
जौनपुर
नवम्बर–१९५७

सत्यदेव चतुर्वेदी

—·○:—

विषय-सूची

प्रथम-खण्ड

राम-कथा का उद्गम

द्वितीय-खण्ड

राम-कथा का पल्लवन

१—भारतीय-साहित्य में राम-कथा :—

अ—महाभारत की राम-कथा पृ० ७१

आ—पौराणिक साहित्य में राम-कथा :—

(१) हरिवंश, (२) विष्णुपुराण, (३) वायुपुराण, (४) भागवतपुराण, (५) कूर्मपुराण, (६) अग्निपुराण, (७) नारदपुराण, (८) ब्रह्मपुराण, (९) गरुड़पुराण, (१०) स्कन्दपुराण, (११) पद्मपुराण, (१२) ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, (१३) ब्रह्माण्डपुराण; १४) नृसिंहपुराण, (१५) विष्णु धर्मोत्तरपुराण, (१६) वह्निपुराण, (१७) शिवपुराण, (१८) श्रीमद्देवी भागवतपुराण, (१९) महाभागवत् (देवी) पुराण, (२०) वृहद्धर्मपुराण, (२१) कालिकापुराण, (२२) सौरपुराण। पृ० ७१ से ७९ तक।

इ—अन्य धार्मिक साहित्य में राम-कथा—

(१) योगवाशिष्ठ रामायण, (२) अद्भुतरामायण, (३) आनन्दरामायण, (४) कुछ कल्पितरामायणें पृ० ७९ से ८२ तक।

ई—अन्य संस्कृत-साहित्य में राम-कथा :—

(१) रघुवंश, (२) रावणवध अथवा सेतु बन्ध, (३) भट्टि-काव्य अथवा रावण वध, (४) जानकी-हरण, (५) अभिनन्द कृत राम-चरित, (६) रामायण-मंजरी तथा दशावतार चरित, (७) उदार राघव, (८) जानकी परिणय, (९) रामलिंगामृत और राम-रहस्य, (१०) प्रतिमा-नाटक, (११) अभिषेक नाटक, (१२) महावीर-चरित, (१३) उत्तर-राम-चरित, (१४) कुन्दमाला,

तृतीय-खण्ड

राम-कथा और तुलसीदास

पुस्तक में आये राम-कथा सम्बन्धी ग्रन्थों की सूची

१ अगस्त्य-रामायण
२ अगस्त्य-संहिता
३ अग्निपुराण
४ अद्भुत-रामायण
५ अध्यात्म-रामायण
६ अनर्घ-राघव
७ अनामकं जातकम्
८ अभिधर्म महाविभाषा
९ अभिषेक-नाटक
१० आदि-रामायण
११ आनन्द-रामायण
१२ आश्चर्य चूड़ामणि
१३ उत्तर-राम-चरित
१४ उदार-राघव
१५ उपनिषद् अंक (गीता प्रेस)
१६ ऋग्वेद
१७ ऐतरेय ब्राह्मण
१८ कंबन रामायण
१९ कल्याण' (मासिक-पत्रिका)
२० कविता-कौमुदी (श्रीरामनरेश त्रिपाठी)
२१ कवितावली (डा० माता प्रसाद गुप्त द्वारा की गयी टीका)
२२ काकाविन-रामायण
२३ काठक गृह्य-सूत्र
२४ काठक-संहिता
२५ कालिका-पुराण
२६ काश्मीरी रामायण
२७ कुन्दमाला
२८ कूर्म पुराण
२९ कृत्तिवास रामायण
३० खोतानी रामायण
३१ गरुड़-पुराण
३२ गर्ग संहीता
३३ गीतावली (गीता प्रेस)
३४ गोविन्द-रामायण
३५ गो० तुलसीदास (रामचन्द्रशुक्ल)
३६ गो०तुलसीदास (श्यामसुन्दरदास)
३७ गोस्वामी तुलसीदास (श्रीश्रीकृष्णदास)
३८ चम्पू-रामायण
३९ चान्द्र-रामायण
४० जातकमाला
४१ जानकी परिणय
४२ जानकी-हरण
४३ जैन-साहित्य और इतिहास—(श्रीनाथूराम प्रेमी)
४४ जैमिनी गृह्यसूत्र
४५ तिब्बती रामायण
४६ तुलसी-दर्शन(श्रीबलदेवप्रसाद मिश्र)

४७ तुलसीदास और उनकी कविता—
(श्रीरामनरेश त्रिपाठी)
४८ तुलसीदास और उनका युग—
(डा० राजपति दीक्षित)
४९ तैत्तरीय ब्राह्मण
५० तोरावे रामायण
५१ त्रिपथगा (मासिक-पत्रिका)
५२ दशकुमार-चरित
५३ दशरथ-कथानम्
५४ दशरथ-जातक
५५ दशावतार-चरित
५६ दुरन्त-रामायण
५७ देव-रामायण
५८ दोहावली (गीताप्रेस)
५९ द्विपाद-रामायण
६० नागरी-प्रचारिणी पत्रिका
६१ नारद-पुराण
६२ नारदीय-भक्ति सूत्र
६३ नृसिंह-पुराण
६४ पंच-तन्त्र
६५ पउम चरिय (विमल सूरि)
६६ पउम चरिय (स्वयंभू देव)
६७ पद्म-पुराण
६८ पारस्कर गृह्यसूत्र
६९ प्रतिमा नाटक
७० प्रसन्न राघव
७१ बाल-रामायण
७२ ब्रह्म-पुराण
७३ ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण
७४ ब्रह्माण्ड-पुराण
७५ भक्ति-सूत्र
७६ भट्टि-काव्य
७७ भागवत-पुराण
७८ भागवतांक (गीता प्रेस)
७९ भारतीय-साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ—(श्रीपरशुराम चतुर्वेदी)
८० भुशुण्डी-रामायण
८१ भावार्थ-रामायण
८२ मंजुल-रामायण
८३ मत्स्य-पुराण
८४ महा-नाटक
८५ महावीर-चरित
८६ महाभागवत (देवी) पुराण
८७ महाभारत
८८ महारामायण
८९ 'मानस' की राम-कथा—
(श्रीपरशुराम चतुर्वेदी)
९० मानस की रूसी-भूमिका'—
(अनु०-डा० केसरीनारायण शुक्ल)
९१ 'मानस'-व्याकरण (गीता प्रेस)
९२ मूल-रामायण
९३ मैन्द-रामायण
९४ मोल्ला-रामायण
९५ योगवाशिष्ठ
९६ रघुवंश

९७ राम उत्तरतापनीयोपनिषद्
९८ रामकियेन
९९ राम-कथा—(रेवरेण्ड फादर कामिलबुल्के)
१०० रामचन्द्रिका
१०१ राम-चरित—(अभिनन्द कृत)
१०२ राम-चरित-मानस
१०३ राम-चरित-मानस की भूमिका
१०४ राम पूर्वतापनीयोपनिषद्
१०५ राम-रहस्य
१०६ राम-रहस्योपनिषद्
१०७ रामलिंगामृत
१०८ रामायण मणिरत्न
१०९ रामायण महामाला
११० रावणवह
१११ रे श्रामकेर
११२ लोमश-रामायण
११३ वह्नि पुराण
११४ वामन-पुराण
११५ वाल्मीकि रामायण
११६ विनय-पत्रिका (श्रीवियोगी हरिकृत टीका)
११७ विष्णु धर्मोत्तर पुराण
११८ बृहद्कोशल खण्ड
११९ बृहद् संहिता
१२० बृहद्धर्म-पुराण
१२१ शतपथ-ब्राह्मण
१२२ शिव-पुराण
१२३ श्रवण-रामायण
१२४ श्रीमद्देवी भागवत पुराण
१२५ संबुला जातक
१२६ संवृत-रामायण
१२७ संस्कृति के चार अध्याय—(श्री 'दिनकर'जी)
१२८ सांस्कृतिक-भारत (श्रीभगवत-शरण उपाध्याय)
१२९ सुवर्चस-रामायण
१३० सूर सागर
१३१ सेरत-काण्ड
१३२ सेरीराम
१३३ सौपद्म-रामायण
१३४ सौर-रामायण
१३५ सौहार्द-रामायण
१३६ स्कन्द-पुराण
१३७ स्वायम्भू रामायण
१३८ हनुमन्नाटक
१३९ हरिवंश
१४० हिन्दी-साहित्य का इतिहास—(श्रीरामचन्द्र शुक्ल)
१४१ हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा)
१४२ हिन्दुत्व (श्रीरामदास गौड़)
१४३ हिन्दू-संस्कृति-अंक (गीता प्रेस)
१४४ हिन्दी-काव्य-धारा (श्रीराहुल-सांकृत्यायन)
१४५ हिन्दी-ऋग्वेद

—०—

प्रथम-खण्ड

राम-कथा का उद्गम

अ-ऐतिहासिक दृष्टिकोण

आ-आध्यात्मिक दृष्टिकोण

ऐतिहासिक–दृष्टिकोण

(१) वैदिक साहित्य में राम-कथा

आचार्यों का विश्वास है कि वेद उपलब्ध समग्र विश्व-साहित्य में प्राचीनतम् हैं। वेदों में भी ऋग्वेद सबसे पुराना है। इसके दशम मण्डल में राम और राम-कथा के अनेक पात्रों के नाम का उल्लेख मिलता है; जैसे इक्ष्वाकु, दशरथ, राम और सीता आदि।

इक्ष्वाकु—"यस्येक्ष्वाकुरुप मते रेवान् मरायुयेधते" अर्थात् जिसकी सेवामें धनवान् और प्रतापवान् इक्ष्वाकु की वृद्धि होती है।—(ऋ० १०–६०–४)

दशरथ—"चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।"

अर्थात् 'दशरथ के चालीस भूरे रंग के घोड़े एक हजार घोड़ों के दल का नेतृत्व ले रहे हैं।'—(ऋग्वेद १–१२६–४)।

राम—"प्रतद् :शीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु।
यैयुक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥"

अर्थात् 'मैंने दुःशीम पृथवान, वेन और राम इन यजमानों के लिये यह (सूक्त) गाया है। इन्होंने पाँच सौ (घोड़े अथवा रथ) जुतवाए (जिससे) उनका मुझ पर अनुग्रह चारों ओर फैल गया है।'—(ऋ० १०–९३–१४)

सीता—यह नाम जो दूसरी प्रार्थना वैदिक साहित्य में मिलता है, वह 'सीरा युंजति' मंत्र का एक अंश है। :—

"सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥"

—(ऋ० ४–५७)

अर्थात् "हे सीते! तेरी हम वन्दना करते हैं, हे सौभाग्यवती! (कृपा-दृष्टि से) हमारी ओर अभिमुख हो, जिससे तू हमारे लिए हितकांक्षिणी होवे

और जिससे तू हमारे लिए सुन्दर फल देनेवाली होवे।" इसके अतिरिक्त सीता को इन्द्रपत्नी के रूपमें भी पारस्कर गृह सू० में वर्णित किया गया है:--

"यस्या भावे वैदिक लौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम्।

इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा।।"

अर्थात्—इन्द्रपत्नी सीता का मैं आवाहन करता हूँ, जिसके तत्त्व में वैदिक और लौकिक (दोनों प्रकार के) कार्यों की विभूति निहित है। वह सीता सब कार्यों में निरंतर मेरी सहायता किया करे। स्वाहा।"

—(दे० पारस्कर गृ० सू० २-१७-४)

इसी प्रकार हरिवंश के द्वितीय भाग में दुर्गा की एक स्तुति के अन्तर्गत-"कर्षुकाणां च सीतेति भूतानां धरणीति च।" [1] अर्थात् 'तू कृषकों के लिए सीता है तथा प्राणियों के लिए धरणी'—(हरिवंश-२-३-१४)

इस प्रकार ऋग्वेद में इक्ष्वाकु, दशरथ तथा राम और सीता का नामोल्लेख मिलता है। इक्ष्वाकु, दशरथ और राम ऋग्वेद से ही प्रभावशाली ऐतिहासिक राजा के रूप में वर्णित हैं इतना तो निर्विवाद है। किन्तु सीता को, जो वेद में उनके नाम का उल्लेख मिलता है, विद्वानों का अनुमान है कि वह लांगल पद्धति (हल से बनाई गयी खेत में रेखा या कूण) का पर्याय है, इसीलिए इन्द्रपत्नी और पर्जन्यपत्नी भी कहते थे [2]। जो हो, किन्तु इतना तो मानना ही होगा, कि वेद में अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम जो उल्लिखित मिलते हैं, उनमें से कुछ के नाम रामायण के पात्रों के नामों से ऐतिहासिक संबंध भली भाँति जोड़े जा सकते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

राम-कथा का मूलस्रोत खोजते-खोजते पण्डितों ने एक यह अनुमान लगाया

१—इससे विद्वानों ने अनुमान किया है कि राम-कथा की उत्पत्ति के पूर्व ही सीता कृषि की अधिष्ठात्रीदेवी के रूप में वैदिक-साहित्य में पूजित हो चुकी थी, पीछे जब अयोनिजा सीता की कल्पना की जाने लगी, जिन्हें जनक ने हल चलाते हुए खेत में पाया था, तब उसपर वैदिक सीता का प्रभाव स्वाभाविक रूप से पड़ गया—देखिए श्रीदिनकरजी कृत 'संस्कृति के चार अध्याय' पृ० ६५

२—दे० रेवरेण्ड फादर कामिल बुल्के कृत राम-कथा।

है कि वेद (ऋग्वेद के दशम मण्डल) में जिन राम का उल्लेख मिलता है, वे वास्तव में दाशरथि रामचन्द्र ही थे (दे० श्रीचिन्तामणि वैद्य का मत)।

कुछ विद्वानों का मत है कि इन्द्र नाम से पूजित व्यक्तित्व (वेदमें) कालक्रम से राम बन गया। इन्द्र ने वृत्रासुर को पराजित किया था। राम-कथा के अन्तर्गत यही वृत्रासुर रावण का रूप धारण करता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल सूक्त ६ में जो कथा पणियों द्वारा गायों को गुफा में छिपाने और इन्द्र द्वारा उन्हें मुक्त कराने की आती है, वही कालान्तर में विकसित होकर सीता-हरण का रूप धारण करती है। किन्तु मेरे अनुमान से सीता-हरण ऐतिहासिक घटना है वह रूपक नहीं है।

(२) आदि रामायण का काल-निर्णय

ऋग्वेद के आविर्भावकाल के सम्बन्ध में विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। कुछ लोग इसका आविर्भावकाल ईस्वीसन् से पचहत्तर हजार वर्ष पूर्व और कुछ लोग ईस. से मात्र दो सौ वर्ष पूर्व मानते हैं, कुछ लोग ६५ हजार वर्ष ई० पूर्व (प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् जैकोबी का मत), कुछ लोग ५० से ७५ हजार वर्ष ई० पूर्व (डा० श्रीअविनाशचन्द्रदत्त का मत), कुछ लोग अठारह से ५० हजार वर्ष ई० पूर्व (श्रीरामगोविन्द त्रिवेदी का मत), कुछ लोग ई० पूर्व २५ हजार वर्ष (श्रीविण्टरनिज का मत) और मैक्समूलर इसका आविर्भावकाल ईस्वी सन् से एक हजार से बारह सौ वर्ष पूर्व मानते हैं। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के मतानुसार ब्राह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल ४५ सौ वर्ष ई० पूर्व है. उनका कथन है कि 'सारे मंत्र एक साथ नहीं बने। ऋषियों और उनके वंशधरों ने समय-समय पर हजारों वर्षों में मंत्र बनाए। इस तरह कुछ ऋचाएँ दस हजार वर्षों की हैं, कुछ साढ़े आठ हजार वर्षों की और कुछ सात-साढ़े-सात हजार वर्षों की। सभी प्राचीनतम ऋचाएँ ऋग्वेद की ही हैं।" —(हिन्दी ऋग्वेद)

उपर्युक्त सभी मतों में प्रायः विण्टरनिज् के मत से ही श्रीजयचन्द विद्यालंकारजी सहमत हैं। उनका मत है कि "वेदों को संहिताओं में लिखने की बात तब विद्वानों को सूझी होगी, जब लेखन कला का आविष्कार हुआ होगा। भारत में लेखनकला का प्रचलन १८ सौ वर्ष ईस्वी पूर्व हुआ और तभी से

संहिताएँ लिखी जाने लगीं। विद्वानों का अनुमान है कि जब लेखनकला का प्रचलन नहीं था, तब वेदों की रचना मौखिक ही हुआ करती थी, लोग उन्हें मौखिक ही कण्ठ रखते थे, इसीसे वेदों का नाम 'श्रुति' भी था। कालान्तर में जब मंत्रों की संख्या अधिक हो गयी, तब उन्हें संहिताओं के रूप में विभाजित किया गया।"

लेखनकला के प्रचलन का समय कुछ विद्वान् आर्यों के भारत आगमन के पूर्व ही मानते हैं[१] उनका अनुमान है, मइंबोदरो में जिस लिपि के निशान मिले हैं, उसी को देखकर आर्यों ने लिखना सीखा। आर्यों का भारत में आकर बस जाने का समय आज से ३५०० वर्ष पूर्व कुछ विद्वान् मानते हैं।[२] अतः लेखनकला का प्रचलन आज से लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व ही हो चुका था।

अधिकांश विद्वानों ने राम को वाल्मीकि के समय में विद्यमान माना है और ऋग्वेद के दशम मण्डल की रचना—जिसमें राम और राम-कथा के अनेक पात्रों के नाम का उल्लेख मिलता है—पाश्चात्य अधिकांश विद्वानों के मतानुसार १५०० वर्ष ई० पूर्व तथा भारतीय कुछ विद्वानों—तिलक आदि ने चार हजार वर्ष ई० पूर्व हुई, माना है। यदि वेद में वर्णित 'राम' रामायण के ही 'राम' ऐतिहासिक पुरुष हैं और राम वाल्मीकि के समकालीन थे तो मानना होगा कि वाल्मीकि का भी समय चार हजार वर्ष ई० पूर्व है। अतः वाल्मीकि-रामायण की रचना भी ई० सन् से चार हजार वर्ष पूर्व के आसपास ही हुई होगी। विचित्रता तो इस बात की है कि जो रामायण वाल्मीकि कृत मिलती है, उससे पहले भी राम-कथा लिपिबद्ध हुई थी। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभारत में उससे कुछ श्लोक उद्धृत किया है। सम्भवतः उस रामायण के रचयिता च्यवन ऋषि थे, किन्तु प्रसिद्ध वह रामायण हुई जिसे उसी कुल के वाल्मीकि ने बाद में लिखा। वह रामायण इतनी सुन्दर और प्रसिद्ध हुई कि च्यवनवाली कथा उससे

१—देखिए श्रीदिनकरजी कृत-संस्कृति के चार अध्याय पृ० ३१।
२—देखिए श्रीभगवतशरण उपाध्यायजी कृत—'सांस्कृतिक भारत' पृ०२६

रामायण के प्राचीनतम कालनिर्णय के सम्बन्ध में अन्य उदाहरण देते हुए श्रीदिनकरजी और भी लिखते हैं कि "बौद्ध और जैन ग्रन्थों में राम का जो आदरपूर्वक उल्लेख किया गया है, उसका भी कारण यही होगा कि रामायण के चलते राम तब तक अत्यन्त आदरणीय चरित्र के रूप में प्रख्यात हो चुके होंगे।" दूसरी बात है 'बौद्ध कवि कुमारलात (१०० ई०) की कल्पना-मंडितिका में सर्वसाधारण में रामायण के वाचन का उल्लेख है।" तीसरी बात है "अश्वघोष के बुद्ध-चरित से यह विदित होता है कि वह वाल्मीकि रामायण से परिचित और प्रभावित था।" चौथी बात है "दशरथ जातक में वाल्मीकि का एक श्लोक पालि रूप में पाया जाता है।" पाँचवीं बात है "महाभारत के वन-पर्व में जो रामोपाख्यान है, वह वाल्मीकि रामायण का ही संक्षिप्त रूप है। महाभारत से यह भी सूचित होता है कि उसकी रचना के समय राम ईश्वरत्व प्राप्त कर चुके थे और उनसे सम्बद्ध स्थान तीर्थ माने जाते थे। शृंगवेरपुर और गोप्रतार का उल्लेख इसी रूप में मिलता है।" छठीं बात है 'पाटलिपुत्र को अजातशत्रु ने बसाया था, जो प्रायः बुद्ध का समकालीन था; किन्तु पाटलिपुत्र का उल्लेख रामायण में नहीं है। अतः रामायण बुद्ध से पहले की रचना है।" सातवीं बात है "बुद्ध के समय कोशल का राजा प्रसेनजित था, उसकी राजधानी श्रावस्ती में थी, लेकिन रामायण में श्रावस्ती लव की राजधानी बतायी गयी है। अयोध्या का नाम भी बौद्ध ग्रन्थों में साकेत मिलता है। इससे यह अनुमान निकलता है कि रामायण उस समय रची गयी, जब अयोध्या उजड़ी नहीं थी, न उसको राजधानी हटाकर श्रावस्ती ले जायी गयी थी, न कोशल जनपद को साकेत कहने का रिवाज ही चला था।" और आठवीं बात है कि "रामायण में विशाला और मिथिला इन दो राज्यों के उल्लेख हैं, किन्तु बुद्ध के समय केवल वैशाली का अस्तित्व था।"[१]

रेवरेण्ड फ़ादर कामिलबुल्के के मतानुसार वेद में जो राम-कथा के पात्रों का नामोल्लेख मिलता है, वे सभी स्फुट और स्वतंत्र हैं। राम-कथा संबंधी आख्यान-काव्य की रचनाएँ वास्तविकरूप से वैदिककाल के बाद इक्ष्वाकु-वंश

१—देखिये *श्रीदिनकरजी* कृत-'संस्कृति के चार अध्याय' पृ० ६७ तथा ६८

के सूतों द्वारा आरम्भ हुई। उस समय वाल्मीकि ने इस स्फुट आख्यान-काव्य के आधार पर राम-कथा विषयक एक विस्तृत प्रबन्ध-काव्य की रचना की, जो समस्त प्रचलित राम-कथा साहित्य का मूलस्रोत है। इस वाल्मीकि कृत आदिरामायण में अयोध्या काण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक की कथावस्तु का वर्णन था तथा बौद्ध अभिधर्म महाविभाषा के अनुसार इसका विस्तार केवल १२००० श्लोक था। आजकल वाल्मीकि रामायण के तीन पाठ प्रचलित हैं—दाक्षिणात्य, गौडीय तथा पश्चिमोत्तरीय। कथानक के दृष्टिकोण से तीनों पाठों में जो श्लोक पाए जाते हैं, वे एक तिहाई से भी कम हैं, इसके अतिरिक्त इनका पाठ भी पूर्णतया एक नहीं है। इसका कारण यह है कि बाल्मीकि कृत आदिरामायण का कोई एक लिखित रूप प्रामाणिक नहीं माना गया है। वह कई शताब्दियों तक मौलिक रूप से प्रचलित था, जिससे उसका पाठ स्थिर न रह सका। काव्योपजीवी कुशीलव अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रख कर लोकप्रिय अंश बढ़ाते भी थे। इस प्रकार आदिरामायण का कलेवर बीच के प्रक्षेपों के कारण बढ़ने लगा। इसके अतिरिक्त राम कौन थे? सीता कौन थी? इनका जन्म तथा विवाह कब और किस प्रकार मनाया गया? रावण कौन था? रावण-बध के बाद राम-सीता का जीवन कैसे बीता? उनके कौन संतति उत्पन्न हुई? आदि, ये अत्यन्त स्वाभाविक प्रश्न थे। जनसाधारण की इस जिज्ञासा को संतुष्ट करने के लिए बालकाण्ड तथा उत्तर काण्ड के प्रारम्भिक रूप की रचना कर ली गयी। अतः विकास का प्रथम सोपान यह है कि राम-कथा की कथावस्तु रामायण (राम+अयन अर्थात् राम का पर्यटन) न रह कर पूर्ण रामचरित के रूप में विकसित हुई। इस समय तक रामायण नर-काव्य ही रहा और राम आदर्श क्षत्रिय के रूप में भारतीय जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किए गए थे। इसका आभास भगवद्गीता के उस स्थल से मिलता है, जहाँ कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि शस्त्र धारण करनेवालों में मैं राम हूँ—"रामः शस्त्रभृतामहम्"।[१]

वाल्मीकि रामायण के टीकाकारों ने भी बालकाण्ड के दूसरे से चौथे सर्ग तक (*तीन सर्गों*) को *आदिकाव्य का भूमिकात्मक* माना है, जो वाल्मीकि के

१—देखिए फादर कामिलबुल्के कृत—'राम-कथा' पृ० ४८०—४८१।

किसी शिष्य-प्रशिष्य द्वारा रचा गया है। टीकाकारों में श्रेष्ठ आचार्य प्रवर श्रीगोविन्दराज भी लिखते हैं:—

'सर्गत्रयमिदं केनचिद्वाल्मीकि शिष्येण रामायण निर्वृत्यनन्तरं निर्माय वैभव प्रकटनाय संगमितं। यथा याज्ञवल्क्यस्मृत्यादौ यथैव तत्र विज्ञानेश्वरेण व्याहृतं।'

उपर्युक्त मान्यताओं के अतिरिक्त कुछ विद्वान यह भी प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं कि रामायण की रचना बुद्ध के पश्चात् हुई और वह महाभारत के भी बाद की रचना है; परन्तु महाभारत में रामायण की कथा का उल्लेख है, किन्तु रामायण में महाभारत के किसी पात्र की कथा का वर्णन नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में बुद्ध और महाभारत के पश्चात् की रचना इसे कैसे माना जा सकता है। फ़ादर कामिलबुल्के अरण्यकाण्ड में राम-सीता संवाद के प्रसंग में जब सीता राम से कहती हैं कि हे राम आप में तीसरा दोष मोहवश बिना वैर दूसरों का वध करना उपस्थित होना चाहता है:—

"तृतीयं यदिदं रौद्रं परं प्राणाभिहिंसनम्" आदि वर्णन बौद्ध अहिंसा का स्मरण दिलाते हैं। यद्यपि ये वर्णन प्रक्षिप्त भी माने जा सकते हैं; किन्तु राम का अत्यन्त कोमल और शान्त स्वभाव उनकी सौम्यता आदि को ध्यान में रखकर स्वीकार करना पड़ता है कि वे मुनि पहले हैं और क्षत्रिय बाद में। अतः इनके चरित्र-चित्रण में किंचित् परोक्ष बौद्ध प्रभाव देखना निर्मूल कल्पना नहीं प्रतीत होती है।[१] किन्तु यह आनुमानिक मत है, अहिंसा की कल्पना बुद्ध से बहुत पहले अर्थात् अनादिकाल से चली आ रही है।

इसी प्रकार महाभारत के संबंध में एक प्रसंग उद्धृत करना आवश्यक समझा जाता है। जिसके अनुसार फादर कामिलबुल्के लिखते हैं कि 'बहुत सम्भव है कि 'भारत' अर्थात् 'महाभारत' का प्राचीनतम रूप रामायण के पूर्व उत्पन्न हुआ था। 'भारत' (चतुर्विंशति सहस्री) तथा 'महाभारत' (शतसहस्री) इन दोनों सोपानों का उल्लेख महाभारत में मिलता है (दे० १—१—६१ पूना संस्करण) प्रायः समस्त विद्वानों की सम्मति से रामायण का रचनाकाल 'भारत तथा 'महाभारत' के बीच में माना जाता है। शांखायन आदि सूत्रों

१—देखिए 'राम-कथा' पृ० १०१

तथा पाणिनि में 'भारत' के विषय में निर्देश मिलते हैं, रामायण संबंधी नहीं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'भारत' की रचना रामायण के पूर्व हो चुकी थी, इतना असंदिग्ध है कि 'भारत' तथा रामायण स्वतंत्र रूप से उत्पन्न हुए, 'भारत' पश्चिम में तथा रामायण पूर्व में। दोनों के सम्पर्क के पश्चात् 'भारत' ने महाभारत का रूप धारण कर लिया है।[१]

महाभारत की रचना के संबंध में विचार करते हुए श्रीशान्तनुविहारी द्विवेदीजी लिखते हैं:—वर्त्तमानकाल में जो अष्टादश पर्व का महाभारत उपलब्ध होता है, यह भगवान व्यास के बनाए हुए महाभारत का संक्षिप्त रूप है। भगवान व्यास ने पहले सौ पर्वों की 'महाभारत' की रचना की, जिसके पूर्ण होने पर कारण विशेष से उन्होंने अपने दो शिष्यों - जैमिनी और वैशम्पायन से 'महाभारत' को संक्षिप्त कर देने का आदेश दियाः—

"एतत् पर्व शतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना। ततस्तु सूत पुत्रेण रामहर्षणिनापुरा ॥ कथितं नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु।"

जैमिनिकृत महाभारत का केवल जैमिनियाश्वमेध ही प्रचलित है, शेष भाग सुलभ नहीं है। वैशम्पायन कृत महाभारत ही आजकल उपलब्ध है। "समासो भारतस्यायम्' इस युक्ति से तो यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है ।"[२] अतः स्पष्ट है कि 'भारत' के रचयिता वेदव्यास थे, जो कृष्ण के समकालीन थे। ऐसी दशा में रामायण के पूर्व 'भारत' की रचना हो चुकी थी, यह कैसे माना जा सकता है ?

राम-कथा के संबंध में विचार करते हुए श्रीदिनकरजी लिखते हैं कि रामायण की रचना तीन कथाओं को लेकर पूर्ण हुई। पहली कथा तो अयोध्या के राजमहल की है, जो पूर्वी भारत में प्रचलित रही होगी, दूसरी रावण की, जो दक्षिण में प्रचलित रही होगी और तीसरी किष्किन्धा के वानरों की, जो वन्य जातियों में प्रचलित रही होगी। आदिकवि ने तीनों को जोड़कर रामायण की रचना की। किन्तु उससे भी अधिक संभव यह है कि राम सचमुच ही

१—देखिए 'राम-कथा' पृ० ४१
२—देखिए भागवतांक—(गीता प्रेस, गोरखपुर पृ० ५७।

ऐतिहासिक पुरुष थे और सचमुच ही उन्होंने किसी वानर जाति की सहायता लंका पर विजय पायी थी। हाल से यह अनुमान भी चला है कि हनुमान नामक एक द्रविण-शब्द 'आण-मन्दि' से निकला है, जिसका अर्थ 'नर-का होता है। यहाँ फिर यह बात उल्लेखनीय हो जाती है कि ऋग्वेद में भ 'वृषाकपि' का नाम आया है। वानरों और राक्षसों के विषय में भी अब य अनुमान प्रायः ग्राह्य हो चला है कि ये लोग प्राचीन विन्ध्य-प्रदेश और दक्षिण भारत की आदिवासी आर्येतर जातियों के सदस्य थे, या तो उनके मुख वानरों के समान थे, जिससे उनका नाम वानर पड़ गया, अथवा उनकी ध्वजाओं पर वानरों और भालुओं के निशान रहे होंगे। रामायण में जो तीन कथाएँ हैं। उनके नायक क्रमशः राम, रावण और हनुमान हैं और ये तीन चरित, तीन संस्कृतियों के प्रतीक हैं, जिनका समन्वय और तिरोधान वाल्मीकि ने एकही काव्य में दिखाया है। सम्भव है, यह बात सच हो कि 'राम, रावण तथा हनुमान के विषय में पहले स्वतंत्र आख्यान-काव्य प्रचलित थे और इनके संयोग से रामायण-काव्य की उत्पत्ति हुई है।'[१]

राम-कथा संबंधी प्रथम लिपिबद्ध साहित्य वाल्मीकि रामायण जब माना जाता है और राम वाल्मीक के समकालीन माने जाते हैं, तो रामायण का रचना-काल कितना प्राचीन माना जा सकता है, इसकी कल्पना की जा सकती है। नीचे एक तालिका दी जा रही है, जिसमें विश्व के मुख्य-मुख्य प्रचलित संवतों का विवरण उपस्थित किया गया है. जिससे रामायण की प्राचीनता पर कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य ही पड़ता है। भले ही निचे लिखी तालिका के अनुसार रामायण और राम का आविर्भाव काल प्राचीन न माना जाय, किन्तु यह तो मानना हो होगा कि इनका आविर्भावकाल अत्यन्त प्राचीन है।

'कल्याण' मासिक पत्रिका के 'हिन्दू-संस्कृति अंक' में प्रकाशित ज्योतिर्विद् पं० श्रीदेवकीनन्दनजी खेड़वाल के लेख से यहाँ सहायता लेकर उद्धृत किया जाता है। खेड़वाल जी लिखते हैं:—

"काल-गणना में कल्प, मन्वन्तर, युगादि के पश्चात् संवत्सर का नाम

१—देखिये श्रीदिनकरजी कृत 'संस्कृति के चार अध्याय' पृ० ६८।

आता है। युगभेद से सत्ययुग में ब्रह्म-संवत् त्रेता में वामन संवत् परशुराम-संवत् (सहस्रार्जुन-वध से) तथा श्रीराम-संवत् (रावण-विजय से), द्वापर में युधिष्ठिर-संवत् और कलि में विक्रम, विजय, नागार्जुन और कल्कि संवत् प्रचलित हुए या होंगे। शास्त्रों में इस प्रकार भूत एवं वर्तमान काल के संवतों का वर्णन तो है ही भविष्य में प्रचलित होने वाले संवतों का भी वर्णन मिलता है। इन संवतों के अतिरिक्त अनेक राजाओं तथा सम्प्रदाया-चार्यों के नाम पर संवत् चलाए गए हैं। भारतीय संवतों के अतिरिक्त विश्व में और भी धर्मों के संवत् हैं। तुलना के लिए उनमें से प्रधान-प्रधान संवतों की तालिका दी जा रही है :—

भारतीय

नाम संवत्	वर्तमान वर्ष
१—कल्पाब्द	१,६७,२६,४६,०५०
२—सृष्टि-संवत्	१,६५,५८,८५,०५०
३—वामन-संवत्	१,६६,०८,८६,०५०
४—श्रीराम-संवत्	१,२५,६६,०५०
५—श्रीकृष्ण-संवत्	५,१७५
६—युधिष्ठिर-संवत्	५०५०
७—बौद्ध-संवत्	२,५२४
८—महावीर जैन-संवत्	२,४२६
६—श्रीशंकराचार्य-संवत्	२,२२६
१०—विक्रम-संवत्	२,००६
११—शालिवाहन-संवत्	१,८७१
१२—कलचुरी-संवत्	१,७०१
१३—वलभी-संवत्	१,६२६
१४—फसली-संवत्	१३६०
१५—बँगला-संवत्	१३५६
१६—हर्षाब्द-संवत्	१३४२

विदेशीय

१—चीनी-सन्	....	...	...	९,६०,०२,२४७
२—खताई-सन्	....	...	...	८,८८,३८ ३२०
३—पारसी-सन्	....	...	...	१,८९,९१७
४—मिश्री-सन्	....	...	...	२७,६०३
५—तुर्की-सन्	....	...	...	७,५५६
६—आदम-सन्	....	...	...	७,३०१
७—ईरानी-सन्	....	...	...	५,९५४
८—यहूदी-सन्	....	...	...	५,७१०
९—इब्राहीम-सन्	....	...	...	४,३८९
१०—मूसा-सन्	....	...	...	३,६५३
११—यूनानी-सन्	....	...	...	३,५२२
१२—रोमन सन्	...	...	...	२,७००
१३—ब्रह्म-सन्	....		...	२,४९०
१४—मलयकेतु-सन्	....	...	...	२,२६१
१५—पार्थियन-सन्	....	...	...	२,१९६
१६—ईस्वी-सन्	....	...	...	१९४९
१७—जावा-सन्	....	...	...	१८७५
१८—हिजरी-सन्	....	...	...	१,३१९ ।

जो हो, राम-कथा की रचना का समय और राम का समय अत्यन्त प्राचीनतम है इसमें सन्देह नहीं। विद्वानों के मतानुसार जब लिपि का आविष्कार नहीं हुआ

---

१. ऊपर संवतों की जो तालिका दी गयी है उसे खेड़वालजी ने पौर माघ संवत् २००६ तदनुसार ता० ६ जनवरी सन् १९५० के 'हिन्दू-संस्कृति' विशेषांक में छपने के लिए दिया था, अतः संवत् २००६ या सन् १९५० के पश्चात् इधर के वर्षों को और भी जोड़कर (वर्तमान समय तक की गणना के लिए) गिनना चाहिए।

था, उससे पहले जो राम-कथा प्रचलित थी वह मौखिक थी। यहाँ बाल्मीकि रामायण से भी एक प्रमाण मिलता है:—

'कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा ॥ ४ ॥
ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च ।
रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च ॥ ५ ॥

—(वा० रामायण, उत्तरकाण्ड ६३)

इससे स्पष्ट है 'रामायण' का प्रचलन मौखिक था, वह लिपि-बद्ध नहीं था। सारे देश में लव, कुश उसे गाकर सुनाते थे, क्योंकि 'रामायण' उन्होंने कंठस्थ कर लिया था। 'रामायण' का कोई ग्रन्थ नहीं था, प्राचीन फल स्तुति श्रवणफल-स्तुति ही है:—

"श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ।"—(६-१२८-१०६)

किन्तु 'रामायण' में एक स्थल पर जो उसके पढने और लिखने का संकेत मिलता है, वह क्षेपक है, क्योंकि यह अंश बाल्मीकि रामायण के गौडीय पाठ में नहीं मिलता। वह उल्लेख निम्न है:—

"रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा ॥ ११६॥
भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम् ।
ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासांस्त्रिविष्टपे ॥१२०॥

—(६. १२८)

अतः आदि रामायण का रचनाकाल अत्यन्त प्राचीनकाल प्रमाणित होता है—लिपि के आविष्कार के पहले मौखिक रूप में।

ऋग्वेद में राम-कथा के अनेक पात्रों का जो नामोल्लेख मिलता है, उसे श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी रूपात्मक ढंग से राम-कथा से सम्बन्धित पात्रों का ही नाम मानते हैं, उनके विचारों का विवरण निम्न प्रकार है:—

राम कथा के 'सीता' नामक पात्र का जो उल्लेख वैदिक-साहित्य के अन्तर्गत अनेक बार आया है, उसका दो अर्थों का अभिप्राय हो सकता है। १—कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण (२-३-१०) के अनुसार सीता-सावित्री प्रजापति की पुत्री हैं, जो सोम राजा के साथ विवाह करती हैं 'प्रजापति' वहांपर सूर्य के लिए

कहा या समझा गया है। सोम राजा-चन्द्रमा माने जाते हैं। इस कारण कुछ विद्वानों का अनुमान है कि राम-कथा के नायक रामचन्द्र के नाम में लगा हुआ 'चन्द्र' शब्द इस वैदिक उपाख्यान का स्मरण दिलाता है। उपाख्यान की सीता-सावित्री अपने शरीर को सोमराजा के लिए आकर्षक बनाने के निमित्त कतिपय अंगरागों का भी प्रयोग करती हैं, जो वाल्मीकि रामायण की सीता को दिव्य-सौन्दर्य प्राप्त करने के लिए अनुसूया द्वारा दिए गए अङ्गराग का बीजरूप समझा जा सकता है:—

"अंगरागेण दिव्येन लिप्तांगी जनकात्मजे।
शोभयिष्यसि भर्त्तारं यथा श्रीर्विष्णुमव्ययम् ॥"

—(वाल्मीकि रामायण २-११८-२०)

चतुर्वेदी जी आगे लिखते हैं—"किन्तु रामचन्द्र में लगा हुआ 'चन्द्र' शब्द मूलतः उस नायक उत्कृष्ट शील एवं सौम्यता का ही द्योतक जान पड़ता है, उसके सूर्यवंशी होने के कारण भी उक्त अनुमान कुछ असंगत सा लगता है। इसके सिवाय आकर्षण के लिए किया गया अंगराग का प्रयोग भी ऐसी ही बात नहीं, जो किसी प्रसंग-विशेष की ओर ही निर्देश करती हो और वह अन्यत्र भी लागू न हो सके। इस 'सीता-सावित्री' शब्द से कहीं महत्व-पूर्ण केवल 'सीता' शब्द ही माना जा सकता है, जो वैदिक-साहित्य के अन्तर्गत एक नितान्त भिन्न अर्थ का बोधक है। ऋग्वेद के तृतीय 'अष्टक' में जो चतुर्थ मण्डल का ५७ वाँ सूक्त है, उसमें 'सीता' शब्द का कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रयुक्त होने पर भी[१] चतुर्वेदीजी इसे इसके अतिरिक्त किसी

१—कि "हे सीते! (अर्थात् हल चलाए जाने से भूमि में उत्पन्न सिराव या 'हराई') तेरी हम वन्दना करते हैं, जिससे तू हमारे लिए सुन्दर धन एवं फल की देनेवाली होवे। हे सुभगे! तू हमारी ओर अभिमुख हो" "इन्द्र सीता को ग्रहण करे और सूर्य उनका संचालन करे, वह पानी से पूर्ण रहकर प्रति वर्ष हमें धान्य प्रदान करती रहे।"

—(ऋग्वेद-मंडल ४, सूक्त ५७ मंत्र, ६-७)

दैव्य व्यक्तित्व का परिचायक भी मानते हैं। इनका मत है कि 'सीता' का सम्बन्ध इन्द्र एवं सूर्य के साथ जोड़ा गया है, जिससे व्यक्तित्व का आरोप हो जाने पर सीता इन्द्रपत्नी के रूप में अवतीर्ण हो गयी —('पारस्कर गृ० सूत्र' २—१७—६) वृष्टि एवं विद्युत का स्वामी होने के कारण इन्द्र ने स्वभावतः जलवृष्टि द्वारा उसका सिंचन किया और वह बीज पाकर आप से आप शस्य-श्यामला हो उठी, जिस कारण इन्द्र का अन्यत्र 'उर्वरापति' नाम भी सार्थक हुआ—(ऋ० मं० ८ सूक्त २१, मंत्र ३)। पृथ्वी के ऊपर जब जलवृष्टि नहीं हो पाती और सीता इसके कारण आतुर हो जाती है तो इन्द्र ही मेघों को प्रेरित करता है और वृष्टि की सारी बाधाओं को नष्ट कर देता है, वह अपनी पत्नी की उर्वरा-शक्ति को कुण्ठित करनेवाले रात्तसवृत्त का नाश कर देता है और ऐसा करते समय उसे मरुत् से भी पूरी सहायता मिलती है। मरुत् इसके युद्ध में भी प्रवृत्त होता दीख पड़ता है—(ऋ० मं० ६, सूक्त ६६, मंत्र ११) इसमें आए हुए 'सीता' 'इन्द्र', 'मरुत' एवं 'वृत्र' शब्दों को श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी एक उपाख्यान के पात्रों का रूप ग्रहण करते हुए मानते हैं। उनका अनुमान है कि ये उपर्युक्त शब्द क्रमशः एक रूपक की सृष्टि कर देते हैं, जिसके आधार पर वाल्मीकि रामायण की राम-कथा के उत्तरार्द्ध (सीता-हरण से लेकर रावण-वध तक) की भित्ति खड़ी हो जाती है। आगे चलकर जिस समय विष्णु इन्द्र का पद ग्रहण कर लेते हैं, उस समय उनके अवतार राम के साथ भी सीता का सम्बन्ध सम्भव हो जाता है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार विष्णु ने अवतार ग्रहण करने के पूर्व सभी देवताओं से अपने सहायक रूप में जन्म लेने को कहा और इन्होंने किसी न किसी रूप में अवतरित होकर राम को रावण-वध में सहायता प्रदान की।—(वाल्मीकि रामायण १—१७) तदनुसार सुग्रीव सूर्य के, नल विश्वकर्मा के, नील, द्विविद् एवं मयंद अश्विनों के, तारा, बृहस्पति के, सुषेण वरुण के, शरभ पर्जन्य के तथा हनुमान वायु अथवा मरुत् के अवतार हुए—(वा० रा० १—१७)। इन सभी देवताओं ने व्यक्त-अव्यक्त रूप में, इन्द्र-वृत्र-कथा में भाग लिया था और इस प्रकार रामके

सभी प्रमुख सहायकों का मूल हमें वैदिक-साहित्य में उपलब्ध होता है[१] (नाग प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५५, अंक ४, पृ० २०५)

'सीता' का जो राम-कथा में आई हुई उल्लेख है वह कृषि की अधिष्ठात्री दे उपर्युक्त वैदिक साहित्य की सीता के सम्बन्ध का कुछ आभास रामायण की सीत जन्म कथा में भी मिलता है। मेनका को आकाश मार्ग में जाते हुए देख जनक के मन में कामना हुई कि उससे कोई सन्तान हो। फलतः खेत की हरा में जनक को सीता मिल गयी और वह जनक की मानसपुत्री तथा भूमि बनकर प्रसिद्ध हुई।— वा० रा० १, ६६–१४) फिर भी उपर्युक्त पात्रों पारस्परिक संबंध केवल कल्पना पर ही आश्रित है।[२]

(३) वाल्मीकि रामायण की कथा-वस्तु

वाल्मीकि रामायण का पाठ एक रूप नहीं पाया जाता।[३] आजकल इस तीन पाठ उपलब्ध होते हैं :—

१—दाक्षिणात्य पाठ—इसका प्रकाशन गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बंबई, निर्ण सागर प्रेस, बंबई एवं दक्षिण में हुआ है। यह पाठ अधिक व्यापक औ प्रचलित है।

२—गौडीय पाठ—गोरेसियो (पेरिस) एवं कलकत्ता संस्कृत-सीरीज के संस्करण।

३—पश्चिमोत्तरीय या उदीच्य पाठ—दयानन्द महाविद्यालय क संस्करण (लाहौर)। प्रत्येक पाठ में अनेक ऐसे श्लोक हैं जो अन्य पाठों में नहीं मिलते। दाक्षिणात्य एवं गौडीय पाठों की तुलना से पता चलता है कि प्रत्येक पाठ में श्लोकों की एक तिहाई संख्या मात्र एक ही पाठ में पायी जाती है। इसके अतिरिक्त जो श्लोक तीनों पाठों में पाए जाते हैं, उनका पाठ भी एक नहीं है तथा इनका क्रम भी अनेक स्थलों पर भिन्न है।

१—देखिए श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत—'मानस की राम-कथा' पृ०५६-६०।

२—देखिए श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत—'मानस की राम-कथा' पृ० ६०

३—देखिए श्रीरामदास गौड़ कृत 'हिन्दुत्व' पृ० १३०–१३२ तक रामायण-खण्ड।

तीनों पाठों में सर्ग-संख्या की जो विभिन्नता पायी जाती है उसका संकेतमात्र नीचे दे दिया जा रहा है :—

परिचमोत्तरीय या उदीच्य पाठ		दाक्षिणात्य पाठ	गौडीय पाठ
काण्ड	सर्ग	सर्ग	सर्ग
बाल काण्ड	७७	७७	८०
अयोध्या काण्ड	११६	११३	१२७
आरण्य काण्ड	७६	८०	७६
किष्किन्धा काण्ड	६६	६४	६७
सुन्दर काण्ड	६८	६८	६५
लंका काण्ड	१३०	१३०	११३
उत्तर काण्ड	१२४	१११	११५
कुल योग—	६६६	६४३	६७६

इन पाठान्तरों का कारण बताते हुए फादर कामिलबुल्के मानते हैं कि वाल्मीकि कृत रामायण प्रारंभ में मौखिक रूप से प्रचलित था और बहुत काल के बाद भिन्न-भिन्न परम्पराओं के आधार पर स्थायी लिखित रूप धारण कर सका। फिर भी कथानक के दृष्टिकोण से तीनों पाठों की तुलना करने पर सिद्ध होता है कि कथा-वस्तु में जो अन्तर पाए जाते हैं, वे गौण हैं। [1]इन तीनों पाठों की तुलना करने पर फ़ादर कामिलबुल्के इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि उत्तर काण्ड की रचना बहुत बाद में हुई थी। इस काण्ड में तीनों पाठों में कोई महत्त्व-पूर्ण अन्तर नहीं पाया जाता। केवल दाक्षिणात्य पाठ में सीता-त्याग की कथा में कारण यह है कि भृगु ने अपनी पत्नी की हत्या के कारण विष्णु को शाप दिया था। उनका कथन है कि यदि उत्तर काण्ड पहले से ही रामायण का अंग रहा होता तो अन्य काण्डों की तरह इसमें भी परिवर्त्तन और अन्तर उपस्थित होते। वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु नीचे दी जाती है :—

बालकाण्ड की कथावस्तु—सर्ग १ से ४ तक की कथा वाल्मीकि रामायण की भूमिकात्मक है। इसमें नारद का वाल्मीकि से अयोध्याकाण्ड से उत्तरकाण्ड

१—देखिए 'राम-कथा' पृ० ३१।

तक की राम-कथा का वर्णन; श्लोकोत्पत्ति, नारद से सुनी हुई रामकथा को श्लोक-बद्ध करने की वाल्मीकि को ब्रह्मा की आज्ञा; वाल्मीकि का कुश-लव को अपना काव्य सिखाना और उनका राम के समक्ष उसे गायन करना वर्णित है। सर्ग ५ से १७ तक दशरथ-यज्ञ की कथा, जिसमें अयोध्या का वर्णन, राजा, नागरिक, मंत्री एवं पुरोहितों का वर्णन; अश्वमेध-यज्ञ का संकल्प, ऋष्य-शृङ्ग की कथा, ऋष्यशृङ्ग द्वारा अश्वमेध, उनके द्वारा पुत्रेष्टि-यज्ञ; देवताओं की विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना; पायस को प्राप्त कर दशरथ का उसे अपनी पत्नियों में बांटना, देवताओं का अप्सराओं और गंधर्वियों से वानरों की उत्पत्ति कराना वर्णित है। सर्ग १८ से ३१ तक राम-जन्म तथा प्रारम्भिक कृत्य की कथा—राम, भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म, विश्वामित्र का आगमन, यज्ञ की रक्षा के लिए विश्वामित्र का दशरथजी से राम-लक्ष्मण को माँगना; राम-लक्ष्मण का ऋषि के साथ गमन, सरयू के संगम पर विश्वामित्र द्वारा बला, अतिबला का प्राप्त करना गंगा-सरयू के संगम पर विश्वामित्र द्वारा कामदहन की कथा; मलद और करूप की कथा, ताड़का की कथा और उसका वध; राम को दिये गये आयुधों की सूची, सिद्धाश्रम पर वामनावतार की कथा; मारीच का समुद्र में निक्षेप तथा सुबाहु का वध, राम-लक्ष्मण का मुनियों के साथ मिथिला के लिए प्रस्थान का वर्णन है। सर्ग ३२ से ६५ तक पौराणिक कथाओं का वर्णन—विश्वामित्र के पूर्वजों की कथा, हिमवान की पुत्रियों—गंगा का स्वर्गारोहण, उमा का शिव से विवाह और कार्तिकेय के जन्म की कथा का वर्णन; सगर-पुत्रों का पाताल में भस्म होना, राजा भगीरथ द्वारा गंगावतरण, जह्नु द्वारा गंगा का पान करना, उससे मुक्त होकर भगीरथ का अनुसरण करते हुए गंगा का सगर-पुत्रों का पाताल में जाकर उद्धार करना, समुद्र-मन्थन की कथा, गौतम द्वारा अहल्या और इन्द्र के शाप की कथा, अहल्योद्धार की कथा, जनक द्वारा विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का स्वागत, विश्वामित्र की कथा; शतानन्द द्वारा विश्वामित्र के ब्राह्मण बनने की कथा, राजा विश्वामित्र का वशिष्ठ को परास्त न कर सकने के कारण ब्राह्मण बनने का निश्चय, उनका राजर्षि बनना, त्रिशंकु की कथा, अम्बरीष के यज्ञ में शुनःशेप का बलिदान, विश्वामित्र का ऋषि बनना, मेनका की सफलता

और रम्भा की असफलता और अन्त में विश्वामित्र के ब्रह्मर्षि होने की कथा का वर्णन है। सर्ग ६६ से ७७ तक में जनक द्वारा धनुष तथा सीता के अलौकिक जन्म की कथा, उनकी सीता विषयक विवाह की प्रतिज्ञा, अनेक राजाओं की असफलता और उनका असफल आक्रमण, राम द्वारा धनुष टूटने की कथा, दशरथजी का बुलावा तथा उनके मिथिला आगमन की कथा; वशिष्ठ द्वारा उनके वंश का परिचय; जनक का अपना वंश वर्णन, चारों भाइयों का विवाह परशुराम उत्तरीय पर्वतों पर विश्वामित्र का गमन; दशरथ के मार्ग में अपशकुन और परशुराम का आगमन, वैष्णव-धनुष चढ़ाकर राम द्वारा परशुराम की पराजय, अयोध्यागमन; भरत और शत्रुघ्न का प्रस्थान और राम की लोकप्रियता का वर्णन इस काण्ड की कथा का विषय है।

अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु - सर्ग १ से ४४ तक में राम के निर्वासन की कथा, जिसमें भरत और शत्रुघ्न का अश्वपति के यहां रहना, रामकी लोकप्रियता और गुण-कथन, रामराज्याभिषेक की तैयारी मंथरा-कैकेयी संवाद—दो वर मांगने के विषय में मंथरा की सफलता; दशरथ-कैकेयी संवाद—दशरथ द्वारा दो वरों की स्वीकृति; दशरथ के पास राम का आगमन—दशरथ के समक्ष कैकेयी का समाचार-कथन; राम-कौशल्या संवाद लक्ष्मण और कौशल्या द्वारा निर्वासन का विरोध, राम का समझाना, कौशल्या द्वारा बिदा और मंगल आकांक्षा. राम-सीता-संवाद, वन की भयंकरता का वर्णन कर राम द्वारा सीता को भयभीत किया जाना, अन्त में साथ चलने की स्वीकृति देना, लक्ष्मण का वन चलने का आग्रह और राम द्वारा उनके वन चलने की स्वीकृति, दान-वितरण राम का राजा के समीप जाना, सुमन्त्र के द्वारा कैकेयी की भर्त्सना, दशरथ का राम के साथ सेना भेजने का प्रस्ताव, कैकेयी की इस पर आपत्ति, कैकेयी द्वारा दिये गये वल्कल का धारण, दशरथ द्वारा कैकेयी की भर्त्सना, सुमन्त्र के रथ लाने का वर्णन. कौशल्या द्वारा सीता को शिक्षा, विदा देना, विलाप-कलाप, दशरथ की मूर्च्छा, कौशल्या का विलाप और सुमित्रा द्वारा उन्हें सान्त्वना देने का वर्णन है। सर्ग ४५ से ५६ तक में अयोध्या निवासियों का रथ के साथ जाना, तमसा के समीप रात्रि में निवास, नगरवासियों के सोते समय राम-लक्ष्मण

सीता और सुमन्त्र का प्रस्थान, नगर-निवासियों के विलाप और लौटने का वर्णन, वेदश्रुति और गोमती के पार निषादराज गुह का मिलन, लक्ष्मण और गुह द्वारा राम का गुणगान करते हुए रात्रि व्यतीत करने का वर्णन, सुमन्त्र को विदा कर गंगापार करने का वर्णन, राम का विलाप, लक्ष्मण का सान्त्वना प्रदान करना, तीर्थराज प्रयाग में भरद्वाज आश्रम पर राम का भाई और पत्नीसहित आगमन, भरद्वाज का चित्रकूट में निवास करनेके लिए परामर्श देना, यमुना पार कर चित्रकूट में राम लक्ष्मण और सीता का पहुँचना, वाल्मीकि से मिलन और लक्ष्मण के द्वारा पर्णकुटी निर्माण करने का वर्णन है। सर्ग ५७ से ७८ तक में सुमंत्र का लौटना, सुमन्त्र द्वारा राम का संदेश सुनकर दशरथ की मूर्च्छा, विलाप और सुमन्त्र द्वारा कौशल्या को सान्त्वना प्रदान करने का वर्णन; कौशल्या की भर्त्सना से दशरथ का मूर्च्छित होना, दशरथ द्वारा अन्ध मुनि-पुत्र-वध की कथा का वर्णन, दशरथ-मरण और विलाप की कथा का वर्णन, भरत का बुलावा उनका अयोध्यागमन, कैकेयी द्वारा राज्य करने का अनुरोध, भरत की भर्त्सना और मन्त्रियों के समक्ष राज्य को अस्वीकृत करना एवं उनका कौशल्या से अपने को निर्दोष होने के वर्णन, भरत द्वारा दशरथजी की अंत्येष्टि-क्रिया और दान-वितरण, भरत और शत्रुघ्न का विलाप, शत्रुघ्न द्वारा मंथरा को ताड़ना देने का वर्णन है। सर्ग ७९ से ११५ तक में भरत का पुनः राज्य अस्वीकार करने का वर्णन, चित्रकूट प्रस्थान की भरत द्वारा आज्ञा प्रदान, सभा में वशिष्ठ का भरत को समझाने, किन्तु भरत का उनका परामर्श न मानने और भरत का चित्रकूट के लिए प्रस्थान करने, उनके शृङ्गवेरपुर पहुँचने का वर्णन, भरत द्वारा गुह का संदेह-निवारण, गुह का लक्ष्मण की वार्ता का उल्लेख करना तथा राम का शयन स्थल दिखलाना, गंगा पार करना, भरद्वाज का अपने तपः प्रभाव से भरत का आतिथ्य-सत्कार करने का वर्णन, चित्रकूट पहुँचने का वर्णन, चित्रकूट को देखकर भरत का सेना रोकना, राम द्वारा चित्रकूट और मन्दाकिनी की शोभा का वर्णन, सेना का निकट आते देख लक्ष्मण का आक्रोश, राम द्वारा उन्हें शान्त करना, भरत और शत्रुघ्न का राम के निकट जाना, राम का कुशल-प्रश्न पूछना, राम द्वारा अयोध्यागमन की अस्वीकृति का वर्णन, भरत द्वारा दशरथ के

राम का उन्हें रोककर भरत-गुण-कथन के लिए आग्रह करने का वर्णन है। सर्ग १७ से ३४ तक में शूर्पणखा का वर्णन—राम और लक्ष्मण से प्रवंचित होकर शूर्पणखा का सीता की ओर झपटना, लक्ष्मण का उसके नाक-कान काटने की कथा का वर्णन, खर के भेजे हुए चौदह राक्षसों का राम द्वारा वध की कथा का वर्णन, खर के चौदह-सहस्र राक्षसों को लेकर पहुँचने पर सीता और लक्ष्मण का गुफा में जाने का वर्णन, राम द्वारा राक्षसों, दूषण, त्रिशिर और खर का वध, अकंपन द्वारा रावण को इसका समाचार देने की कथा का वर्णन तथा सीता-हरण के लिए रावण को उत्साहित करने की कथा का वर्णन, मारीच से परामर्श, शूर्पणखा का लंका जाकर रावण की भर्त्सना करना और सीता के सौन्दर्य का वर्णन, रावण के सीता हरण के निश्चय का वर्णन है। सर्ग ३५ से ५६ तक में सीता-हरण का प्रसंग है, रावण का मारीच के समक्ष सीताहरण का प्रस्ताव रखना, मारीच का समझाना, बाद में चेतावनी देकर स्वीकार करना, मारीच के कनक-मृग रूप को देखकर सीता का उसके लिए प्रार्थना करना, सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़कर राम का मृग के लिए जाना, दूर जाने पर राम का मारीच को मारना, मरते समय उसका राक्षस रूप में सीता और लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारना, परिव्राजक के रूप में रावण का सीता से जीवन वृत्तान्त सुनना, प्रकट होकर रावण का बलपूर्वक सीता को अपने रथ पर ले चलना, सीता द्वारा पुकारे जाने पर जटायु का युद्ध करना, सीता के आभूषणों का गिरना, पाँच वानरों की ओर सीता का आभूषण फेंकना, लंका में सीता का राक्षसियों की देख रेख में अशोक वन में रहना आदि कथाओं का वर्णन है। सर्ग ५७ से ७५ में सीता-न्वेषण सम्बन्धी कथा—लौटते समय राम का लक्ष्मण से मिलना और शंकाकुल हृदय से लक्ष्मण को दोष देने की कथा, शून्य कुटी देखकर राम का विलाप और लक्ष्मण का सान्त्वना देना, गोदावरी तट पर खोज, पुष्प एवं आभूषणों का मिलना, जटायु-युद्ध के चिह्नों का दिखाई पड़ना, लक्ष्मण की सान्त्वना, मरण के पूर्व जटायु का सीता-हरण रावण-द्वारा तथा दक्षिण प्रस्थान का उल्लेख, लक्ष्मण का अयोमुखी को विरूप करना, कबन्ध का बाहु-विच्छेद, उसके विषय में स्थूल शिर तथा इन्द्र के शाप का उल्लेख, चिता के प्रज्वलित होने पर कबन्ध का दिव्यरूप में सुग्रीव के पास जाने की मंत्रणा देना, पम्पासर स्थित आश्रम में

शबरी का स्वागत और उसका स्वर्गारोहण, पम्पा वर्णन और राम का विलाप आदि कथाओं का वर्णन है।

किष्किन्धाकाण्ड की कथा-वस्तु—इस काण्ड में सर्ग १ से १२ तक सुग्रीव-मैत्री का वर्णन है, जिसमें पम्पासर देखकर राम की विरह-व्यथा का वर्णन, सुग्रीव का हनुमान को भेजना, हनुमान का उनके पास राम-लक्ष्मण को ले जाना, सुग्रीव द्वारा राम का स्वागत तथा अपनी कथा बताना, राम द्वारा बालि-वध की प्रतिज्ञा, सुग्रीव का राम को सहायता देने का वचन देना तथा सीता के आभूषण दिखाना, सुग्रीव का पुनः सहायता के लिए वचन-बद्ध होना और अपनी कथा का उल्लेख करना, सुग्रीव द्वारा बालि की शक्ति का वर्णन, राम-द्वारा दुंदुभि के अस्थि-कंकाल का फेंका जाना, अनन्तर राम से सात साल तरुओं के एक बाण द्वारा भेजे जाने पर सुग्रीव का विश्वस्त होना, किष्किन्धा जाकर सुग्रीव का बालि से प्रथम द्वन्द-युद्ध, राम का सुग्रीव को न पहचानना, ऋष्यमूक में लौटना आदि कथाएँ वर्णित हैं। सर्ग १३ से २८ तक में द्वितीय बार सुग्रीव का बालि को द्वन्द-युद्ध के लिए ललकारना, तारा द्वारा रोके जाने पर भी बालि का युद्ध के लिए जाना तथा राम के बाण से आहत होना, इन्द्रमाला के कारण बालि का जीवित रहना तथा राम को भर्त्सना देना, राम का प्रत्युत्तर देना, समाचार पाकर तारा का आना और उसका विलाप करना, हनुमान द्वारा तारा को सान्त्वना प्रदान, राम का प्रस्रवण पर्वत की एक गुफा में वर्षा-निवास, सुग्रीव का अभिषेक तथा अंगद का युवराज होना, राम द्वारा वर्षा-वर्णन तथा उनका विलाप आदि कथाएँ वर्णित हैं। सर्ग २६ से ४४ तक में वानरों का प्रेषणवाले प्रसंग में सुग्रीव का वानर-सेना बुलाना, राम का शरद ऋतु-वर्णन तथा सुग्रीव की कृतघ्नता का उल्लेख, क्रुद्ध लक्ष्मण का सुग्रीव के समीप गमन, तारा का लक्ष्मण को शान्त करना, लक्ष्मण का सुग्रीव की भर्त्सना करना, तारा तथा सुग्रीव की क्षमा-प्रार्थना, सुग्रीव की आज्ञा से सेना का आगमन, सुग्रीव का सेना सहित राम के समीप पहुँचना। दिशाओं का वर्णन करते हुए सुग्रीव का वानर-सेना को चतुर्दिक् भेजना, विश्वासपात्र हनुमान् का दक्षिण दिशा में अंगूठी देकर भेजा जाना आदि कथाओं का उल्लेख है। सर्ग ४५ से ६७

तक में वानरों द्वारा सीतान्वेषण—वानरों का प्रस्थान तथा पूर्व, पश्चिम और उत्तर से उनका निराश होकर लौटना, हनुमान और उनके साथियों द्वारा विन्ध्य पर्वत पर जानकी की खोज करना, उनका कन्दरा में प्रवेश, स्वयंप्रभा द्वारा सत्कार तथा आँखें बन्द कराकर उनको गुफा के बाहर ले जाना, कन्दरा से निकल कर विन्ध्यतल के सागर-तट पर उनका पहुँचना, अंगद का प्रायोपवेशण के लिए प्रस्ताव, अंगद का सुग्रीव से भयभीत होना, सभी का दुःखी और निराश होना. सम्पाति के समक्ष अंगद द्वारा जटायु-मृत्यु का उल्लेख, सम्पाति का वृत्तान्त पूछना और लंका की स्थिति बतलाना, उसका अपने पुत्र सुपार्श्व द्वारा रावण को सीता ले जाते देखने का उल्लेख करना, चन्द्रमा नाम के ऋषि के कथनानुसार सम्पाति के पंखों का फिर से उग आना, सागर के तट पर पहुँच कर अंगद की निराशा, जाम्बवान् द्वारा हनुमान की कथा तथा सामर्थ्य-वर्णन, हनुमान का महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर कूदने के लिए तत्पर होना आदि कथाओं का वर्णन हुआ है।

सुन्दरकाण्ड की कथा वस्तु—इस काण्ड में सर्ग १ से १८ तक में लंघन करते समय हनुमान से मैनाक का आग्रह, सुरसा का सम्मिलन, सिंहिका-वध, विडाल जितने आकार में हनुमान का लंका-प्रवेश, लंकादेवी को पराजित करना, नगर-महल-पुष्पक, शयनागार आदि का वर्णन, सीता का पता न पाना, हताश होकर हनुमान का अशोकवन प्रवेश और वहाँ सीता को राक्षसियों द्वारा घिरी हुई देखना, आदि घटनाओं का उल्लेख हुआ है। सर्ग १६ से २८ तक में रावण सीता-संवाद-कामातुर रावण का सीता से अनुरोध तथा सीता का उसके ऊपर फटकार रावण का भय दिखलाना, दो महीने की अवधि देना, सीता की भर्त्सना. सीता को समझाने के लिए राक्षसियों का रावण द्वारा नियुक्त किया जाना, राक्षसियों का प्रयास और सीता की अस्वीकृति तथा विलाप, त्रिजटा का राक्षस पराजय सूचक स्वप्न-वर्णन, सीता-विलाप आदि कथाओं का वर्णन है। सर्ग २६ से ४० तक में हनुमान-सीता संवाद के प्रसंग में सीता को शकुन होना, राम-कथा का हनुमान द्वारा वर्णन, सीता का भयभीत होना, हनुमान का प्रकट होना, सीता का संदेह, हनुमान द्वारा राम का वर्णन, सीता का विश्वास करना,

हनुमान का राम-मुद्रिका देना और शीघ्र छुटकारे का आश्वासन देना, हनुमान की पीठ पर सीता का जाने से अस्वीकार करना, अभिज्ञान स्वरूप सीता का काक-वृत्तान्त बताना तथा चूड़ामणि देना और हनुमान का वहाँ से विदा होने की कथा है। ४१-से ५५ तक में लंका दहन संबन्धी घटनाओं का उल्लेख है। अशोकवन का हनुमान द्वारा विध्वंस तथा प्रहस्तपुत्र जम्बुमाली और रावण-कुमार अक्षका वध, ब्रह्मास्त्र से इन्द्रजित द्वारा बन्धन, रामदूत के रूप में सीता मुक्ति के लिए हनुमान का आग्रह। विभीषण द्वारा हनुमान की रक्षा, दण्ड रूप हनुमान की पूँछ जलाई जाने की रावण द्वारा आज्ञा, हनुमान द्वारा लंका दहन, सीता की रक्षा का हनुमान को आश्वासन आदि का वर्णन है। सर्ग ५६ से ६८ तक में हनुमान का प्रत्यावर्त्तन संबंधी घटनाओं का वर्णन हनुमान का आकाश-मार्ग से अपने साथियों के पास लौटना, अपनी सफलता का वर्णन करना, अंगद द्वारा सीता-मुक्ति का प्रस्ताव, जाम्बवान् का विरोध, मधुबन मे पहुँचकर हनुमान आदि का उत्पात; दधिमुख का सुग्रीव को इसका समाचार देना, हनुमान् का राम से सीता के जीवित होने का समाचार कहना और सीता संवाद का उल्लेख है।

युद्धकाण्ड की कथावस्तु—इस काण्ड में सर्ग १ से ४१ तक में लंका का अभियान संबंधी वर्णन है, जिसमें समुद्र की बाधा के विचार से राम की निराशा तथा सुग्रीव द्वारा सेतुबंध का प्रस्ताव, हनुमान द्वारा लंका का वर्णन, समुद्र तक पहुँचना तथा राम का निराशा, सभासदों द्वारा रावण को विजय का आश्वासन तथा विभीषण की सीता को लौटाने की मंत्रणा, दूसरे दिन विभीषण द्वारा चेतावनी, कुंभकर्ण का जगकर रावण को दोष देना लेकिन सहायता की प्रतिज्ञा करना, पुञ्जिकस्थला के कारण पितामह के श्राप का रावण द्वारा उल्लेख, इन्द्रजित तथा रावण निंदित होकर विभीषण का रावण को छोड़कर जाना, सुग्रीवादि के विरोध करने पर भी हनुमान तथा राम के आग्रह के कारण विभीषण को शरण मिलना, राम द्वारा विभीषण का अभिषेक, प्रायोपवेशन द्वारा समुद्र को विवश करने की विभीषण की मंत्रणा, शार्दूल द्वारा रावण को राम-सेना की सूचना मिलना, सुग्रीव को अपनी ओर मिलाने के लिए रावण द्वारा शुक का भेजा जाना, शुक का बन्धन और राम द्वारा उसकी मुक्ति की कथा का वर्णन।

तीन दिन के प्रायोपवेशन के पश्चात् राम का समुद्र पर ब्रह्मास्त्र प्रयोग के लिए तत्पर होना, समुद्र की विनय, द्रुमकुल्य का ब्रह्मास्त्र द्वारा विध्वंस, समुद्र के कथन से नल द्वारा सेतुबन्ध और सेना संतरण, लंका में अपशकुन तथा शुक का रावण को समाचार देना, रावण-गुप्तचर शुक तथा सारण का विभीषण द्वारा बन्धन और श्रीराम द्वारा मुक्ति, उनका रावण को समाचार देना, शार्दूल का रावण द्वारा भेजा जाना, उसका बन्धन, मुक्ति और समाचार देना, विद्युज्जिह्व द्वारा निर्मित राम के मायामय शीश का सीता को दिखाया जाना, सीता का विलाप तथा सरमा द्वारा रहस्योद्घाटन, सरमा द्वारा सीता को रावण-सभा का समाचार मिलना, माल्यवान का रावण को समझाना, अपशकुन होने पर भी रावण का दृढ़ निश्चय होकर नगर के प्रवेश द्वारों की रक्षा की आज्ञा देना। सुवेल पर्वत से रामका लंका-दर्शन, सुग्रीव-रावण-द्वन्द-युद्ध, लंकावरोध तथा अंगद का दूतकार्य आदि घटनाएँ वर्णित हैं। सर्ग ४२ से ११२ तक में युद्ध प्रकरण आता है, जिसमें रात्रि तक दोनों सेनाओं का युद्ध, अंगद द्वारा इन्द्रजित् की पराजय, अदृश्य इन्द्रजित् द्वारा राम लक्ष्मण का शरपाश में बंधन, रावण का सीता को पुष्पक से भेजकर आहत राम लक्ष्मण को दिखलाना, सीता विलाप, त्रिजटा की सान्त्वना, जगकर राम का लक्ष्मण के लिए विलाप, हनुमान द्वारा विशल्य औषधि लाने के लिए सुषेण का प्रस्ताव, गरुड़ का राम-लक्ष्मण को स्वास्थ्य करना, धूम्राक्ष वज्रदंष्ट्र, अकंपन तथा प्रहस्त का वध, रावण-लक्ष्मण द्वन्द-युद्ध, लक्ष्मण का आहत होना, मुष्टि-प्रहार से हनुमान् का रावण को मूर्छित करना, राम-रावण युद्ध, रावण की पराजय, उसका लज्जित होकर लौटना, कुंभकरण का जागरण, विभीषण द्वारा कुंभकर्ण की निद्रा का राम से उल्लेख, कुंभकर्ण की रावण को भर्त्सना, कुंभकर्ण-सुग्रीव-द्वन्द-युद्ध, राम द्वारा कुंभकर्ण-वध, रावण-विलाप, रावण के चार पुत्रों का (नरांतक देवान्तक, त्रिशिर और अतिकाय) तथा दो भाइयों का (महोदर और महापार्श्व का) वध, रावण विलाप, इन्द्रजित का अदृश्य होकर युद्ध करना तथा राम-लक्ष्मण को व्यथित करना, हनुमान् का औषधि-पर्वत लाकर आहतों तथा राम-लक्ष्मण को स्वस्थ्य करना, रात्रि में वानरों द्वारा लंका-दहन; कंपन, कुंभ निकुंभ तथा मकराक्ष वध, यज्ञ करके इन्द्रजित का युद्धारम्भ, मायामय सीता का वानर-सेना के समक्ष वध, राम-विलाप, लक्ष्मण द्वारा सान्त्वना, विभीषण

द्वारा मायामय सीता का रहस्योद्घाटन, निकुंभिला में इन्द्रजित-यज्ञ-विध्वंस का परामर्श, सेना सहित लक्ष्मण का यज्ञ-विध्वंस तथा इन्द्रजित-वध, सुषेण द्वारा लक्ष्मण की चिकित्सा, रावण-विलाप, सुपार्श्व का रावण को सीता-वध से रोकना, विरूपाक्ष, महोदर तथा महापार्श्व का वध, राक्षसियों का विलाप, रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगना, हनुमान् द्वारा महोदय पर्वत से औषधि लाना, इन्द्ररथ मातलि सहित भेजा जाना, राम-रावण युद्ध का आरम्भ, अगस्त्य का राम को आदित्य हृदय नामक स्तोत्र सिखाना, सात दिन के युद्ध के बाद ब्रह्मास्त्र से रावण का वध, विभीषणादि का विलाप, रावण की अन्त्येष्टि, विभीषण का अभिषेक, राम द्वारा सीता को बुला भेजना आदि घटनाओं का उल्लेख है। सर्ग ११३ से १२८ तक राम के अयोध्या लौटने की कथा का वर्णन है, जिसमें राम का सीता को अस्वीकार करना, लक्ष्मण द्वारा निर्मित चिता में सीता का प्रवेश, देवताओं द्वारा राम की विष्णुरूप में पूजा, अग्नि द्वारा राम को सीता का समर्पण, शिव द्वारा प्रशंसा, दशरथ की शिक्षा, मृत वानरों का इन्द्र द्वारा जीवित किया जाना, विभीषण का यात्रा के लिए पुष्पक विमान प्रस्तुत करना, वानरों को दान दिया जाना, आकाशमार्ग से राम का विभिन्न स्थानों का वर्णन करना, किष्किंधा में वानर-पत्नियों का साथ लिया जाना, भरद्वाज से भेंट, हनुमान् का गुह तथा भरत को आगमन की सूचना देना, अयोध्यावासियों सहित भरत और शत्रुघ्न का राम से मिलन, सब का पुष्पक पर चढ़ना, नन्दिग्राम में भरत का राम को शासन सौंपना, पुष्पक का कुबेर के पास लौटाया जाना, रामाभिषेक, राम-राज्य वर्णन तथा फलश्रुति की कथाओं का उल्लेख है।

उत्तरकाण्ड की कथा वस्तु—सर्ग १ से ३४ तक में रावण-चरित का वर्णन है जिसके अन्तर्गत विश्रवा तथा देववर्णिनी के पुत्र वैश्रवण का चतुर्थ लोकपाल तथा धनेश बनना और उनका पुष्पक प्राप्त कर लंका-निवास, प्रहेति तथा हेति के वंश में उत्पन्न राक्षसों का लंका-निवास तथा विष्णु द्वारा पराजित होने पर उनका पाताल-प्रवेश, विश्रवा तथा सुमाली की पुत्री कैकसी से दशग्रीव, कुंभकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण का जन्म, वैश्रवण से ईर्ष्या होने के कारण तीनों भाइयों की तपस्या तथा ब्रह्मा से वर प्राप्ति, रावण की आशंका से वैश्रवण

का लंका-त्याग तथा कैलाश पर निवास, राक्षसों का लंका में प्रवेश, रावण का मयसुता मंदोदरी से विवाह, वैश्रवण को पराजित कर रावण का पुष्पक को प्राप्त करना, उसको नन्दि-शाप, रावण का कैलास को उठाना तथा शिव से 'रावण' नाम तथा चन्द्रहास खड्ग को प्राप्त करना, वेदवती का रावण को शाप देना, रावण द्वारा अनेक राजाओं की पराजय तथा राजा 'अनारण्य' का उसे शाप देना, नारद की प्रेरणा से रावण का यम पर आक्रमण तथा ब्रह्मा द्वारा यम से रावण की रक्षा, शूर्पणखा के पति विद्युजिह्व का रावण द्वारा वध और वरुण पुत्रों की पराजय, रावण की बलि से भेंट, सूर्य और चन्द्रलोक की यात्रा तथा कपिल से भेंट, रावण द्वारा अनेक कन्याओं और पत्नियों का हरण, शूर्पणखा को खर-दूषण के साथ दण्डकारण्य भेज देना, कुंभनसी द्वारा मधु की रक्षा, नलकूबर का शाप, मेघनाद द्वारा इन्द्र बंधन तथा देवताओं की प्रार्थना से मुक्ति, देवताओं से मेघनाद को वर प्राप्ति--किसी भी युद्ध के पूर्व यज्ञ कर लेने से वह अजय हो जायगा आदि का उल्लेख--अर्जुन, कार्त्तवीर्य तथा बलि द्वारा रावण की पराजय आदि की कथाएं वर्णित हैं। सर्ग ३५-३६ में हनुमान की जन्म कथा तथा चरित वर्णन है। सर्ग ३७-८२ में सीता त्याग की कथा है, जिसमें अभिषेक के दूसरे दिन राम का ऋषियों, राजाओं, वानरों तथा राक्षसों द्वारा अभिवादन है, वालि-सुग्रीव की जन्म कथा, रावण का मुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से सीता हरण का निश्चय, रावण की श्वेत द्वीप में स्त्रियों द्वारा पराजय, जनक-केकय तथा प्रतार्दन का प्रस्थान, दो मास पश्चात् सुग्रीव-अंगद, हनुमान, विभीषण तथा वानरों, राक्षसों और ऋक्षों के प्रस्थान, राम का पुष्पक वैश्रवण के पास भेज देना, सीता का आश्रमों को देखने जाने का दोहद, लोकापवाद के कारण राम की लक्ष्मण को वाल्मीकि आश्रम में सीता छोड़ने की आज्ञा, गंगा के उस पार लक्ष्मण का सीता को त्याग का समाचार देना, सीता का विलाप, वाल्मीकि का सीता को आश्रय देना, सुमंत्र का लक्ष्मण को सीता-त्याग का कारण बतलाना इस प्रसंग में ही नृग, निमि और ययाति की कथाओं का भी समावेश किया गया है, राम द्वारा लक्ष्मण को नृग, निमि तथा ययाति की कथाओं का सुनाया जाना, श्वान की राम से न्याय मांगने की कथा, गृध्र तथा उलूक की कथा, शत्रुघ्न चरित्र के अन्तर्गत च्यवन के आग्रह से राम का लवण-वध करने के

लिए शत्रुघ्न को भेजना, शत्रुघ्न का रात्रि वाल्मीकि आश्रम में बिताना और उसी रात्रि में लव-कुश का जन्म, शत्रुघ्न द्वारा लवण-वध और मधुपुरी का बसाया जाना, बारह वर्ष बाद राम के पास लौटते समय वाल्मीकि के आश्रम में शत्रुघ्न का रामायण गान सुनना, राम से मिलकर उनका अपने राज्य में वापस जाना, शम्बूक-वध की कथा के अन्तर्गत ब्राह्मण-पुत्र की मृत्यु पर नारद का शूद्र की तपस्या को उसका कारण बताना, राम का दक्षिण जाकर शम्बूक-वध करना, अनन्तर अगस्त्य से दण्डकारण्य की कथा सुनना आदि घटनाओं का वर्णन है। सर्ग ८३ से १११ में अश्वमेध माहात्म्य का वर्णन करते हुए, राजसूय-यज्ञ का भरत द्वारा विरोध, लक्ष्मण का अश्वमेध का प्रस्ताव तथा इसके माहात्म्य में इन्द्र की ब्रह्म हत्या से अश्वमेध द्वारा शुद्धि की कथा कहना, राम द्वारा इलाके अश्वमेध से पुरुषत्व प्राप्त करने की कथा का उल्लेख है, इसके अतिरिक्त नैमिषारण्य में अश्वमेध के अवसर पर कुश-लव का सभा के समक्ष रामायण गान करना, कुश-लव को सीता-पुत्र सुनकर राम का वाल्मीकि के पास संदेश भेजकर सभा के सम्मुख अपनी शुद्धि का साक्ष्य देने के लिए सीता से अनुरोध करना, सीता की शपथ, पृथ्वी का सीता को अपने साथ ले जाना राम का उनसे सीता को लौटा देने का व्यर्थ अनुरोध, कुश-लव द्वारा उत्तरकाण्ड का गान, सभा-विसर्जन, माताओं की मृत्यु इसके आगे भरत के पुत्रों (तक्ष-पुष्कल) का तक्षशिला तथा पुष्कलवती में राज्य-स्थापन, लक्ष्मण के पुत्रों (अंगद—चन्द्रकेतु) का अंगदीप और चन्द्रकान्त में राज्य स्थापन का वर्णन किया गया है। अन्त में काल का राम को अपना विष्णु रूप प्राप्त करने का स्मरण दिलाना, दुर्वासा के आग्रह से लक्ष्मण का राम तथा काल के पास जाना और इसके कारण लक्ष्मण का सरयू-प्रवेश, राम का कुश को कुशावती में और लव को श्रावस्ती में राज्य देने की कथा, अपने पुत्रों (सुबाहु और शत्रुघातिन्) को राज्य देकर शत्रुघ्न का अयोध्या आना, सुग्रीव और बानरों का आगमन, विभीषण और हनुमान् को अमरत्व का वरदान, राम का अपने भाइयों के साथ विष्णु रूप में तथा वानरों का अंशानुसार देवताओं में प्रवेश, नागरिकों की स्वर्ग-प्राप्ति तथा फल-स्तुति का उल्लेख करते हुए राम-कथा वाल्मीकि रामायण में समाप्त होती है।

वाल्मीकि रामायण की उपयुक्त कथा के आधार पर बाद में लिखी गयी राम-कथाएँ विभिन्न साहित्य में थोड़े-बहुत परिवर्त्तन के साथ लिखी गयीं। इस राम-कथा का विकास किस प्रकार हुआ अगले परिच्छेद में विचार होगा।

(४)—वेद-सागर-स्तोत्र की राम-जन्म-कुण्डली की सामग्री—

राम-कथा को ऐतिहासिक सिद्ध करने के बहुत से प्रमाण मिलते हैं। उनमें से एक वेद सागर-स्तोत्र के अन्तर्गत दी गयी रामचन्द्रजी की जन्म-कुण्डली और फलादेश का विवरण उपस्थित किया जा रहा है। अतः राम का दशरथजी के यहाँ जन्म लेना ऐतिहासिक घटना ही है, कल्पना प्रसूत उसे नहीं कहा जा सकता।

भगवान श्रीरामचन्द्रजी को जन्म कुण्डली और फलादेश[१]

"श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे चतुर्विंशतितमे युगेत्रेतायुगे चतुर्थचरणे मासनां मासोत्तमे मासे चैत्रमासे शुक्लेपक्षेनवम्यां तिथौ भौमवासरे पुनर्वसु-नक्षत्रेऽभिजिन्मुहूर्ते श्रीरामो दाशरथिः भारतवर्षे महापुण्य प्रदेशे कोशल नगरे कौसल्यायाम् प्रादुर्बभूव।

५ | ३
६ | चं. ४ वृ. | २
रा. | बु.
७ श. | १ सू.
८ | मं.१० | १२ शु. के.
९ | ११

अथ वेदसागरः स्तवः।

पूर्णंत्रिशत् द्वेपा च कर्कटे चन्द्रवाक् पतिः ॥
कन्यायां सिंहिकापुत्रस्तुलास्थो रविनन्दनः ॥ १ ॥
पाताले मेदिनी पुत्रो वृषस्थश्चन्द्रमासुतः ॥

[१] यह जन्म-कुण्डली 'कल्याण' पत्रिका के सौजन्य से प्राप्त हुई है, जिसका विवरण है—वर्ष २६—गोरखपुर, सौर जेठ २००६, मई १९५२—सं० ५ पूर्ण सं० ३०६।

आकाशे मेषभे सूर्य्यः भषयो केतु मार्गवौ ॥ २ ॥
सर्वग्रहानुमानेन योगोऽयं वेदसागरः ॥
वेदसागर के जातः पूर्वजन्मनि भार्गव ॥ ३ ॥

पूर्णब्रह्म स्वयं कर्ता स्वप्रकाशो निरंजनः ॥
निर्गुणो निर्विकल्पश्च निरीहः सच्चिदात्मकः ॥ ४ ॥

गिरा ज्ञानं च गोतीतं इच्छाकारी स्वरूपधृक् ॥
विना घ्राणं सदा घ्राणी विना नेत्रे च वीक्षकः ॥५॥

अकर्णेन श्रुतं सर्वं गिराहीनं च भाषितम् ॥
करहीनं कृतं सर्वं कर्मादिकं शुभाशुभम् ॥ ६ ॥

पदहीना गतिः सर्वा कुशला सकला क्रिया ॥
स्वरूपे रूपहीनश्च समर्थः सर्वकर्मसु ॥ ७ ॥

त्रैविद्यास्त्रिगुणः कालस्त्रिलोकी सचराचरः ॥
महेन्द्रो देवताः सर्वा नागकिन्नरपन्नगाः ॥ ८ ॥

सिद्धविद्याधरा यक्षा गन्धर्वाः सकलः कवे ॥
राक्षसा दानवाः सर्वे मानवा वानराऽजा ॥ ९ ॥

सागराश्च खगा वृक्षाः पशुकीटादयस्तथा ॥
शैला नद्यः कलाः सर्वा मोहमायादिकाः क्रिया ॥१०॥

इच्छा माया त्रिवेदाश्च निर्मिता विविधा क्रियाः ॥
शरण्यः सर्वदा शान्त-अलक्ष्यो लक्षकः सदा ॥११॥

जरामरणविहीनश्च महाकालस्य चान्तकः ॥
सर्वं सर्वेण हीनोऽपि सचराचरदर्शकः ॥१२॥

पूर्वापरक्रियाज्ञानो शृणु शुक्र न चान्यथा ॥
प्रेरितः सर्वदेवैश्च कालान्तरगते कवे ॥१३॥

धरित्री ब्रह्मणो लोके जगाम दुःखपीडिता ॥
शिवो ब्रह्मा सुराः सर्वे प्रार्थयाञ्चक्रुर्गृहः ॥१४॥

सुदुःखं वचनं श्रुत्वा देववाणी भवेत् कवे ॥
धैर्य्यमाध्य सुराः सर्वे प्रार्थना सफला भवेत् ॥१५॥

श्रुत्वा हृष्टा सुरा सर्वे जगाम क्षितिमण्डले ॥
नरवानररूपं च धृत्वा ब्रह्मेच्छया कवे ॥१६॥

यत्र-यत्र सुरा सर्वे हरिदर्शनमानसाः ॥
अधर्मनिरतान् लोकान् दृष्ट्वा कष्टेन पीडितान् ॥१७॥

तत् इच्छाप्रभावेण गो ब्राह्मण सुरार्थकम् ॥
मायामानुष रूपेण जगदानन्दहेतवे ॥ १८ ॥

आजगाम धरापृष्ठे कौशलाख्ये महापुरे ॥
इक्ष्वाकुवंशे भो शुक्र भूत्वा मानुषरूपधृक् ॥१९॥

सरय्वा दक्षिणे भागे महापुण्ये च चैत्रके ॥
मधुमासे च धवले नवम्यां भौमवासरे ॥ २० ॥

पुनर्वसौ च सौभाग्ये मातृगर्भात्समुद्भवः ॥
मन्मथाना च कोटीनां सुन्दरः सागरोपमः ॥२१॥

श्यामांगं मेघवर्णाभं मृगाक्षं कान्तिमत्तरम् ॥
भव्याङ्गं भव्यदर्पं च सर्वसौन्दर्य सागरम् ॥२२॥

सर्वाङ्गेषु मनाहरमतिवरं शान्तमूर्तिं प्रशान्तम् ॥
वन्दे लोकाभिरामं मुनिजन सहितं सेव्यमानेश्वरेशम् ॥२३॥

कोटिवाक्पतिश्रामाश्च कोटिमारकरभास्वर. ॥
दयाकोटिसागराऽसौ यशः शील पराक्रमी ॥२४॥

सर्वसारः सदा शान्तः वेदसारो हि भार्गव ॥
दश वर्ष सहस्राणि भूतले स्थितिमानसौ ॥२५॥

चतुर्दशसमाः शुक्र अभ्रमच्च वने वने ॥
राक्षसानां वधार्थाय दुष्टानां निग्रहाय च ॥२६॥

प्रादुर्भूतो जगन्नाथो मायामानुषतत्कवे ॥

अयोध्यानगरे शुक्र बहुवत्सर सहस्रकम् ॥२७॥
नानामुनिगणैर्युक्तो विहरन् धर्मवत्सलः ॥
सर्वे साकं स्वमायाभिरन्तधानमियात् कवे ॥ २८ ॥
इच्छया लीलया युक्तः स्वीये लोके वसेत्सदा ॥
माया क्रीडा पुनर्भूयात काले-काले युगे युगे ॥२९॥
लोकानां चहितार्थाय कलौ चैव विशेषत ॥
पठनाच्छ्रवणात्पुरुषं कल्याणं सततं भवेत ॥३०॥
नि॰य नात्र सन्देहः सत्यं सत्य न संशय ॥

इति श्रीभृगुसंहितायां श्रीभृगु-शुक्र संवादे षट्त्रिंशति क्षेपान्तरे वेदसागर फलम् समाप्तम् ॥[1]

१—इस कुण्डली के संबन्ध में प्रसिद्ध रामायणी श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी ने लिखा है :—

"श्रीरामावतार की कुण्डली की ग्रह स्थिति ऐसी है, कि जिसकी पुनरावृत्ति नहीं हो सकती। अतः उसके फलादेश जानने का बड़ा कौतूहल था, ज्योतिषियों ने फलादेश किया भी, पर उससे मेरे मन को संतोष नहीं हुआ। अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्रीशंकराचार्यजी के मंत्री पंडित श्रीबालकृष्णजी मिश्र साहित्याचार्य बी. ए. एल. एल. बी. की कृपा से मुझे 'वेदसागर स्तोत्र' की प्राप्ति हुई। उसमें श्रीरामचन्द्रजी की कुण्डली का महर्षि भृगु कथित फलादेश पाकर मुझे बड़ा ही हर्ष हुआ। फलादेश में कुछ अशुद्धियां हैं, जो दूर की जा सकती हैं। परन्तु मिश्रजी की सम्मति उसमें से एक अक्षर की भी परिवर्तन की नहीं हुई, इसलिए ज्यों का त्यों छापा जा रहा है। आशा है, इससे रामभक्तों को आनन्द मिलेगा।"

—"विजयानन्द त्रिपाठी"

(आ) आध्यात्मिक-दृष्टिकोण

१—राम-कथा का रूपक

एक भिन्न दृष्टिकोण से राम-कथा की आध्यात्मिक व्यंजना निम्न प्रकार से होगी—घोर अहंकाररूपी रावण शान्तिरूपी सीता को हर लेता है, जिससे जीवात्मा राम व्याकुल हो जाता है। वह शान्ति को खोजने का प्रयत्न करता है, जिससे कल्याण की कामना विचार को उत्पन्न करती है—अर्थात् शिव (कल्याण) की प्रेरणा से—माता अंजना के गर्भ से—(निर्मल सात्विक बुद्धि से) हनुमान (विचार) उत्पन्न होता है, जो अन्तरात्मा का पक्षपाती है। किम्वदन्ती है, हनुमान ने जन्म लेते ही सूर्य को निगल लिया और सूर्य से ही उन्होंने विद्या भी प्राप्त की—(सूर्य हृदय के निकटस्थ स्थान विशेष को भी कहा जाता है) जो मनन प्रारम्भ करने पर सूर्यकेन्द्र (हृदय के निकट का स्थान विशेष) विचार में आ ही जाता है, क्योंकि सात्विक भावों की प्रबलता शरीर में सूर्य केन्द्र को स्वीकार करने के लिए विवश करती है। विचार स्वतः ज्ञान नहीं, ज्ञान सूर्य को कुछ समय के लिए भले ही अन्तस्थ कर ले, किन्तु अधिक समय तक ऐसा सम्भव नहीं, अनुभवात्मक ज्ञान के ही आधार पर विचार चला करता है। शापग्रस्त होने पर जिस प्रकार हनुमान अपनी शक्ति भूल जाते हैं और जब-जब उन्हें स्मरण कराया जाता है, तब-तब वह पुनः लौट आती है, उसी प्रकार विचार में भी बहुत बड़ी शक्ति है, जब तक किसी गुरु के द्वारा चेतना जाग्रत नहीं करायी जाती, तब तक विचार-शक्ति दबी रहती है, विचार कभी सूक्ष्म और कभी व्यापक होता है। हनुमान भी इसी प्रकार कभी सूक्ष्म और कभी व्यापकरूप धारण करते हैं। जिस प्रकार आसुरी प्रवृत्ति विचार-शक्ति के प्रबल होने पर उसे दबा नहीं सकती, उसी प्रकार हनुमान कभी असुरों के द्वारा पराजित न हुए। ग्लानि जिस प्रकार गर्व का सहोदर है, उसी प्रकार सुग्रीव अहंकारी बालि का सगा भाई

था, गर्व कभी उत्साह को दबाकर उसका स्थान ग्रहण कर लेता है. जैसे बालि ने सुग्रीव का सर्वस्व हर लिया था, हनुमान सुग्रीव के साथ थे, उन्होंने सुग्रीव की राम से मित्रता करा बालि का वध करा दिया, इसी प्रकार अन्तरात्मा के सानिध्य एवं विचार की सहायता से उत्साह गर्व को नष्ट कर देता है।) सुग्रीव चंचल बानरों का सम्राट् बना दिया जाता है, जैसे चंचल मन पर उत्साह का साधन द्वारा पूर्ण अधिकार हो जाता है, हनुमान अंगदादि बानरों को जैसे वानरेश्वर सुग्रीव सीता को खोजने के लिए प्रेरित करते हैं, वैसे ही विचार और मन की समग्र भावनाओं को शान्ति की खोज में उत्साह प्रेरित करता है। (रावण द्वारा जानकी के हरे जाने पर सौ योजन विस्तृत और दुस्तर समुद्र को पार कर जिस प्रकार हनुमान ने उनका पता लगाया, वैसे ही माया के अपार सागर को पार कर केवल विचार ही शान्ति की खोज कर लेता है।) जैसे अहंकार शान्ति को भले ही हर ले, किन्तु शान्ति उसे कभी भी वरण नहीं कर सकती. वैसे ही रावण ने सीता को हर तो लिया किन्तु उन्होंने उसकी ओर देखा तक नहीं। जिस प्रकार चाहते हुए भी रावण जानकी को न प्राप्त कर सका, उसी प्रकार अहंकारी भी शान्त तो चाहता है, किन्तु उसे वह पाता नहीं।) जिस प्रकार कुछ न कुछ धै॰ अहंकार के भी साथ होता है, वैसे ही विभीषण रावण के साथ था। विभीषण की सहायता से हनुमान जानकी का पता पाते हैं, उसी प्रकार धैर्य के द्वारा विचार शान्ति का साक्षात् करता है। (स्वर्णविनिर्मित लंकाधिपति रावण के राजप्रासाद को हनुमानजी फूंक डालते हैं, जैसे विचार अहंकार की स्वर्णिम् आशाआकांक्षाओं को अपनी तीव्रता की आंच में भस्म कर डालता है।)

अहङ्कारी रावण द्वारा हरी गयी जानकी की खोज हनुमान द्वारा हो जाने पर राम ने सुग्रीव और उनकी सेना की सहायता से लंका पर चढ़ाई की और विभीषण ने रावण का साथ छोड़ राम की सहायता की। इसी भांति शान्ति को अहंकार द्वारा अपहृत होने का जब विचार निश्चय करता है, तब उत्साह और चंचल मन की एकाग्रता से ही अहंकार का उन्मूलन होता है और विभीषण की भांति धैर्य अहंकार के उपशमन में सहायक सिद्ध होता है। राम-रावण-युद्ध में हनुमान का स्थान मुख्य होता है, जैसे अहंकार के तामस-राजस-भावों का उपशमन विचार के प्रमुख होने पर ही संभव होता है। शक्ति लगने पर लक्ष्मण

मूर्छित होते हैं और संजीवनी लाकर हनुमान उन्हें पुनः स्वस्थ करते हैं। उद्योग के विफल हो जाने पर विचार उसे पुनः प्राणवन्त करता है। मेघनाद के युद्ध-कौशल से राम-लक्ष्मण नाग-पाश में बँधकर निश्चेष्ट हो जाते हैं. जैसे तमोगुण की प्रबलता अन्तर्ज्योति एवं उद्योग को हर लेती है, तब विचार ही उसे पुनः लौटाता है। आत्मदर्शन से अहंकार नष्ट हो जाता है तथा शान्ति प्राप्त हो जाती है. जैसे रावण का वधकर राम ने सीता को प्राप्त किया था, राम के वियोग में भरतजी व्याकुल थे, राम के वन से लौटने का सन्देश हनुमान उन्हें देते हैं जैसे जब तक अन्तर्ज्योति की वियोगावस्था रहती है, तब तक संयम स्वयं तपस्वी हो जाता है और विचार के उदित होते ही अन्तर्ज्योति का आभास मिलने लगता है (हनुमान के रोम-रोम में राम व्याप्त थे। जिस प्रकार विचार आत्मशक्ति से ओतप्रोत होता है। हनुमान की जाति वानर थी, जो स्वाभाविक चंचल होती है, उसी प्रकार विचार भी चंचल होता है। अयोध्या की लीला-संवरणकर राम भक्तों की रक्षा के हेतु हनुमान को छोड़ जाते हैं, जैसे आत्म-दर्शन की स्थिति सदैव नहीं रहती, यह एक ऐसी अवस्था है जो आकर पुनः लुप्त हो जाती है, किन्तु विचार सदैव रहता है, विचार न कभी जीर्ण हो और न तो उसमें विनाश के ही लक्षण दिखाई पड़ें, वह साधक को मार्ग दिखाता है और आत्मा के निकट विचार ही पहुँचना, पहुँचाता है, उसी तरह हनुमान अजर हैं, अमर हैं और राममय हैं।)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राम-कथा के प्रमुख पात्रों की व्यंजना शरीर के विभिन्न भावों के रूप में की गयी है, अर्थात् शरीर में स्थित जीवात्मा राम हैं, शान्ति सीता है, अहंकार रावण है, धैर्य विभीषण है, विचार हनुमान है, लक्ष्मण उद्योग है, उत्साह सुग्रीव है, गर्व बालि है और भरत संयम है; किन्तु यह दृष्टिकोण विशेष की बात मानी जा सकती है और सन्त परम्परा में भले ही मान्य हो जाय, किन्तु राम-कथा की ऐतिहासिकता में कुछ भी सन्देह नहीं है। यदि राम-कथा ऐतिहासिक घटना न होती, तो राम और रावण आदि की कल्पना ही क्यों की जाती! यह बात दूसरी है कि राम-कथा की घटनाओं के आधार पर राम-भक्ति-साधक अन्तर्मुखी होकर सफलता प्राप्त करे। इस दृष्टिकोण से उपर्युक्त रूपक अवश्य महत्त्वपूर्ण हो सकता है।

२—साम्प्रदायिक सामग्री और अवतार-भावना—

(१)—'महारामायण'—[१] इस रामायण को स्वायम्भुव मन्वन्तर के पहले सतयुग में शिव ने पार्वती को सुनाया था, ऐसा माना जाता है। इसमें साढ़े तीन लाख श्लोक माने जाते हैं। नव रसों में कथा का वर्णन है। कथा के साथ-साथ वेदान्त का भी वर्णन है। इसमें विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ६६ रास कनक-भवन विहारी के वर्णित हैं। कनक-भवन का सौंदर्य उसकी अन्तरंगिनी सखी, बहिरंगिनी सखी, अन्तरंग-बहिरंग-सखा, अष्टयाम-विहार, सहचर, अनुचर, किंकर, दास, अनुदास तथा सहचरी, अनुचरी, किंकरी, दासी अनुदासी, सेवक, सेविका, अन्तरंग-बहिरंग भेद से उल्लिखित है। इसमें अवध राज्यश्री वर्णन विशेष है। अयोध्या का विस्तार आयाम, सरयू आगमन-हेतु, दारुका-वन-नागेश्वर-स्थापन, अयोध्या के आठ प्राकार, बसने का विस्तार, कहाँ कौन थे। बाजार एवं जनकपुर प्राकार, बसने का प्राकार, मिथिलापुर-महिमा, महाराज का पहुनाई जाना-आना, प्रत्येक ऋतु का पृथक चन्द्रोदय में रास-वर्णन, मिथिला की आई हुई सखी, सहचरी अनुचरी, दासी, अनुदासी, सेवक, सेविका का अन्तरग-बहिरंग भेद और सबको वेदान्तिक अवस्था में संस्कृतिमूलक दिखलाते हुए, नाना प्रकार की स्तुति और विलास का वर्णन है। इसमें यौवराज्य-

---

१—राम कथा संबंधी कुछ सामग्री ऐसी भी मिलती है, जो बहुत प्राचीन मानी जाती है और जिसे ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्व नहीं दिया जा सकता। उसे आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही मान्यता देनी ठीक है। इस प्रकार की राम-कथा-सामग्री का संकलन श्रीरामदास गौड़जी के 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थ में है, जिसमें बस्ती निवासी पं० घनराज शास्त्री की दी हुई टिप्पणियों के आधार पर उन्नीस रामायणों की कथा-वस्तु का संक्षिप्त वर्णन है। यहाँ ऊपर के प्रसंग में उन रामायणों की कथा-वस्तु पर एक क्षीण प्रकाश डाला गया है। इन रामायणों के रचनाकाल जो माने गए हैं, वे बार-बार रामावतार की ओर संकेत करते हैं; इसीलिए इनका विवरण 'आध्यात्मिक-दृष्टिकोण' के अन्तर्गत दिया गया है। रेवरेण्ड फादर कामिलबुल्के ने इन रामायणों को साम्प्रदायिक रचना के अन्तर्गत माना है।—लेखक

करण, देव-प्रेरणा, शारदामति-विपर्यय, मंथरा-कैकेयी-संवाद, राजमहल-निरूपण, कोपागार-वर्णन-प्रवेश, हेतु शृङ्गार-भवन, चन्द्र-भवन, सूर्य-भवन, तारा-भवन, साम्राज्य-भवन, सभा-भवन, गुरुजन-भवन, गुरु-भवन, भोजन-प्राकार, स्थैर्य-नियम राज्य-नियम, शाप-कारण, दशरथ-मरण, भरत-यात्रा, भरत-मिलाप, निषाद-समागम और नाव पर संवादादि अनेक वर्णनों का रहस्यमय चित्रण विस्तार-पूर्वक किया गया है।

लोगों का कथन है कि ग्रन्थ अत्यन्त वृहद् होने के कारण उसमें प्रकरणों का यथाक्रम निर्वाह नहीं हो पाया है। इसमें दण्डकारण्य-उत्पत्ति, उसमें महाराज का निवास हेतु, प्रवर्षण निवास, शिलाभाग्य, वानरी-सेना-संगठन, सीता-अन्वेषण, समुद्र की महिमा, हनुमान की यात्रा, लंका-वर्णन, मुद्रिका प्रदान, सीता-संदेश-प्राप्ति, महाराज को शोक-हर्ष, सेतुबंध-वर्णन रामेश्वर-स्थापन, स्थापना में रावण आगमन, सस्त्रीक महाराज का स्थापन, रावण-पांडित्य, महाराज की सौम्यता, विभीषण-शरणागति, महाराज की उदारता का वर्णन, लंका-विजय, पुनः अयोध्यागमन, भरत-मिलाप राज्याभिषेक, सत्संग, प्रश्नोत्तर, भक्ति-रहस्य, भक्ति-राम-संवाद, काल-वार्ता, चतुर्व्यूह सहित अयोध्या निजधाम गमन, रामाश्वमेघ वर्णन, लव-कुश युद्ध आदि का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। इसकी विशेषता यह है कि ऐतिहासिक तत्वों के साथ-साथ इसमें वेदान्तिक और यौगिक तत्वों के निरूपण की भी चेष्टा की गयी है।

(२)—"संवृत रामायण" – देवर्षि नारद द्वारा कथित यह २४००० श्लोकों का रामायण माना जाता है। इसका समय रैवत मन्वन्तर का पञ्चम् सतयुग माना जाता है। इस रामायण का समग्र स्वरूप पूर्ववत् है; किन्तु इसमें विलक्षणता इस बात की है, कि स्वायम्भुव मनु और शतरूपा ने जिनसे मनुष्य की सृष्टि कही जाती है, तपस्या कर परात्परब्रह्म भगवान् के समान पुत्र की याचना की है। उनके वरदान के अनुसार रैवत नामक कल्प में मनु शतरूपा, दशरथ और कौशल्या हुए, जो राम-जन्म के कारण हुए, उसी राम-चरित्र का वर्णन विस्तारपूर्वक सात सोपानों में किया गया है।

(३)—'अगस्त्य-रामायण'—जिसकी रचना, कहा जाता है, स्वारोचिष मन्वन्तर के दूसरे सतयुग में अगस्त्य ऋषि द्वारा हुई। इसमें १६०००

श्लोक हैं। इसकी कथा गोस्वामी तुलसीदास की रामायण में शिव को अगस्त्या-श्रम पर जाकर सुननेवाले प्रसंग में आती है।

("एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी॥")
—'मानस'

इसमें भानुप्रताप-अरिमर्दन-कल्प का राम-जन्म हेतु जो दिखाया गया है, उसका पूर्ण चरित्र सप्त सोपानों में विशेष रूप से वर्णित है। इसमें राजा कुन्तल और सिन्धुमती का, दशरथ और कौशल्या होना वर्णित है। इसमें जानकी-जन्म वार्ष्णेय-यज्ञभूमि-शाधन में वर्णित है और समुद्र-उत्पत्ति, मुद्रिका-प्रदान-कारण, रामेश्वर-स्थापन-कारण, ऋष्यमूक पर्वत की स्थिति, मय, दुंदुभी की उत्पत्ति, काल-विग्रह-कारण विशेष रूप से वर्णित हैं।

४) - 'लोमश रामायण'—कहा जाता है कि इसकी रचना लोमश ऋषि ने स्वायम्भुव मन्वन्तर के एक हजार बासठवें त्रेता में की। इस रामायण में बत्तीस सहस्र श्लोक हैं। इसमें जलन्धर के कारण रामावतार जो हुआ है, उसी रामचरित को सात सोपानों में लिखा है। इसमें राजा कुमुद और वीरमती का दशरथ और कौशल्या होना वर्णित है। इसमें जानकी जन्म का हेतु जनक के शिकार में (वन में) सम्प्राप्त योग-मायादर्शन है। इसमें सती का मोह और उनका त्याग, शिव-प्रण, काम-प्रेरणा, काम-यात्रा, काम-दहन, रति-वरदान, पार्वती विवाह का वर्णन विशेष रूप से किया गया है।

(५)— मंजुल रामायण'—की रचना के विषय में कहा जाता है कि सुतीक्ष्ण ऋषि ने स्वारोचिष मन्वन्तर के १४वें त्रेता में की। इसमें एक लाख बीस सहस्र श्लोक हैं। यह रामायण भी सात सोपानों में विभक्त है। इसमें भानुप्रताप और अरिमर्दन की कथा, उनकी यज्ञ-व्यवस्था, विभ्रम-कारण शाप हेतु विशेष वर्णित है। जानकी-हनुमान का अशोक-वाटिका में संवाद, मुद्रिका की कथा-कारण और सीता का चकित होना अद्भुत है। इसमें संदेश प्राप्ति के समय राम का हनुमान के प्रति भक्ति विशेष और शबरी के प्रति नवधा-भक्ति-वर्णन, भक्ति-लक्षण, भक्त लक्षण रागानुगा वैधी-भक्ति-निरूपण आदि विशेष महत्वपूर्ण वर्णन हैं।

(६)—"सौ पद्य रामायण"—इस रामायण की रचना, कहा जाता है कि रैवत मन्वन्तर के १६ वें त्रेता में अत्रि ऋषि ने की; इसमें ६२००० श्लोक हैं। सातों सोपान इसमें भी हैं। इसमें जनक-वाटिका निरूपण, राम-माली-संवाद, अद्भुत नीति-प्रीति, भक्ति रस-खानी, वाणी-विलास और नगर दर्शन, व्यापारियों के प्रेम-कथन, मैथिलनारियों के स्नेह कथन, बालक प्रेम-स्नेह-विभावना, विवाह-तरंग हास विलास का वर्णन विशेष रूप से है। इसके अतिरिक्त जानकी-विदा-वर्णन, विवाह-कौशल, नारियों के स्नेह-कथन, हास विलास तथा वन गमन के समय ग्राम वधूटी स्नेह-कथन, ग्राम वधूटी विलाप वर्णन और जानकी-हरण प्रसंग में जानकी विलाप, राम-विलाप, शबरी-चरित्र, नारद-मिलन, सुग्रीव-मैत्री कारणसहित सजीव चित्रण किया गया है। सीता का अग्नि को सौंपना, अग्नि का भगवद्विश्वास, अग्नि को क्यों सौंपा? इसका विवरण स्पष्ट रूप से इसमें मिलता है।

(७)—"रामायण महामाला"—यह रामायण तामस मन्वन्तर के दसवें त्रेता में रचा गया। इसमें छप्पन सहस्र श्लोक हैं। इस रामायण में शिव-पार्वती संवाद है। इसमें भी सातों सोपान हैं, इसमें शिव का मरालवेश में नीलगिरि पर निवास, मगन होने का कारण, काक से कथा श्रवण गरुड़-उपदेश, गरुड़-मोह, भक्त के ज्ञान होने पर मोह होने का कारण और शिव से साक्षात्कार होने पर भी राम-कथा को न समझाने का कारण तथा काकभुशुंडि के यहाँ मोह-निवृत्ति का कारण आदि विशद रूप से समझाया गया है। इसमें सुग्रीव-विभिषण-शरणागति, कौशल्या-विश्वरूप-दर्शन, सती विश्वरूप-दर्शन का विशेष ढंग और कारण दिखाया गया है। राम के रामेश्वर-स्थापना का विशेष कारण तथा प्रयोजन दिखाया गया है। इसमें भी शिव के मरालवेश में नील-गिरि पर रहने की कथा गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने रामायण में ली है—

"तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥" —'मानस'

(८)—"सौहार्द रामायण"—यह वैवस्वत मन्वन्तर के नवें त्रेता में शरभंग ऋषि के द्वारा रचा गया माना जाता है। श्लोक सं० ४०,००० मानी जाती है। इस रामायण में दण्डकारण्य का उद्भव, खार और रामचन्द्रजी के

वहाँ जाने का कारण, नारद के मोह का कारण, काम-विजय का दम्भ, राजा शील-निधि का चरित्र, उनका स्वयंवर-यज्ञ, कन्या-सौंदर्य, नारद-विभ्रम, सौंदर्य-याचना, किन्तु उसे न पाने का कारण, शिव के गणों का परिहास, छल का कारण, नारद का क्रोधवर्णन, शाप-वर्णन, शाप ग्रहण-कारण, अनुग्रह, माया से उद्धार, सोपान बद्ध ये कथाएँ इसमें विशद रूप से वर्णित हैं, शूर्पणखा का आना, उसका काम के वश में होना, छलन-निमित्त उसके नाक-कान काटने का वर्णन, खर-दूषण-युद्ध और संहार विशद रूप से दर्शाया गया है। इसके पश्चात् रावण-मारीच-संवाद, कपट-मृग-व्यवहार, स्वर्णमृग को देखकर जानकी का आकर्षण, राम के उसमें प्रवृत्त होने का मार्मिक वचन, धनुष की रेखा खींचने का प्रसंग उसकी शक्ति का कथन कि जिसके भीतर त्रिलोकी का कोई भी वीर नहीं जा सकता था, इस स्थल पर धनुष-विद्या का बड़ा महत्व दर्शाया गया है, रावण का भिक्षा मांगने का कारण, जानकी का उसके ऊपर विश्वास करने का कारण, रेखा के बाहर जानकी के आने का कारण, जानकी-हरण और विलाप, जटायु का युद्ध-वर्णन, उसका आहत होना, उसकी मोक्ष की कथा राम का बिलाप, राम और लक्ष्मण का बानरी और राक्षसी भाषा का समझना और बोलना आदि का वर्णन बहुत विस्तार पूर्वक किया गया है।

(६)—'रामायण मणिरत्न'' - इस रामायण का प्रणयन तामस मन्वन्तर के चौदहवें त्रेता में माना जाता है। यह छत्तीस सहस्र श्लोकों में पूर्ण हुआ है। यह वशिष्ठ और अरुन्धती का संवाद है। रामायण के सात सोपान क्यों हुआ करते हैं, इसकी व्याख्या, पंचवटी की उत्पत्ति, उसकी सज्ञा गोदावरी के तट पर राम के निवास का कारण, चित्रकूट महत्त्व, कामद शिखर-वर्णन, कामद-महत्त्व वर्णन, चित्रकूट वाल्मीकि के आश्रम पर राम का जाना, प्रश्नोत्तर, देवाश्रम, अत्रिमिलन, अनुसुइया-नारी-धर्म-शिक्षा आदि बड़ी विशेषता से वर्णित हैं। अयोध्या, रास-स्थान, चन्द्रोदय उपनाम चनवल वर्णन, प्रमोद वन-विहार श्रावण, उत्साह, वसन्तोत्सव, चित्रादि सखियों के साथ रंग-स्पर्धा, सखाओं को व्यामोह, उसका राम द्वारा निवारण, रंग पंचमी (चैत्र बदी पंचमी) शीतला अष्टमी आदि का विशेष रूप से वर्णन इस रामायण में हुआ है। सीता-राम-मिलन (लंका में) विशेष रूप से वर्णित है। वेद-स्तुति, शिव-

स्तुति, इन्द्र, ब्रह्मा और गंगा स्तुतियाँ तथा अनेक अन्य स्तोत्र भी इसमें दिए गए हैं, अंत में राम का सिंहासनासीन होना और सतसंग, जिसमें गुरुगीता, भक्तिगीता, कर्मगीता, शिवगीता और वेदगीता आदि का उल्लेख है, वर्णन है।

(१०)—"मौर्य रामायण" इसका प्रणयन वैवस्वत मन्वन्तर के बीसवें त्रेता में हुआ माना जाता है। बासठ हजार श्लोक हैं। यह सूर्य और हनुमान संवाद माना जाता है। इसमें हनुमान जन्म की कथा, शुक-चरित, शुक के रक्षक होने का कारण, उसके द्वारा जानकी के निष्कासन को दण्ड-विशेष बताया गया है, लौटती समय इन्द्रावलपुर का उतरना, अंजनी और हनुमान का संवाद अंजनी का हनुमान के प्रति मातृ-धिक्कार, उसके पश्चात् माता अंजनी की प्रसन्नता एवं सीता-मिलन और उन पर भी फटकार, प्रसन्नता, राम-मिलन, लक्ष्मण मिलन, उनकी सराहना, जाम्बवान के पौरुष का कथन, सत्कार, और प्रयाग आगमन आदि का विशद वर्णन इसमें मिलता है।

(११)—"चान्द्र रामायण"—रैवत मन्वन्तर के पचीसवें त्रेता में इसकी रचना हुई, ऐसा कहा जाता है। यह हनुमान और चन्द्रमा का सम्वाद माना जाता है। इसमें पचहत्तर सहस्र श्लोक हैं। इसमें नारद-शाप, इन्द्र काम-प्रेरणा, नारद का मोह, भरत-चित्रकूट-यात्रा, केवट-संवाद का वर्णन विशेष रूप से है। केवट के पूर्व जन्म का संस्कार, मारद्वाज समागम, जनकनंदिनी की खोज में विवर-प्रवेश, स्वयंप्रभा का मिलन, सम्पाति-चरित्र, चन्द्रमा ऋषि का आगमन-कारण सम्पाति पर दया वानरी सेना मिलन, प्राकार, पद्म-अनुकरण, वायु पर विचार, यद्द की दूरदर्शिता और उसकी दूर-दृष्टि का विशद और भावपूर्ण वर्णन है।

(१२—"मैन्द रामायण" —रैवत मनवन्तर के २१ वें त्रेता में इसकी रचना हुई, माना जाता है। यह मैन्द और कैरव का संवाद है। इसमें जनक-नगर-वाटिका प्रसंग, गुरु-सेवा, माली-सवाद, अहल्या-उद्धार, गंगा वर्णन, रामेश्वर-माहात्म्य, रावण मंत्र, विभीषण-मंत्र, हनुमान का वाटिका-प्रवेश और उनका बन्धन और लंका-दहन आदि प्रसगों का वर्णन है।

(१३)—"स्वायम्भुव रामायण" —इसका प्रणयन स्वायम्भुव मन्वन्तर के पचीसवें त्रेता में माना जाता है। अठारह सहस्र श्लोकों में इसकी रचना समाप्त है। यह ब्रह्मा और नारद का संवाद माना जाता है। इसमें गिरिजा-पूजन,

विवाह, श्रंग, वन-श्रटन, सुमंत्र-विलाप, गंगा-पूजन, सीता-हरण पर मार्मिक रचना है। इसकी विचित्रता इस बात की है कि रावण को मुनि-दण्ड, मन्दोदरी के गर्भ से जानकी की उत्पत्ति, कौशल्याहरण आदि पर मौलिक एवं भिन्न कथा मिलती है। इसके अतिरिक्त दीर्घबाहु, दिलीप, रघु, अज और दशरथ की परीक्षा विशेष कही गयी है।

१४)—"सुब्रह्म रामायण"—इसका समय वैवस्वत मन्वन्तर का तेरहवाँ त्रेता माना जाता है। इसकी श्लोक सं० ३२००० मानी जाती है। इसमें प्रयाग-माहात्म्य, भारद्वाज-दर्शन भारद्वाज की पहुनाई, देवता-मंत्र, तापस-मिलन, चित्र-कूट-निवास, अनुसूइया-रहस्य आदि विशेष वर्णन के विषय हैं।

(१५) "सुवर्चस रामायण"—वैवस्वत मनवन्तर के अठारहवें त्रेता में इसकी रचना मानी जाती है। यह १५००० श्लोकों में वर्णित है। यह सुग्रीव-तारा-संवाद के रूप में रचा गया है। इसमें किष्किन्धा के प्रति लक्ष्मण का क्रोध सुग्रीव-मिलन, सीता-दर्शन की तारा को उत्कण्ठा और लौटने पर दर्शन, वालि-तारा-संवाद, बालि-राम-सवाद, रावण-दरबार, सभा-प्रसंग, मन्दोदरी का समझाना, सुलोचना-विलाप, समुद्र गाम्भीर्य, लक्ष्मण-शक्ति, संजीवनी आनन्द, पर्वत-वर्णन पर्वत सहित हनुमानजी का अयोध्या में आगमन, भरत-हनुमान-संवाद, धोबी-धोबिन का संवाद (रावण-चित्रोल्लीखन पर शान्ता का चुगली, शान्ता के प्रति सीता का अभिशाप, उनकी पक्षी योनि की प्राप्ति,) सीता-निष्कासन, लवकुश की उत्पत्ति, अश्व-बांधना, लव-कुश-युद्ध, अयोध्यावासियों की पराजय, महारावण-युद्ध-वध, लवणासुरवध, राज्य का बंटवारा और वैकुण्ठगमन आदि कथाएं विस्तार पूर्वक मिलती हैं।

(१६)—"देव रामायण" - तामस मनवन्तर के छठवें त्रेता में इसकी रचना मानी जाती है। इसक. कथा एक लाख श्लाकों में वर्णित है। यह इन्द्र-जयन्त संवाद है। इसमें जयन्त का काक के रूप में होना, राम-परीक्षा, उनका क्रोध, अशरणता, नारद-मिलन, उपदेश, राम-शरणागति, एवं राम-विजय, भरत-विजय, शत्रुघ्न-विजय, हनुमान-विजय, बानर-विदाई, अंगद का व्यामोह, विभीषण-पुत्र को अयोध्या की कोतवाली, जानकी-विनय, जानकी नाटक, नाम, रूप, लीला, धाम, चतुर्व्यूह भक्ति, धाम-महिमा, सरयू महिमा, हनुमत-राज्याभिषेक,

हनुमत्कार्य, उपासना, विधि, महिमा, माधुर्य, तीर्थों का परस्पर प्रसंग, धाम और पुरी निरूपण, नगर-निरूपण, ग्राम निरूपण, भाषा परिवर्तन विधि, शब्दपरिशिष्ट वर्णन आदि इस रामायण की विशेषताएं हैं।

(१७)—"श्रवण रामायण"—एक लाख पचीस हजार श्लोकों का यह रामायण स्वायम्भुव मन्वन्तर के ४० वें सतयुग में बना। यह इन्द्र-जनक संवाद माना जाता है। इसमें दशरथ का अहेर-वर्णन, श्रवणकुमार की मातृ-पितृ-भक्ति-वर्णन, श्रवण विवाह, पातिव्रत-निरूपण, श्रवण-वध, उसके पिता का दशरथ के प्रति शाप, मंथरा की उत्पत्ति मृगीशाप, भरत की मातामही का सख्य, दशरथ का प्राणघात-कारण, सुमंत्र-स्मरण, अष्टामन्त, अष्टपूर, सोनह, सामन्त, राज्यांग आदि विशेष रूप से वर्णित हैं। चित्रकूट में भरत-राम-संवाद, वशिष्ठ मध्यस्थ का भाषण, जनक-आगमन, मिथिला-समाज, अवध-समाज, एकत्र स्थित सभा, पादुका-याचन, पादुका-राज्य-प्रसंग, नन्दिग्राम-निवास, रामभरतानुवर्त्तन, पादुका द्वारा विशेष कहा गया है।

(१८)—"दुरन्त-रामायण"—वशिष्ठ जनक संवाद का यह रामायण ६१००० श्लोकों में वर्णित है, जो वैवस्वत मन्वन्तर के पचीसवें त्रेता में रचा गया माना जाता है। इसमें भरत-महिमा, भरत-शपथ, भरत-विलाप, कैकेयी-क्षोभ, भरत की राम को लौटाने की तत्परता, लक्ष्मण-रोष, निषाद-भरत-संवाद, निषाद-रोष, विभ्रम, चूड़ामणि की कथा, चूड़ामणि-चिन्ह, मुद्रिका-चूड़ामणि का परिवर्त्तन हेतु, सीता सन्देश-प्राप्ति, सीता-दौर्बल्य, प्रवर्षणगिर पर निवास, किष्किन्धा-वर्णन, ससार भर के वानरों पर वालि-सुग्रीव का अधिकार, देवताओं के वानर होने का कारण प्रयोजन, दुन्दुभी अस्थि-ताल-वर्णन, राम की वालि-वध-प्रतिज्ञा, मधुवन-प्रशंसा, मधुवन रक्षा-विधि, सागर-तट पर अंगद का प्रलाप, वानरों द्वारा अपने पौरुष का कथन, हनुमान के मौन का कारण, स्मरण से अनन्त शक्ति की प्राप्ति, रामप्रसाद की अधिकारिता, लंका-दहन, विभीषण के घर बच जाने का कारण, हनुमानजी के न जलने का कारण, विभीषण-राज्याभिषेक का कारण, समुद्र के प्रति विनय, समुद्र-भर्त्सना, समुद्र को भय, कम्पना, समुद्र-शरणागति, समुद्र द्वारा सेना उतारने का प्रकार—निर्वाचन, नल-नील सामर्थ्य, उपल-संतरण प्रकार इत्यादि कथाएँ विशेष रूप से वर्णित हैं।

(१६) – "रामायण चम्पू"—आद्ददेव मन्वन्तर का पहला प्रणेता इसकी रचना का समय माना जाता है। यह शिव-नारद के संवाद-रूप में वर्णित है। इसकी रचना पन्द्रह सहस्र श्लोकों में हुई है। इसमें संक्षेप में सातों सोपान हैं, रामायण-चित्र-वर्णन चम्पू या कार्य है। इस रामायण में शीलनिधि राजा के यहाँ दोनों रुद्रगणों का आगमन-कारण, नारद का परिहास, नारद-क्रोध, रुद्र-गण के प्रति श्राप, वीरभद्र की उत्पत्ति, सती-देह-त्याग, दक्ष-यज्ञ-विनाश, शिव-अखण्ड समाधि, त्रिपुर-उत्पत्ति, पार्वती का हिमांचल के यहाँ उत्पत्ति और तप, काम-प्रेरणा काम कलाप, शिव के नेत्र की ज्वाला का वर्णन, काम-दहन, पार्वती-विवाह मुण्डमाला के धारण का कारण, गणेश-उत्पत्ति, स्वामिकार्तिकेय-उत्पत्ति, वैषम्य भाव, कैलाश-स्थिति, रामभक्ति प्रकार, राम-ध्यान, राम-कन्य-स्वरूप, वीर-स्वरूप, इन्द्ररथ-प्रेषण, पाताल-आगमन, अरुण-व्यवहार अरुण-गरुण संवाद, कालनेमि-छल, संजीवनी-महिमा, शक्ति लगने से सूर्योदय में मृत्यु का हेतु तथा सुषेण वैद्य के आगमन की कथा विशेष विशद रूप से वर्णित है।[१]

(२०)—तुलसी का 'मानस'—उपर्युक्त रामायणों की सामग्री में एवं उनके रचयिताओं के संबंध में विचार करने से पता चलेगा कि परम्परा से चली आती हुई राम-कथा की रचना उनके रचयिताओं ने विभिन्न समयों में की (जब जब रामावतार होता रहा) आध्यात्मिक दृष्टिकोण से राम-कथा की रचना के समय निर्धारण के संबंध में गोस्वामी तुलसीदास के विचारों का विवरण भी उपस्थित करना आवश्यक है। क्योंकि इस संबंध में 'मानस' के वक्ताओं से श्रोताओं को बताया गया है कि -

"रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमय सिवा सन भाखा।।"

अर्थात् राम-कथा को रचकर शिव ने अपने मानस में ही रख छोड़ा और समय पाकर उसे पार्वती को सुनाया।

आगे चलकर उमा-महेश्वर-सम्वाद से स्पष्ट हो जाता है कि राम-कथा का रूप समय-समय पर बदल जाया करता है :—

१—देखिए श्रीरामदास गौड़ कृत 'हिन्दुत्व' पृ० १२६–१४३ रामायण-खण्ड।

"नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
कल्प भेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥
कल्प-कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई॥
हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता। कहहिं सुनहिं बहु विधि सब सन्ता॥
रामचन्द्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहि न गाये॥[१]

इसके अतिरिक्त

"पुनः पुनः कल्प भेदाज्जात श्रीराघवस्य च।
अवतारः कोटिशोऽत्र तेषु भेद क्वचित् क्वचित्।"[२]

अर्थात् श्रीराम का जन्म कल्प-भेद के अनुसार बार-बार होता आया है और करोड़ों इस प्रकार के अवतार हो चुके हैं।

'राम-चरित-मानस' में काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं कि—

"इहाँ बसत मोहिं सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥
करउँ सदा रघुपति गुनगाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना॥
जब-जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगतहित मनुज सरीरा॥
तब तब जाइ रामपुर रहऊँ। सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥
पुनि उर राखि राम सिसु रूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा॥"[३]

और इसके पहले जब काकभुशुण्डि मनुष्य शरीर में लोमश ऋषि के आश्रम पर जाते हैं और उनके द्वारा शापग्रस्त होकर चाण्डाल पक्षी कौआ हो जाते हैं, तब भगवान की प्रेरणा से लोमश ऋषि उन्हें अपने आश्रम पर राम-कथा कहने के लिए रोक लेते हैं :—

"मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरित मानस तब भाषा॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई॥
राम चरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥

१—देखिए 'राम चरित मानस' (बाल काण्ड)—तुलसीदास। २—देखिए 'आनन्द-रामायण' (पूर्व काण्ड सर्ग,)। ३—'रामचरित मानस' (उत्तर काण्ड)।

तोहि निज भगत राम कर जानी। तातें मैं सब कहेउँ बखानी ॥"[१]
और इसके पश्चात् काकभुशुण्डि को उपदेश देते हुए वरदान देते हैं कि :—
"राम भगति जिन्हके उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिय तिन्ह पाहीं ॥"

+ +

"राम भगति अविरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें ॥

सदा रामप्रिय होहु तुम्ह, सुभगुन भवन अमान।
कामरूप इच्छा मरन, ग्यान बिराग निधान ॥
जेहि आश्रम तुम बसब पुनि, सुमिरत श्रीभगवन्त।
ब्यापिहि तहँ न अविद्या, जोजन एक प्रजन्त ॥

काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ ॥
राम रहस्य ललित विधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना ॥
बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह रामपद होऊ ॥
जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं ॥
सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा ॥
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी ॥

अतः स्पष्ट और सबसे विलक्षण बात तो यह है कि राम-कथा की सृष्टि शिव ने अपने मानस में करके बहुत काल तक रख छोड़ा और पार्वती से समय पाकर मौखिक राम-कथा (लिपिबद्ध राम-कथा नहीं) बखान कर कही। उसी मानस की राम-कथा शिव के प्रसाद से लोमश ऋषि को मिली तथा उन्होंने भी जो राम-कथा मौखिक (लिपिबद्ध नहीं) सुनी थी, उसे काकभुशुण्डि से भी बखान कर (मौखिक ही) तब कही, जब उन्हें राम का अधिकारी भक्त समझा। क्योंकि— "राम भगति जिनके उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिय तिन्ह पाहीं ॥" कालान्तर में काकभुशुण्डि ने भी गरुड़ को भी वही राम-कथा मौखिक (लिपिबद्ध नहीं) सुनायी। जो राम-कथा का अधिकारी समझा जाता था, वही राम-कथा सुन पाता था। सर्वसाधारण में राम-कथा का प्रचार नहीं था और न तो राम-कथा लिपि-

१—'मानस' (उत्तर काण्ड)।

बद्ध थी और एक बात यह भी उपयुक्त अवतरणों से प्रकट है कि २७ कल्पों प्रथम ही नहीं, बल्कि राम-कथा अनन्त अनादिकाल से चली आ रही है; कि मौखिक ही। क्योंकि पार्वती भी शिव से कहती हैं कि 'गरुड़ महाग्यानी गुन रासी हरि सेवक अति निकट निवासी ॥ तेहि केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथ मुनि निकर बिहाई ॥ कहहु कवन बिधि भा संवादा। दोउ हरि भगत का उरगादा ॥'' "बर तर कह हरि कथा प्रसंगा। आवहि सुनहि अनेक बिहंगा ॥" उपयुक्त प्रसंगों में कथा कहने तथा सुनने का ही विवरण है। काकभुशुण्डि गरुड़ से जो कुछ राम-कथा के सम्बन्ध में कह रहे हैं, वह सब युक्ति से बढ़ा चढ़ाकर नहीं कह रहे हैं, बल्कि अपने आँखों देखो अपनी सामर्थ्य के अनुसार क्योंकि जब-जब अयोध्या में राम का अवतार होता है, तब-तब वे उनके दर्शन हेतु वहाँ जाया करते हैं। वे कहते हैं :—

"निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई ॥
कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेखी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी ॥
महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनन्त रघुनाथा ॥
निज-निज मति मुनि हरिगुन गावहि। निगम सेष सिव पार न पावहिं ॥
तुमहिं आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहि नहि पावहिं अन्ता ॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ॥
राम काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा ॥
मरुत कोटि सत बिपुल बल, रवि सतकोटि प्रकास।
ससि सतकोटि सुसीतल, समन सकल भव त्रास ॥
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरन्त।
धूमकेतु सत कोटि सम, दुराधरष भगवन्त ॥
प्रभु अगाध सतकोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला ॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन ॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा ॥
कामधेनु सतकोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना ॥
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ॥

विष्नु कोटि सत पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥
धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥"

इसके अतिरिक्त वे कहते हैं—

"राम अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।
संतन सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहिं सुनायउँ सोइ॥"

अर्थात् जो कुछ मैंने आंखों देखा वह और सन्तों से जो कुछ सुना वह सब मैंने आपको सुनाया। उपर्युक्त विवरणों से भली-भांति स्पष्ट है कि राम-कथा मौखिक ही अनन्त काल से चली आ रही है, अतः वाल्मीकि के समकालीन रामके होते हुए, यदि वाल्मीकि के पूर्वज च्यवन ऋषि द्वारा राम-कथा लिखी गयी और उसके पहले जब लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था, तब मौखिक रूप में ही राम-कथा का प्रचलन था, तो अत्युक्ति नहीं होगी। राम-कथा ऐतिहासिक होते हुए भी आध्यात्मिक तत्वों के निकट अधिक है। अतः आध्यात्मिक तत्वों को ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से परखने से ही वस्तु-स्थिति का पता नहीं चल सकता। उसमें अध्यात्मवादी दृष्टिकोण भी अपेक्षित होगा। चाहे ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर राम के शासनकाल को भले ही किसी निश्चित तिथि से न माना जाय; किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि राम-कथा काल्पनिक आधार पर नहीं है, बल्कि वह वास्तविक और ऐतिहासिक घटना है, किन्तु राम-कथा का बहुत समय तक मौखिक रहने के कारण उसका कोई निश्चित् समय कि किस तिथि से राम-कथा का उद्गम हुआ है, नहीं निर्धारित किया जा सकता।

राम के बार-बार अवतार लेने और वन जाकर रावण-वध करने का वर्णन दूसरी राम-कथाओं में भी मिलता है, जैसे सीता वनगमन के लिए राम से कहती हैं कि मैंने बहुत-सी रामायणें सुनीं, किन्तु उनमें राम कहीं भी सीता के बिना वन नहीं जातेः—

"रामायणानीह पुरातनानि पुरातनेभ्यो बहुशः श्रुतानि।
नक्वापि वैदेहसुतां विहाय रामो वनं यात इति श्रुतं मे॥"

—(कवि मल्लकृत 'उदारराघव' सर्ग ५–४८)

अतः स्पष्ट है कि भारत में राम-कथा के पीछे आध्यात्मिक-भावना भी चलती है, जिसके अनुसार रामावतार हर कल्प में होता है; इसके संबंध में अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जिससे कहना पड़ेगा कि राम-कथा अनादि काल से चली आ रही है। इसीलिए कुछ लोग इसे कल्पभेदी कथा कहते हैं।

द्वितीय-खण्ड

राम-कथा का पल्लवन

१–भारतीय-साहित्य में राम-कथा

२–विदेश में राम-कथा

१—भारतीय-साहित्य में राम-कथा

अ—महाभारत की राम-कथा

महाभारत में राम-कथा का चार स्थलों पर उल्लेख मिलता है, जिसमें रामोपाख्यान सबसे विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। इस स्थल के अतिरिक्त राम-कथा एवं उसके पात्रों का उल्लेख उपमा आदि के लिए लगभग ५० स्थलों पर और भी हुआ है। युद्ध सम्बन्धी द्रोणपर्व में राम-कथा का १४ बार और अन्य पर्वों—भीष्म, कर्ण और शल्यपर्व में उसका ५ बार उल्लेख हुआ है। राम-कथा का आरण्यपर्व में दो बार वर्णन और १५ बार संकेत मिलता है। इस पर्व में राम के अवतार होने का भी वर्णन मिलता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि वाल्मीकि-कृत रामायण के संतुलन में महाभारत की राम-कथा संक्षिप्त रूप में है। इसका कारण भी था; क्योंकि राम-कथा (वाल्मीकि कृत रामायण की कथा) एक स्वतंत्र और विस्तृत रचना है, किन्तु महाभारत में वर्णित राम-कथा प्रसंगानुसार एक उदाहरण के रूप में वर्णित है, जिसका संक्षिप्त होना स्वाभाविक था।

आ—पौराणिक साहित्य में राम-कथा

(१) हरिवंश—इसमें राम कथा का संक्षिप्त वर्णन मिलता है, जिसमें रामावतार के उल्लेख के बाद बनवास से लेकर रावण-वध तक रामायण की मुख्य घटनाओं का वर्णन है; अनन्तर रामराज्य की प्रशंसा की गई है। इसमें विष्णु के अवतारों की तालिका में राम का भी नाम दिया गया है। राम-कथा सम्बन्धी अध्याय ४१, ५८, ७८, ९३, १०४, १२८ और १३२ हैं; जिनमें राम-कथा का वर्णन मिलता है।

(२) विष्णु पुराण—इसमें अयोनिजा सीता का उल्लेख है और राम-कथा का संक्षिप्त रूप भी वर्णित है, इसके चौथे अध्याय में राम-कथा सम्बन्धी एक विवरण मिलता है, जो हरिवंश की अपेक्षा अधिक विस्तृत है।

(३) वायु पुराण[१]—इसकी राम-कथा विष्णु पुराण से मिलती है। इसके राम-कथा से सम्बन्धित अध्याय २८ एवं ८६ द्रष्टव्य हैं।

(४) भागवत पुराण—इसमें राम-कथा सम्बन्धी जो सामग्री मिलती है, उसमें सीता को लक्ष्मी और राम को विष्णु का अवतार माना गया है। सीता-स्वयंवर और उनके त्याग की भी कथा का उल्लेख मिलता है। राम-कथा का वर्णन करनेवाले इसके नवें स्कन्ध के १०वें, ग्यारहवें अध्याय हैं।

(५) कूर्म पुराण—में राम-कथा की घटनाओं का जो उल्लेख हुआ है, उसका वर्णन निम्नलिखित अध्याय—(पूर्व विभाग)—१०, ११, १६, २१ और उत्तर-विभाग के अध्याय ३४ में मिलता है। राम-कथा में राक्षस-वंश-वर्णन और सूर्यवंश के अन्तर्गत रामचरित का वर्णन है; जिसमें रावण युद्ध के पश्चात् राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना का उल्लेख है और पतिव्रतोपाख्यान में माया सीता के हरण आदि की घटनाएँ वर्णित हैं।

(६) अग्नि पुराण - इसकी राम-कथा वाल्मीकि रामायण की राम-कथा का संक्षिप्त विवरण है, इसमें राम का मंथरा पर अत्याचार करना वनवास का कारण बताया गया है और राम द्वारा माल्यवत् पर्वत पर चतुर्मास यज्ञ करने का उल्लेख है (अध्याय ५ से ११ तक)।

(७) नारद पुराण—इसके पूर्व खण्ड में एक संक्षिप्त राम-चरित के बाद (बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक) द्रविड़ देश में ब्राह्मणों से बँधे हुए विभीषण की राम द्वारा मुक्ति की कथा दी गयी है (अध्याय ७६) और उत्तरकाण्ड में बालकांड से उत्तरकाण्ड तक समस्त वाल्मीकि रामायण की संक्षिप्त राम-कथा दी गयी है, जिसमें राम और लक्ष्मणादि नारायण-संकर्षणादि के अवतार बताए गए (अध्याय ७५)।

(८) ब्रह्म पुराण—'हरिवंश' के ४१वें अध्याय की राम-कथा इसके अध्याय २१३वें में ज्यों की त्यों पाई जाती है। १७६वें अध्याय में जहाँ रावण-चरित्र

१—कुछ विद्वान इसे शिवपुराण का दूसरा नाम मानते हैं और कुछ लोग इन पुराणों को भिन्न मानते हैं। देखिए 'हिन्दू-संस्कृति' विशेषांक—'कल्याण'—गीताप्रेस, गोरखपुर (पृ० २६८)।

का विवरण मिलता है, रावण की तपस्या वर्णन के पश्चात् एक संक्षिप्त राम-कथा का उल्लेख मिलता है, जिसमें रावण द्वारा अमरावती से हरी हुई वासुदेव-प्रतिमा का वृत्तान्त है। रावण-वध के पश्चात् उस प्रतिमा को राम ने समुद्र में प्रवाहित कर दिया था और जिसे कालान्तर में श्रीकृष्ण ने पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में स्थापित किया था। इस ग्रन्थ में शेष राम-कथा का विवरण गौतमी-माहात्म्य के अन्तर्गत (अध्याय ७०-१७५ में) मिलता है। इस माहात्म्य के अन्तर्गत विभिन्न तीर्थों का महत्त्व दिखाने के लिए अनेक कथाएँ दी गयी हैं, जिनमें राम-तीर्थ-माहात्म्य में राम-कथा का विवरण है। इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं :—

१ कैकेयी द्वारा, देव-दानव-युद्ध में तीन वरों की प्राप्ति, २—श्रवणकुमार-वध के प्रायश्चित्त स्वरूप दशरथ का अश्वमेध यज्ञ करना और उसमें आकाश-वाणी द्वारा उन्हें पुत्रोत्पत्ति का आश्वासन दिया जाना, ३—वनवास के समय राम द्वारा गौतमीतट पर पिण्डदान से दशरथजी की नरक से मुक्ति। (दे० अध्याय १२३) ४--सहस्र कुण्ड माहात्म्य में सीता-त्याग की कथा है और इसके पश्चात् राम के सीता का स्मरण करके गौतमी-तट के सहस्र-कुण्ड पर तप करने का उल्लेख है। (दे० अध्याय १५४) और ५—किष्किन्धातीर्थ-माहात्म्य में रावण-वध के पश्चात् अयोध्या की यात्रा करते हुए गौतमी-तट पर रामके पाँच दिन तक निवास तथा शिवलिंग पूजा का वर्णन है।

(६) गरुड़ पुराण—इस ग्रन्थ के १४३वें अध्याय में राम-कथा का वर्णन है। इसमें शूर्पणखा को राम स्वयं कुरूप करते हैं और अयोध्या लौटने पर पितृ-कर्म के हेतु राम गयाशिर जाते हैं।

(१०) स्कन्द पुराण—इसके माहेश्वरखंड के अध्याय ८ में रावण-चरित के पश्चात् रामावतार वर्णन एवं राम द्वारा रावण-वध, वैष्णव-खंड में कार्तिकेय-माहात्म्य, अध्याय २०-२५ में, अवतार-कारण-वर्णन के अन्तर्गत, वृन्दा-शाप एव धर्मदत्त और कहला की कथा का विवरण है, जिसमें धर्मदत्त दूसरे जन्म में दशरथ होते हैं। अयोध्या-माहात्म्य में (अध्याय ६ , राम के स्वधामगमन की कथा है। ब्राह्म-खंड के अन्तर्गत—सेतु माहात्म्य में एक संक्षिप्त राम-कथा है, जिसमें सेतुबन्ध का वर्णन है (अ० २), सेतुबन्ध के पूर्व राम द्वारा शिव-लिंग की स्थापना का वर्णन (अ० ७), सीता की अग्नि-परीक्षा एवं अग्नि द्वारा

सीता के सतीत्व की प्रशंसा का उल्लेख मिलता है (अ० २२), रावण-वध के पश्चात् ब्रह्महत्या के प्रायश्चित के लिए राम द्वारा कोटितीर्थ पर शिव-लिंग की स्थापना का वर्णन है। (दे० अ० २७), विभीषण द्वारा सेतु-बन्ध तोड़ने के लिए राम से प्रार्थना (दे० अ० ३०); अध्याय ४४ से ४७ तक एक संक्षिप्त *राम-कथा के पश्चात् जो महाभारत में वर्णित रामोपाख्यान के आधार पर वर्णित* है, राम द्वारा रावण-वध के प्रायश्चित रूप रामेश्वर शिव-लिंग की स्थापना, हनुमान का शिवलिंग लाने के निमित्त कैलाश भेजा जाना और मुहूर्त्त व्यतीत हो जाने के भय से राम द्वारा बालुका-लिंग की स्थापना तथा हनुमान का बाद में पहुँचकर शोकार्त्त होना आदि उल्लिखित है।

धर्मारण्य खण्ड के अन्तर्गत अध्याय ३०–३१ में ८६ श्लोकों के अन्तर्गत जो राम-कथा दी गयी है, उसमें राम-कथा की मुख्य-मुख्य घटनाओं की तिथियों का वर्णन है और राम द्वारा धर्मारण्य को तीर्थ-यात्रा का उल्लेख है। *अवन्ती-खण्ड के अन्तर्गत अध्याय ७९ में हनुमान रुद्रावतार माने गये हैं।* रेवाखण्ड के अन्तर्गत अध्याय १३६ में अहल्योद्धार की कथा है, जिसके अनुसार राम द्वारा मुक्ति प्राप्त करने पर अहल्या नर्मदा तीर्थ पर शिव की पूजा करती है।

नागर खण्ड अध्याय ९६–९८ में इन्द्र और दशरथ की मैत्री का उल्लेख है दशरथ द्वारा पुत्र प्राप्त्यर्थ कार्तिकेयपुर में तप करने, उनको जनार्दन द्वारा आश्वासन मिलने, दशरथ के चार पुत्रों एवं एक पुत्री जिसका नाम शान्ता था, *की प्राप्ति का वर्णन है। अध्याय ९९–१०३ में राम के स्वर्गारोहण का वर्णन है,* जिसमें रामसीता-त्याग एवं लक्ष्मण के सरयू में डूब जाने के बाद विभीषण के समीप जाकर उसको धर्मोपदेश देते हैं, *विभीषण की प्रार्थना करने पर राम द्वारा* सेतु-बन्ध-भंग के पश्चात् राम का अनेक तीर्थों में शिव लिंग की स्थापना का वर्णन है। अध्याय २०८ में अहल्योद्धार, अहल्या द्वारा तीर्थ यात्रा एवं शिवपूजा का उल्लेख है।

प्रभास खण्ड में प्रभास-क्षेत्र-माहात्म्य में (अध्याय १११–३) रामेश्वर-तीर्थ में राम-लक्ष्मण द्वारा अनेक लिंगों की स्थापना, अध्याय १२२ में रावण द्वारा रावणेश्वर-तीर्थ में शिवलिंग की स्थापना, अध्याय १७१ में दशरथ द्वारा पुत्र प्राप्ति के लिए दशरथेश्वर में शिवलिंग की स्थापना का उल्लेख है।

(११) पद्म पुराण—इसके पाताल खण्ड में राम-कथा की बहुत-सी सामग्री प्राप्त होती है। उत्तर खण्डमें भी राम-कथा का पूरा वर्णन मिलता है। पद्म-पुराण की राम-कथा की विशेषतायें हैं :—

१— स्कन्द पुराण की भाँति राम-कथा की मुख्य-मुख्य घटनाओं की तिथियों का उल्लेख है अध्याय—३६-६-८०।

२— धोबी के कहने से सीता-परित्याग का वर्णन है. अध्याय ५५-५८।

३— कुश एवं लव की उत्पत्ति एवं उनका राम की सेना से युद्ध का वर्णन, अध्याय ५६-६६।

४— राम-सीता-मिलन अर्थात् राम-कथा का सुखान्त वर्णन अध्याय ६७-६८। इसके अतिरिक्त पाताल खण्ड के १०० वें अध्याय में बँधे हुए विभीषण की राम द्वारा मुक्ति का वर्णन ११२ वें अध्याय में एक 'पुराकल्पीय रामायण' का वर्णन भी मिलता है, जिसमें महाराज दशरथ की चार पत्नियों–कौशल्या, सुमित्रा, सुरूपा और सुवेषा –का वर्णन है, बाल-लीला का वर्णन करते हुए सीता स्वयंवर में इन्द्र, रावण आदि के विफल प्रयास के पश्चात् राम द्वारा धनुर्भंग करने, शिव-प्रदत्त अजगव धनुष पर वानरी-सेना के समुद्र पार होने का उल्लेख है। कुम्भ-कर्ण का वध इसमें रावण-वध के पश्चात् वर्णित है। इसके ११३ वें अध्याय में राम शिव से शिवभक्ति की प्रार्थना करते हैं।

५—सृष्टि खण्ड में शम्बूक-वध (अध्याय ३५), राम-अगस्त्य-संवाद, जो वाल्मीकि रामायण से मिलती हुई कथा के आधार पर है, (अध्याय ३६–३८), राम का विभीषण को उपदेश देना और मथुरा में वामन की प्रतिष्ठा करना। (अध्याय ३६) आदि कथाएँ वर्णित हैं।

६—उत्तर खण्ड में राम रक्षा स्तोत्र (अध्याय ७४), शम्बूक-वध-कथा (अध्याय २३०) के अतिरिक्त राम-कथा का एक पूर्ण वर्णन भी उपलब्ध होता है (अध्याय २६६–२७१)। आरम्भ में रामावतार-कारण-वर्णन में स्वायम्भू-मनु की तपस्या का उल्लेख है, जिसमें वे विष्णु को पुत्र रूप में तीन जन्मों में लगातार प्राप्त कर सके। शेष कथा वाल्मीकि रामायण के आधार पर संक्षिप्त रूप से वर्णित है; किन्तु इसकी विशेषता यही है कि यह रचना अवतारवाद के अधिक निकट है। राम और सीता पूर्ण रूप से विष्णु और लक्ष्मी के अवतार--

हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न क्रमशः अनन्त, सुदर्शन और पांच जन्य के अवतार हैं। इस कथा के अनुसार राम ने शूर्पणखा को विरूप किया था।

(१२) ब्रह्म वैवर्त्त पुराण—इसमें वेदवती की कथा के पश्चात् सीता-हरण का उल्लेख किया गया है, जिसमें अग्नि द्वारा एक माया रूपी सीता की सृष्टि का वर्णन है (दे० प्रकृति खण्ड अध्याय १४)।

(१३) ब्रह्माण्ड पुराण—इस पुराण के उत्तर खण्ड 'अध्यात्म रामायण' में राम-कथा का पूर्ण वर्णन मिलता है, जो वाल्मीकि रामायण की ही भाँति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी रामयण का अनुवर्त्तन प्रायः गोस्वामी तुलसीदास ने किया है। इसमें वर्णित राम-कथा उमा-महेश्वर-संवाद के रूप में पायी जाती है। इस ग्रन्थ की रामानन्द सम्प्रदाय में बहुत बड़ी प्रतिष्ठा है। रामचरित मानस की अपेक्षा इसका आधार 'आनन्द रामायण' और एकनाथ के मराठी-रामायण में भी ग्रहण किया गया है। वेदान्त-दर्शन के आधार पर इस ग्रन्थ में राम-भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ की राम-कथा की विशेषताएँ हैं–१–राम-सीता और लक्ष्मण के रूप में परब्रह्म, प्रकृति और शेष के अवतार होने का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है। विश्वामित्र, वशिष्ठ, जनक, कौशल्या, कुम्भकर्ण और रावण आदि रामअवतार के रहस्य को जानते हैं। २—वाल्मीकि का राम-नाम-माहात्म्य के लिए अपनी आत्म कथा का वर्णन। ३—लक्ष्मण का १२ वर्ष तक उपवास करना। ४–राम द्वारा सेतु-बंध के प्रथम शिवलिंग की स्थापना का वर्णन। ५—रावण का शुक के परामर्शानुसार यज्ञ करना तथा अंगद द्वारा उसका भंग किया जाना। ६ रावण की नाभि में अमृत का होना और ७—रावण के वैकुण्ठ जाने के उद्देश्य से सीता-हरण का वर्णन आदि।

(१४) नृसिंह-पुराण—इसके छः अध्यायों में थोड़े परिवर्त्तन के साथ वाल्मीकि रामायण की संक्षिप्त राम-कथा का उल्लेख मिलता है (अध्याय ४७–५२)। इस ग्रन्थ में राम नारायण के पूर्ण अवतार और लक्ष्मण शेष के अवतार माने गये हैं। अहल्या अपने पति गौतम के शाप से 'पाषाणभूता' कही गई है। सीता-स्वयंवर के पश्चात् अन्य क्षत्रिय राजाओं का राम पर आक्रमण दिखाया गया है। सीता-हरण के समय रावण के सीता को स्पर्श न करने का वर्णन है।

रावण-वध के पश्चात् राम के यज्ञों का, और उनके स्वर्गारोहण का वर्णन किया गया है। रावण के वंश-वृत्तान्त का उल्लेख आरम्भ में कर दिया गया है। (४७ वाँ अध्याय)।

(१५) विष्णु धर्मोत्तर पुराण—इसमें रावणवध की कथा के पश्चात् भरत द्वारा गन्धर्वों के विरुद्ध युद्ध का उल्लेख हुआ है (२००-२६६ अध्याय), इसके अन्तर्गत एक रावण चरित भी मिलता है, जिसमें राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न क्रमशः नारायण, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के अवतार माने गये हैं (अध्याय २१२). इसके साथ ही रावण एक स्वर्ण शिवलिंग भी अपने पास रखता था, इसका भी उल्लेख मिलता है (देखिए अध्याय २२२ श्लोक १२)।

(१६) वह्निपुराण - इसके संबन्ध में डा० रेवरेण्ड फादर कामिलबुल्के लिखते हैं कि वह्निपुराण की सं० १६४६ की एक हस्तलिपि लन्दन में सुरक्षित है, जिसमें अत्यन्त विस्तृत राम-कथा पायी जाती है। बालकाण्ड से युद्ध काण्ड तक समस्त रामायण की कथा-वस्तु का वर्णन दिया गया है, प्रारम्भ में रामावतार के कारण (भृगुशाप) तथा रावण-कुम्भकर्ण की जन्म-कथा (मधु-कैटभ, हिरण्य-कशिपु-हिरण्याक्ष) का उल्लेख किया गया है। 'पापाणभूता' अहल्या का (पृ० १८२ अ) तथा हनुमान के मूषिका रूप से लंका-प्रवेश का भी उल्लेख मिलता है। शेष कथा (पृ० २६६ अ) में किसी मौलिकता का नाम भी नहीं है।†

(१७) शिवमहापुराण—इसमें रुद्रसंहिता के साथ ही साथ सृष्टि खण्ड में नारद-मोह की कथा (अध्याय ३-४), सती खण्ड में सती द्वारा राम की परीक्षा तथा राम का सती से बतलाना कि मैंने शिव की आज्ञा से अवतार लिया है (अध्याय २४-२६), युद्ध खण्ड में वृन्दा-शाप की कथा उल्लिखित है (अध्याय २३)।

इसके अतिरिक्त शतरुद्रसंहिता में शिव के वीर्य से हनुमान के जन्म की कथा (अध्याय २०) दी गयी है। एक अन्य प्रेस से प्रकाशित शिवपुराण में धर्म-

†—देखिए 'राम-कथा' पृ० १६१।

संहिता के अन्तर्गत एक संक्षिप्त राम-कथाका उल्लेख मिलता है (अध्याय १३-१४) एवं ज्ञान-संहिता के अन्तर्गत वनवास के समय सीता द्वारा दशरथ के लिए पिण्डदान का वर्णन मिलता है (अध्याय ३०)। समुद्र पार करने के लिए राम शिव से प्रार्थना करते दिखाए गये हैं (अध्याय ५०)

(१८) श्रीमद्देवी भागवत पुराण—में नवरात्र माहात्म्य के अन्तर्गत रामायण से मिलती हुई राम-कथा का वर्णन मिलता है, इसमें रामने सूर्पणखा को विरूप किया था। इसमें सीताहरण के पश्चात् नारद के उपदेशानुसार राम-रावण पर विजय पाने के निमित्त *नवरात्रोपवास* करते हैं, इसके अन्त में 'सिंहा-रूढ़ा देवी भगवती' रामको दर्शन देकर रावण पर विजय का आश्वासन देती हैं। इसके पश्चात् राम विजया-पूजा करके वानर-सेना सहित सिन्धु की ओर प्रस्थान करते हैं (दे० स्कन्ध ३, अ० २८-३०) इसके अतिरिक्त नवें स्कन्ध में वेदवती की कथा का भी उल्लेख पाया जाता है (दे० अध्याय १६)।

(१९) महाभागवत (देवी) पुराण—इसमें अध्याय ३७-४९ मे जो राम-कथा पायी जाती है, वह वाल्मीकि रामायण की कथासे विशेष भिन्न नहीं है। इसकी कुछ विशेषताएँ नीचे दी जा रही हैं—जब देवगण विष्णु से रावण-वध के निमित्त अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं, तब विष्णु उनसे कहते हैं कि जब तक देवी लंका में निवास करती हैं, मैं रावण को परास्त नहीं कर सकता। इसके पश्चात् समस्त देवगण कैलाश पर देवी के पास जाते हैं। देवी सीताहरण के कारण लंका छोड़ने की प्रतिज्ञा करती हैं और शिव हनुमान का रूप धारण कर *राम की सहायता करने का वचन देते हैं। इसमें युद्ध प्रसंग में राम अनेक स्थलों* पर देवी की प्रार्थना करते दिखाए गये हैं। पितामह ब्रह्मा भी राम की सहायता के लिए देवी की मिट्टी की मूर्त्ति बना कर पूजा करते हैं। इस ग्रन्थ में भी मन्दोदरी के गर्भ से सीता की उत्पत्ति मानी गयी है (दे० अध्याय ४२-६४)[१]

(२०) वृहद्धर्म पुराण- इसकी राम-कथा महाभागवत (देवी) पुराण की राम-कथा में विशेष मिलती-जुलती है, जो थोड़ी विभिन्नता पायी जाती है; वह नृसिंह पुराण के अनुसार सीता-हरण का प्रकरण है तथा हनुमान विद्यान का

१—देखिये 'राम-कथा' पृ० १६२।

रूप धारण कर लंका में प्रविष्ट होते हैं (दे० अध्याय १८-२२, पूर्वखण्ड)। इसमें राम-कथा के समाप्त होने पर रामायणोत्पत्ति का भी वृत्तान्त उल्लिखित है, जिसमें श्लोकोत्पत्ति आदि के पश्चात् रामायण के उत्कर्ष वर्णन के प्रसंग में उसे महाभारत तथा पुराणों के बीज होने का वर्णन मिलता है (दे० पूर्वखण्ड अध्याय २५-३०)

(२१) कालिका पुराण—इसमें राम की विजय के निमित्त ब्रह्मा द्वारा दुर्गा की पूजा का वर्णन है (अध्याय ६२ श्लोक २०-३८) एवं ३८ वें अध्याय में जनक के हल जोतते समय सीता और दो अन्य पुत्रों के पाने का उल्लेख है।

(२२) सौर पुराण—इसके अन्तर्गत जो राम कथा पायी जाती है, उसमें पौलस्त्य-संतति (अध्याय ३०-१४-१६) और सूर्यवंश का (अध्याय ३० ४८-६६) उल्लेख मिलता है। इसमें राम को 'महादेव परायण' कहा गया है और शिव के प्रसाद स्वरूप राम अपने पद को प्राप्त करते हैं। जनक ने गौरी को संतुष्ट कर सीता को प्राप्त किया था। इसमें सीता को पार्वती के अंश से उत्पन्न माना गया है।

इ—अन्य धार्मिक साहित्य में राम-कथा

(१ योगवाशिष्ठ रामायण—इसमें वशिष्ठ-रामचन्द्र संवाद है, जिसमें रामचन्द्रजी को वशिष्ठजी मोक्ष प्राप्ति के उपाय पर एक वृहत् उपदेश देते हैं, जिसे वाल्मीकि ने अरिष्टनेमि को सुनाया था और इसमें अगस्त्य सुतीक्ष्ण की शिक्षा के लिए वाल्मीकि अरिष्टनेमि-संवाद को दुहराते हैं। इस योगवाशिष्ठ में रामावतार के तीन कारण बताए जाते हैं, सनत्कुमार, भृगु तथा देवशर्मा ब्राह्मण के शाप (देखिए वैराग्य प्रकरण अध्याय १)। इसमें राम के १६ वर्ष की अवस्था में विरक्त होने का उल्लेख है। वशिष्ठ ने विश्वामित्र के कहने पर एक विस्तृत उपदेश दिया, जिसके प्रभाव से राम निर्लिप्त होकर अपने कर्त्तव्य पालन के लिए तत्पर हुए। इस ग्रन्थ के अन्तिम प्रकरण में काकभुशुण्डी के जन्म और उनके सुमेर पर्वत पर निवास करने का उल्लेख किया गया है, जिसमें राम और काकभुशुण्डी का कोई संबन्ध नहीं दिखाया गया है (दे० निर्वाण प्रकरण अध्याय १३-२३)।

(२) अद्भुत रामायण—इसकी भूमिका में समग्र वृत्तान्त वाल्मीकि-भरद्वाज संवाद के रूप में वर्णित है (सर्ग १)। इसकी रचना में तीन विशेषतायें हैं १—नारद और पर्वत द्वारा दिया गया विष्णु को शाप, जिसके कारण विष्णु राम के रूप में अवतरित हुए। इस कथा के अनुसार अम्बरीष की पुत्री को भी शाप दिया जाता है जो जानकी होकर राक्षस द्वारा हरी जायगी (दे० सर्ग २-४) इसके अतिरिक्त सीता अवतार का कारण एक नवीन प्रसंग है—नारद ने स्वर्ग में अपमानित होकर लक्ष्मी को शाप दिया था, जिसके अनुसार वे मन्दोदरी की पुत्री हुईं (देखिए सर्ग ५, ८) बाल्मीकि रामायण के आधार पर परशुराम के तेजोभंग से लेकर रावण-वध के पश्चात् अयोध्या आगमन तक समग्र राम-कथा संक्षिप्त रूप से वर्णित है। इसके अनुसार रामने परशुराम को और सीता-हरण के पश्चात् हनुमान को अपना विष्णुरूप दिखलाया था। इसके अनेक सर्गों (११-१५) में राम और हनुमान का भक्ति संबन्धी एक संवाद दिया गया है। इस ग्रन्थ के अन्तिम भाग में देवी माहात्म्य के अनुसार देवी का रूप धारण कर सीता द्वारा पुष्कर-निवासी सहस्र स्कन्ध रावण-वध का उल्लेख है। (देखिए सर्ग १७ २७)

(३) आनन्द रामायण—इसमें अनेक विचित्र कथाओं का विवरण मिलता है। इसमें १२२५२ श्लोक हैं। इसमें शिव-पार्वती संवाद है और इसके द्वितीय काण्ड के तीसरे सर्ग में रामदास-विष्णुदास का उपसंवाद भी है। इसकी राम-कथा संबन्धी विशेषताएँ निम्न हैं—दशरथ-कौशल्या-विवाह के अन्तर्गत रावण द्वारा कौशल्याहरण का उल्लेख मिलता है। देव-दानव युद्ध में कैकेयी की वर प्राप्ति की कथा का उल्लेख है। श्रवण-वध, दशरथ-यज्ञ, कैकेयी के पायस का एक काक द्वारा चुराया जाना और उसे अंजनी पर्वत पर फेंका जाना आदि वर्णन मिलता है, (देखिए सार काण्ड सर्ग १)। इसके पश्चात् लगभग रामजन्म से लेकर उत्तर कांड के प्रथम ४० सर्गों तक की समग्र वाल्मीकीय रामायण की राम-कथा का उल्लेख है। सीता स्वयंवर में रावण की उपस्थिति (सर्ग ३), अग्निजा सीता की जन्म-कथा (सर्ग ३, १८८), वृन्दा-शाप एवं कलहा-धर्मदत्त का कैकेयी-दशरथ के रूप में अवतार (सर्ग ४), सीताहरण के पश्चात् उनका रूप धारण कर उमा का राम की परीक्षा करना (सर्ग ७), रावण का शिव से आत्म-

लिंग और पार्वती को प्राप्त करने एवं दोनों को खो देने की कथा (सर्ग ६), ऐरावण एवं मैरावण द्वारा राम-लक्ष्मण को पाताल ले जाने और हनुमान द्वारा उनकी मुक्ति (सर्ग ११), सुलोचना की कथा (सर्ग ११-२०५), मुक्ति प्राप्त करने की कामना से रावण द्वारा सीताहरण (सर्ग १३, ११६) आदि प्रसंग विशेष उल्लेखनीय हैं। (देखिए सारकाण्ड सर्ग १३)। इसके अतिरिक्त राम की चारों दिशाओं में तीर्थ यात्रा करने की (यात्रा कांड सर्ग ६), राम के एक अश्वमेध यज्ञ करने की (सर्ग ६—याग कांड), शंकरकृत रघुवीर-स्तव (सर्ग १ विलासकांड), सीता का नख-शिख वर्णन, सीता अलंकार, जलक्रीड़ा, सीताराम दिनचर्या (सर्ग २, ६ विलासकांड) और सीता समेत राम को कुरुक्षेत्र यात्रा संबन्धी घटनाएँ अपनी अलग विशिष्टता रखती हैं। इस ग्रन्थ के जन्म काण्ड के अन्तर्गत राम के सीता-त्याग की कथा (सर्ग १, ३), कुश जन्म और वाल्मीकि द्वारा लव की सृष्टि (सर्ग ४), कुश-लव का राम-सेना से युद्ध, सीता की शपथ से पृथ्वी का प्रकट (देवी के रूप में) होने, राम के भय से पृथ्वी का सीता को लौटाने, उर्मिला, मांडवी और श्रुतिकीर्ति के दो-दो पुत्रों की उत्पत्ति की कथा का उल्लेख मिलता है। विवाह कांड के अन्तर्गत राम-लक्ष्मण, भरत-शत्रुघ्न के आठों पुत्रों के भिन्न-भिन्न विवाहों का वर्णन किया गया है। राज्य कांड के अन्तर्गत विजय यात्रा, राजनीति का वर्णन, शत स्कन्ध रावण द्वारा राम की पराजय और सीता द्वारा उसका वध उल्लखित है। मनोहर कांड के अन्तर्गत रामोपासना-विधि, राम-नाम-माहात्म्य, चैत्र-महिमा और राम-कवच आदि का वर्णन है। पूर्ण काण्ड के अन्तर्गत सोमवंशी राजाओं के आक्रमण, युद्ध और सन्धि का उल्लेख किया गया है, इसके पश्चात् कुश के अभिषेक और रामादि के स्वर्गारोहण का वर्णन है।

(४) कुछ कल्पित रामायणें—इन रामायणों के अतिरिक्त अनेक ऐसी भी रामायणों के नाम मिलते हैं, जो विभिन्न विद्वानों द्वारा कल्पित मानी गयी हैं। भुशुण्डी रामायण (जिनके 'मूलरामायण, और 'आदिरामायण' दो अन्य नाम भी हैं), मंत्र रामायण (जिसमें राम-कथा के विभिन्न पात्रों द्वारा विभिन्न राम-मन्त्रों का उल्लेख मिलता है), और वेदान्तरामायण[१] (जिसमें परशुराम के जन्म

१—इसका प्रकाशन सं० १६६४ में लहरी प्रेस बनारस द्वारा हुआ था।

एवं चरित्र का विवरण है; इस कथा को वाल्मीकि ने राम को संदेह-निवारणार्थ सुनाया था, जिसे राम ने पूछा था कि राम ने क्षत्रियों का विनाश क्यों किया और क्षत्रिय वंश लुप्त होने से कैसे बचा ?) कुछ रचनाएँ और भी हैं, जैसे सत्योपाख्यान[१] (इसमें वाल्मीकि और मार्कण्डेय का संवाद वर्णित है, राम-लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न क्रमशः विष्णु-शेष-सुदर्शन और शंख के अवतार माने गए हैं । इसमें मथरा के पूर्व जन्म की कथा का भी उल्लेख है, जिसके अनुसार वह दैत्य विरोचन की पुत्री थी, विष्णु की आज्ञानुसार इन्द्र द्वारा वज्र से मारी गयी थी । इसके अतिरिक्त काकभुशुण्डी का राम की रोटी चुराना, इसके पश्चात् राम से उन्हें क्षमा मांगना, राम में निश्चल भक्ति की प्रार्थना करना और गरुड़ को राम-तत्व समझाना आदि विषयों का उल्लेख है) हनुमत्संहिता (जिसमें हनुमान द्वारा अगस्त्य से राम की रासलीला एवं जल-विहार के वर्णन का उल्लेख है) इसमें विशेष बात यह वर्णित है कि सीता अपने शरीर से १८१०८ नारियों को उत्पन्न करती हैं, इनके साथ रास करने के लिए राम उतने ही रूप धारण कर लेते हैं । इसका विस्तार ३६० श्लोकों में है । कुछ प्राचीन वैष्णव संहिताओं और उपनिषदों में राम-कथा का उल्लेख मिलता है, जो कथा की दृष्टि से उतना महत्व नहीं रखती, जितना राम-भक्ति से । इन रचनाओं के नाम नीचे दिए जाते हैं : —

१—अगस्त्य-संहिता, २—कालि राघव ३—वृहद् राघव और ४—राघ-बीय-संहिता आदि । इन वैष्णव संहिताओं के अतिरिक्त राम-भक्ति सम्बन्धी तीन उपनिषदें भी पायी जाती हैं १—श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद्, २—श्रीरामोत्तरता-पनीयोपनिषद् और ३—श्रीरामरहस्योपनिषद् । इनमें रामोपासना की विधि का वर्णन किया गया है, जैसे राम यंत्र, राम मन्त्र और सीता-मन्त्र आदि । इनमें राम परम पुरुष और सीता मूल प्रकृति माना जाता है[२] ।

ई—अन्य संस्कृत-साहित्य में राम-कथा

(१) रघुवंश—महाकवि कालिदास कृत 'रघुवंश' के नवें सर्ग में दशरथ के राज्य-वर्णन के अन्तर्गत मुनि पुत्र-वध का विवरण (दे० श्लोक ७२-८२)

---

१ —इसका प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस से हुआ है ।

२ —इन पर विचार 'रामभक्ति की दार्शनिक पृष्ठभूमि' के प्रसंग में होगा ।

मिलता है। इसके पश्चात पाँच सर्गों में राम-कथा का वर्णन है (सर्ग १०-१५) इसकी कथा-वस्तु वाल्मीकि रामायण के आधार पर वर्णित है—सीता-त्याग लवण-वध कुश-लव-जन्म, शम्बूक वध, लक्ष्मण-मरण एवं स्वर्गा रोहण प्रसंग वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड की ही भाँति वर्णित हैं (सर्ग १४-१५)। इसमें अयोनिजा सीता के जन्म की कथा मिलती है। किन्तु उन्हें लक्ष्मी के अवतार मानने का संकेत नहीं किया गया है। इसमें काक जयन्त की कथा भरत के चित्रकूट से लौटने के पश्चात् वर्णित है, अहल्या के सम्बन्ध में जो उल्लेख है, वह उसे शिला को जाने का ही है। वाल्मीकि के अनुसार रावण ने ब्रह्मा को अपने शीशों को समर्पित किया था, किन्तु इस ग्रन्थ में वह अपना मस्तक शिव को समर्पित करता है। शेष कथा वाल्मीकि के आधार पर है।

(२) रावण वह अथवा सेतुबन्ध—इसका प्रणेता कुछ विद्वान काश्मीर के राजा प्रवरसेन को अथवा उनके दरबार के किसी अन्य कवि को मानते हैं और कुछ लोग कालिदास को। इस रचना के पन्द्रह सर्गों में वाल्मीकि कृत युद्ध-कान्ड की कथा-वस्तु का अलंकृत शैली में राम-कथा वर्णित है। इसके कथानक में कोई विशेष महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है, हाँ, सेतु बन्ध के वर्णन में, मछलियों द्वारा उसके नष्ट होने का वर्णन है। इस घटना के संबंध में अनेक कथाओं की कल्पना कर ली गई है, इसके दसवें सर्ग में राक्षसियों का संभोग-वर्णन मिलता है। कालान्तर में इस कथा का अनुकरण जानकी-हरण, अभिनन्द कृत राम-चरित, कम्बन-कृत तामिल रामायण और जावा के पुरातन रामायण आदि में भी किया गया है।[१]

(३) भट्टिकाव्य अथवा रावण-वध—इसके २२ सर्गों में व्याकरण-नियमों के निरूपण के साथ-साथ थोड़े परिवर्तन के साथ वाल्मीकि रामायण के प्रथम छः काण्डों की कथा का वर्णन किया गया है, जिसकी मुख्य विशेषताएँ हैं—१ दशरथ के शैव होने का वर्णन, २ पुत्रेष्टि-यज्ञ में कोई देवता प्रकट नहीं होता, किन्तु दशरथ की रानियां हुतोच्छिष्ट खाती हैं, बला और अतिबला के स्थान पर जया और विजया नामक विद्याओं का वर्णन, राम और सीता का ही विवाह-वर्णन,

१—देखिए राम-कथा पृ० १८१-१८२।

राम और लक्ष्मण दोनों द्वारा खरदूषण और १४००० राक्षसों के वध का वर्णन, सीता-हरण के पश्चात् राम का सर्वप्रथम जटायु से मिलन-वर्णन और ब्रह्मा के स्थान पर शिव ही राम को नारायणत्व का स्मरण कराते हुए वर्णित हैं।

(४) जानकी-हरण—कुमारदास कृत जानकी-हरण की कथा-वस्तु वाल्मीकि रामायण के प्रथम छः काण्डों के अनुसार वर्णित है। इसमें अहल्या के पत्थर बन जाने का वर्णन, दशरथजी के हिमालय में शिकार खेलने का वर्णन और मुनि पुत्र-वध का वर्णन थोड़े विस्तार के साथ किया गया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके २५ सर्गों में शृङ्गारमूलक वर्णन अधिक विस्तारपूर्वक मिलता है।

(५) अभिनन्द कृत रामचरित—इसमें ३६ सर्गों में राम-लक्ष्मण के प्रस्रवण पर्वत पर वर्षा-निवास से कुंभ-निकुंभ वध तक की वाल्मीकि रामायण की कथा-वस्तु का-सा उल्लेख है। भीम नामक कवि द्वारा चार सर्गों में परिशिष्टांश जोड़कर युद्धकाण्ड की कथा-वस्तु पूरी की गयी है। वर्षाॠतु के बाद सुग्रीव के स्वयं राम के पास आने, अभिज्ञान स्वरूप राम के हनुमान को अंगूठी के अतिरिक्त एक नुपूर तथा स्तनोत्तरीय भी देने तथा दिलीप, रघु, अज और दशरथ की वंशावली आदि का उल्लेख तथा वाल्मीकि के किष्किन्धा काण्ड की कथा हनुमान आदि के गुफा में प्रवेश करते समय प्रवेश पथ में सोते हुए दुर्दम नामक राक्षस का अंगद द्वारा वध, भीतर जाकर हनुमान द्वारा वानरवारसुन्दरी का दो बार प्रेम-प्रस्ताव अस्वीकृत करने, और स्वयंप्रभा को गुफा में निवास करने के कारण, रामायण से भिन्न वर्णित होने आदि का प्रसंग विशेष उल्लेखनीय हैं। इसमें रावण की विलासिता आदि के भी बड़े विस्तारपूर्वक वर्णन मिलते हैं।

(६) रामायण मंजरी तथा दशावतार चरित—काश्मीर निवासी क्षेमेन्द्र-कृत यह रामायण वाल्मीकि रामायण का ही संक्षिप्त रूप है (यहाँ वाल्मीकि रामायण का पश्चिमोत्तरीय पाठ समझना चाहिए), इसमें कोई मौलिक तथ्य नहीं दिखाया गया है। क्षेमेन्द्रकृत एक दूसरे ग्रन्थ दशावतार चरितम् में २६४ छन्दों के अन्तर्गत रामावतार वर्णन में राम-कथा नए रूप में प्रस्तुत की गयी है। इसकी कथा रावण के दृष्टिकोण से वर्णित है, प्रारम्भ में रावण की तपस्या, वर प्राप्ति और उसके अत्याचार का कुछ वर्णन मिलता है (छन्द १-६६) इसके पश्चात्

रावण के लक्ष्मी के अवतार पद्मजा सीता को पुत्री स्वरूप ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है (छन्द ७०-१०४) इसमें शूर्पणखा अपनी विरूपीकरण की कथा, खर-दूषण-वध का वृत्तान्त रावण के पास जाकर सुनाती है। इस पर रावण मारीच के यहाँ जाकर उससे राम की जन्म से वनवास तक की कथा सुनता है। इसमें रामको विष्णु का अवतार माना गया है। मारीच की सहायता से रावण सीता का हरण करता है, इसके पश्चात् सुकेतु नामक गुप्तचर मारीच-वध से लंका-दहन तक की कथा रावण को सुनाता है। सुकेतु और विभीषण दोनों ही रावण से सीता को लौटा देने के लिए कहते हैं। विभीषण रावण की दुर्बुद्धि देखकर रामकी शरण लेता है, इसके पश्चात् एक गुप्तचर से रावण विभीषण अभिषेक, सेतुबन्ध, राम के त्रिकूटागमन, प्रतिहारपति से नागपाश द्वारा राम-लक्ष्मण के बन्धन और कुंभकरण के जगाने की कथा सुनता है। प्रतिहारपति-रावण के संवाद के पश्चात् शेष राम-चरित कवि द्वारा वर्णित किया गया है, कुम्भकर्ण-वध से राम-स्वर्ग-गमन तक की वाल्मीकि रामायण की कथा संक्षिप्त रूप से दी गयी है।

(७) उदार राघव—साकल्यमल्ल कृत इस रचना का १८ सर्गों में विस्तार है, जिसमें से केवल ६ सर्ग ही प्रकाशित हुए हैं। इसमें शूर्पणखा विरूपीकरण तक की कथा का उल्लेख है। इसकी कथा-वस्तु वाल्मीकि रामायण से मिलती है। जो परिवर्तन मिलता है, वह अवतारवाद का प्रसंग है। राम विष्णु के पूर्णावतार माने गए हैं, और लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न क्रमशः शेष, सुदर्शन और शंख के अंशावतार हैं। समस्त रचना शैली अलंकृत है, जिसमें शृङ्गार का स्थान प्रमुख हो गया है।

(८) जानकी-परिणय—चक्र कवि कृत जानकी-परिणय में वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड की दशरथ-यज्ञ से लेकर परशुराम तेजोभंग तक की प्रमुख घटनाओं का आठ सर्गों के अन्तर्गत उल्लेख मिलता है। इसमें भी 'अहल्या पत्थर बन गयी थी' का ही वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त दशरथ की मिथिला-यात्रा का वर्णन थोड़े विस्तार के साथ है।

(९) 'रामलिंगामृत' और 'राम-रहस्य'—ये दोनों रचनाएँ क्रमशः बनारस के अद्वैत नामक कवि तथा मोहनस्वामी की कृतियाँ हैं। ये दोनों रचनाएँ

लन्दन में सुरक्षित है[१]। इनमें से रामलिंगामृत में गोकुल की दो गोपिकाओं का संवाद उद्धृत है। इसमें रावण-चरित से कथानक प्रारम्भ होता है। जय-विजय भृगु द्वारा शापग्रस्त होकर राक्षस-योनि में रावण और कुम्भकर्ण होते हैं और प्रह्लाद विभीषण होता है। रावण और कुम्भकर्ण की तपस्या और वर प्राप्ति एवं देवताओं की प्रार्थना (विष्णु से अवतार लेने के लिए) का उल्लेख है। इसमें वर्णित राम-कथा की विशेषताएँ हैं - १—रावण धनुष चढ़ाने का असफल प्रयत्न करता है (देखिए सर्ग ३) २—विवाहोत्सव प्रसंग में इन्द्र आदि देवताओं का आगमन और देव की आज्ञा विश्वकर्मा द्वारा निर्मित एक दिव्य नगर, जिसमें लक्ष्मी सीता को रामावतार का रहस्य बताती हैं। (सर्ग ४) ३—विवाह के पश्चात् के समय राम की अवस्था १५ वर्ष और सीता की अवस्था ६ वर्ष (सर्ग ५)। सर्ग ६ में शूर्पणखा विरूपीकरण के पश्चात् नारद द्वारा रावण से सीता के सौन्दर्य का कथन मिलता है, जिसके अनुसार मारीच की सहायता से सीता का हरण रावण करता है। सीता की खोज के प्रसंग में शिलामयी अहल्या का उद्धार और केवट द्वारा राम का आग्रह पूर्वक चरण धोने का उल्लेख है। कबंध-वध के पश्चात् सीता को प्राप्त करने के लिए राम द्वारा शिव-पूजा का वर्णन मिलता है और वानरों से मैत्री का साधारण उल्लेख पाया जाता है। सातवें सर्ग में हनुमान द्वारा रामके सीता को एक अंगूठी और एक पत्र भेजने का उल्लेख पाया जाता है। आठवें सर्ग में महिरावण द्वारा राम-लक्ष्मण को पाताल ले जाने और हनुमान द्वारा मकरध्वज की सहायता से दोनों की मुक्ति का उल्लेख है। अन्त में कुम्भकर्ण-वध, लक्ष्मण को शक्ति लगने और लक्ष्मण-मेघनाद-युद्ध का वर्णन है। नवें सर्ग में सती सुलोचना की कथा और रावण द्वारा युद्ध की तैयारी करने का वर्णन, दसवें सर्ग में जब रावण राम को रण-क्षेत्र में देखता है, तब एक विस्तृत भाषण द्वारा राम से राक्षसों के वंश का नाश होने, रामको विष्णु का अवतार मानने, विष्णु द्वारा वध किये जाने के कारण अपने भाग्य की अभिनन्दना, राम द्वारा की गयी शिव-पूजा ही राम की विजय का कारण और राम-नाम के स्मरण से ही वानरी सेना को समुद्र पार होने का वर्णन करता है। ग्यारहवें सर्ग में रावण-वध के पश्चात् जानकी की

१—देखिए राम-कथा पृ० १८६।

अग्नि-परीक्षा का वर्णन नहीं है। बारहवें सर्ग में राम के अयोध्यागमन का वर्णन करते हुए, कैकेयी द्वारा राम से कथन कराया गया है कि वह देवेन्द्र प्रेरणा से राम को रावण-वध के लिये वन भेजती है और अन्त में रामाभिषेक का वर्णन किया गया है। सर्ग तेरहवें में शृङ्गार-वर्णन और सभा में नारद द्वारा राम-स्तुति, गर्भवती सीता के दोहद का वर्णन आदि है।- चौदहवें सर्ग में कुश-लव की जन्म-कथा और शिक्षा का वर्णन किया गया है। इसमें सीता के त्याग को कथा का उल्लेख नहीं किया गया है। नारद द्वारा समाचार पाकर राम सेना समेत आश्रम जाते हैं और युद्धोपरान्त सीता, और कुश-लव के साथ अयोध्या लौटते हैं। पन्द्रहवें सर्ग में सीता द्वारा कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भगर्भ के वध का वर्णन है। सोलहवें सर्ग मे रंग-मूर्ति की कथा और उनके राम द्वारा पूजन की कथा और सत्रहवें सर्ग में वशिष्ठ की आज्ञा से राम के अश्वमेघ-यज्ञ का वर्णन किया गया है, जिसमें देवगण आकर राम और सीता को स्तुति करते हैं, सरयू तीर्थ माहात्म्य सहित राम सीता और अयोध्या-समाज का परलोक गमन वर्णित है। इसके अतिरिक्त अद्वैत-मञ्जरी में ईश्वर, जीव और माया का निरूपण किया गया है। और अठारहवें सर्ग मे रामपूजन-विधि, राम-कीर्ति-निरूपण और राम-कृष्ण की अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है।

'राम-रहस्य' अथवा 'राम-चरित' में अध्यात्म-रामायण के अनुसार प्रथम प्रकरण में वर्णन मिलता है। द्वितीय प्रकरण में सुमन्त्र द्वारा स्वायंभू-मनु और उनकी तपस्या का वर्णन है, जिसके अनुसार उन्हें विष्णु को तीन बार पुत्र रूप मे उनके यहां अवतार लेने का उल्लेख मिलता है। अब वे दोनों दशरथ और कौशल्या हैं, आगे चलकर वसुदेव-देवकी और कलियुग में हरिव्रत-देवप्रभा के रूप में जन्म ग्रहण करेंगे। सूर्यवंश-वर्णन से लेकर रामचन्द्र स्वर्गारोहण तक की कथा में कोई मौलिकता नहीं पायी जाती।

(१०) प्रतिमा-नाटक — भासकृत प्रतिमा-नाटक में कालिदास के अनुसार राजा दिलीप रघु, अज और दशरथ की वंशावली दी गयी है। इसके सात अंकों में वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड की कथा-वस्तु एवं सीता-हरण का वर्णन किया गया है। प्रथम अंक में राम के वनवास की कथा है। इसकी मौलिकता, उस समय शत्रुघ्न की अयोध्या में उपस्थिति है। दशरथ मरण

प्रसंग में उनको दिलीप, रघु और अज के दर्शन होते हैं, जो उन्हें परलोक ले जाने के लिए आए हैं (द्वितीय अंक)। भरत के प्रत्यागमन का वर्णन जो मिलता है, उससे प्रतिमागृह में अयोध्या के मृतराजाओं की मूर्तियों को देखकर भरत को पिता की मृत्यु का समाचार मालूम होता है, जिससे वे राज्य का परित्याग कर रामचन्द्रजी को मनाने जाने के लिए प्रण करते हैं। इसमें लक्ष्मण का अनुज भरत को बताया गया है। (अंक ३) भरत की चित्रकूट-यात्रा का वर्णन वाल्मीकि के अनुसार ही किया गया है (अंक ४)। सीता-हरण का प्रसंग सर्वथा नवीन है—दशरथ के वार्षिक श्राद्ध के एक दिन पूर्व राम और सीता के मन में विचार हो रहा था कि श्राद्ध कैसे योग्य रीति से मनाया जाय। इसी बीच परिव्राजक वेश में रावण वहाँ पहुँच कर अपना परिचय दे भिन्न-भिन्न शास्त्रों का वर्णन करता है, जिनका उसने अध्ययन किया है। इनमें से एक 'प्राचेतसं श्राद्ध कल्पम्' है, राम उससे श्राद्ध के विषय में जिज्ञासा प्रकट करते हैं, तब रावण कहता है कि हिमालय में रहनेवाले कांचनपार्श्व मृग से पितृ विशेष रूप से प्रसन्न हो जाते हैं, ठीक उसी समय मारीच इस प्रकार का मृग बनकर दिखायी पड़ता है, लक्ष्मण आश्रम के कुलपति का स्वागत करने गए थे, अतः सीता को रावण के पास छोड़कर राम मृग के पीछे चले जाते हैं, तब रावण अपना रूप धारण कर सीता को लंका ले जाता है (अंक ५)। भरत-सुमन्त्र से सीता-हरण का संवाद पाकर कैकेयी की भर्त्सना करते हैं; जिससे कैकेयी अपने निर्दोष होने का प्रमाण देती है। महर्षि शाप की रक्षा करने के लिए वशिष्ठ वामदेव आदि से परामर्श लेकर उन्होंने राम को वनवास दिलाया था, यह सुन कर भरत उनसे पूछते हैं कि आपने १४ वर्ष का निर्वासन क्यों दिलाया? कैकेयी इसका उत्तर देती है कि १४ दिन के स्थान पर भूल से १४ वर्ष मुँह से निकल पड़ा। इसके पश्चात् भरत रावण के विरुद्ध सेना भेजने की आज्ञा प्रदान करते हैं (अंक ६)।

रावण-वध के पश्चात् वनस्थान के आश्रम में राम की भरत आदि से भेंट का उल्लेख अंतिम अंक में है। इस वृत्तान्त के अनुसार वनस्थान में ही रामाभिषेक हुआ था, जिसके पश्चात् सब लोग पुष्पक विमान से अयोध्या लौट आए।

(११) अभिषेक नाटक—महाकवि भास के इस नाटक में बालि-वध से लेकर रामाभिषेक तक की वाल्मीकि रामायण की कथा का अपेक्षाकृत कम परिवर्त्तन सहित उल्लेख है। सेतुबन्ध के स्थान पर समुद्र विभक्त हो जाता है, सेना समुद्र तल से पार उतरती है (दे० अंक ४) राम और लक्ष्मण दोनों के मायामय शीश जानकी को दिखलाए जाते हैं। सीता की अग्नि-परीक्षा के समय अग्निदेव प्रकट होकर सीता के लक्ष्मी होने का रहस्य बताते हैं, प्रतिमा नाटक में राम का व्यक्तित्व मनुष्य रूप में देखा गया था; किन्तु इसमें उन्हें विष्णु रूप में देखने की चेष्टा की गयी है।

(१२) महावीर चरित—महाकवि भवभूति-कृत इस नाटक के सात अंकों में राम-सीता के विवाह से लेकर रामाभिषेक तक की कथा का उल्लेख है। इसके वर्णन में जो मौलिक विशेषताएँ पायी जाती हैं वे नीचे दी जा रही हैं:—

१—विश्वामित्र के आश्रम में राम-लक्ष्मण, सीता और उर्मिला से मिलते हैं, आश्रम में रावण के दूत के आगमन तथा धनुर्भंग होने का भी उल्लेख मिलता है (अंक १)। २—द्वितीय अंक में विवाह के पश्चात् परशुराम के मिथिला ही में आने का उल्लेख है। ३—कैकेयी का एक जाली पत्र लेकर शूर्पणखा मंथरा के रूप में मिथिला पहुँचती है, जिसमें कैकेयी वर के बल पर राम को वनवास माँगती है, जिससे राम अपनी पादुकाएँ देकर मिथिला से ही लक्ष्मण और सीता के साथ वन के लिए चल पड़ते हैं। (४ था अंक) ४—माल्यवान् की प्रेरणा से बालि राम को मार्ग ही में रोक लेता है और द्वन्द-युद्ध में वह राम द्वारा मारा जाता है।

(१३) उत्तर रामचरित—भवभूति की दूसरी कृति उत्तर रामचरित में वाल्मीकि रामायण की उत्तर काण्डीय कथा-वस्तु एक नवीन रूप से उल्लिखित है। लोकापवाद के कारण सीता परित्याग के वर्णन को अति करुणाजनक रूप से उपस्थित किया गया है। सीता सहित अपने वनवास के चित्रों का दर्शन करते समय और गर्भवती सीता को गंगा तट के आश्रमों को दिखलाने का आश्वासन देने के बाद राम सीता के बारे में दुर्मुख के मुख से सुनते हैं और सीता के परित्याग का वे निश्चय करते हैं (अंक १) लव-कुश के जन्म की और शम्बूक-वध की कथा-वस्तु वाल्मीकि रामायण की कथा से कुछ भिन्न है। इसमें लक्ष्मण

के चले जाने के पश्चात् सीता वन में प्रसव-पीड़ा का अनुभव करने लगती हैं। उस पीड़ा से निराश होकर वे आत्महत्या के विचार से गंगा में कूद पड़ीं। जल ही में उन्होंने दो पुत्रों को जन्म दिया, इसके पश्चात् पृथ्वी एवं गंगा देवी उन्हें पुत्रों के साथ पाताल ले गयीं। स्तन-पान-त्याग के पश्चात् दोनों पुत्रों को गंगा ने शिक्षा के लिए वाल्मीकि को सौंप दिया। इस वर्णन के अनुसार कुश और लव अपने माता-पिता के संबन्ध में कुछ नहीं जानते। शम्बूक-वध के संबंध में शम्बूक अपने वध के पश्चात् दिव्य पुरुष के रूप में प्रकट होकर राम से कहता है कि मैं आप के प्रसाद से ही शाश्वतपद प्राप्त करूँगा। कथा-वस्तु नाटकीय विशेषता के दृष्टिकोण से नाटक के अन्तिम अंक में वर्णित है। महर्षि वाल्मीकि के ही आश्रम में राम और अयोध्या-निवासियों के समक्ष सीता-चरित-संबंधी त्याग, लव-कुश जन्म आदि—कथा वाल्मकि कृत एक नाटक के ढंग पर वर्णित है जिससे सभी दर्शकगण सीता के निर्दोष होने का विश्वास करते हैं। राम, सीता, लव और कुश सभी साथ अयोध्या लौटते हैं।

(१४) कुन्द माला—धीरनाग अथवा वीरनाग कवि कृत इस रचना की कथा वस्तु उत्तर-राम-चरित की कथा-वस्तु से मिलती है। इसमें कुश लव-युद्ध को छोड़कर सीता-त्याग से राम सीता सम्मिलन तक की कथा वर्णित है। इसके तीसरे अंक में वाल्मीकि आश्रम के पास गौतमी-तट पर राम और लक्ष्मण एक कुन्द माला देखते हैं, जिसकी बनावट सीता के कौशल का स्मरण दिलाती है। आगे बढ़कर सीता के चरण-चिन्ह भी उन्हें दिखायी पड़ते हैं। चौथे अंक में राज-मेना को निकट जानकर वाल्मीकि के बल द्वारा आश्रम की स्त्रियों को अदृश्य हो जाने के वरदान का उल्लेख है। इसी प्रकार सीता अदृश्य होकर राम से मिलती हैं। राम-सीता की छाया जल में देखकर विरह के कारण मूर्छित हो जाते हैं। अन्तिम अङ्क में कुश-लव द्वारा रामायण-गान के पश्चात् सीता सभा में शपथ ग्रहण करती हैं, जिसके अनुसार पृथ्वी देवी प्रकट होकर सीता के निर्दोष होने का प्रमाण देती हैं, जिससे राम सीता को स्वीकार करते हैं और पृथ्वी देवी अन्तर्धान हो जाती हैं।

(१५)—अनर्घ राघव—मुरारि कृत इस रचना में विश्वामित्र के आगमन से लेकर अयोध्या में रामाभिषेक तक की घटना का उल्लेख है। तीसरे अंक में

रावण-दूत शौष्कल के मिथिला में जाकर रावण की ओर से सीता को मांगने का वर्णन है।

(१६) बालरामायण—राम-कथा सम्बन्धी सबसे बड़ा नाटक राजशेखर कृत यह बालरामायण है। इसमें दस अंकों के विस्तार में सीता स्वयंवर से लेकर रामाभिषेक तक की कथा यद्यपि भवभूति और मुरारि की रचनाओं से मिलती है, किन्तु कथानक की दृष्टि से इसमें कुछ मौलिकता भी पायी जाती है। रावण स्वयं प्रहस्त के साथ सीता स्वयंवर में पहुँच कर धनुष-परीक्षा करने से इन्कार करता है और सीतापति को अपना शत्रु घोषित कर लौट जाता है (अंक १)। इसके पश्चात् दूसरे अंक में वह परशुराम से सहायता प्राप्त करने की प्रार्थना करता है, जिसमें उसे सफलता नहीं मिलती। सीता-विरह में वह लंका में अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। उसका मन बहलाने के उद्देश्य से सीता-स्वयंवर में दूसरे राजाओं के प्रयत्नों के पश्चात् राम की सफलता का अभिनय किया जाता है (अंक ३) सीता और उनकी धात्रेयिका—दूध वहन—की मूर्त्तियाँ बनवाकर और उनके मुँह में सारिकाएँ स्थापित करके माल्यवान् द्वारा विरही रावण को सांत्वना देने का निष्फल प्रयास किया जाता है (अंक ५), छठवें अंक में भवभूति और मुरारि की ही भाँति परशुराम इसमें भी मिथिला ही में आए हुए दिखाए गए हैं, किन्तु राम के निर्वासन की कथा कुछ भिन्न है। इसमें दशरथ और कैकेयी की अनुपस्थिति अयोध्या में पाकर मायामय शूर्पणखा और एक परिचारिका दशरथ मंथरा और कैकेयी का रूप धरकर रामको निर्वासित कर देते हैं। सातवें अंक में सेतु-बन्ध के समय राम को निरुत्साहित करने के लिए सीता का एक मायामय शीश सागरतट पर माल्यवान से फेंकवाया जाता है और मछलियों के सेतु नष्ट करने का भी वर्णन मिलता है।

(१७) महानाटक अथवा हनुमन्नाटक—इस रचना के सम्बन्ध में यद्यपि बहुत वाद-विवाद प्रचलित हैं, किन्तु इसकी कथा-वस्तु दामोदर मिश्र के १४ अंकों के अनुसार इस प्रकार हैं:—

१ सीता-स्वयंवर २—राम-जानकी-विलास, ३—मारीच-गमन, ४—सीता-हरण, ५—बालि-वध, महावीर-चरित, ६—हनुमद्विजय, ७—सेतु-बंध, ८—अङ्गदाधिक्षेपण,

६–मंत्रिवाक्य, १०–रावण-प्रपंच, ११–कुम्भकर्ण-वध, १२–इन्द्रजित-वध, १३–लक्ष्मण-शक्ति भेद और १४ श्रीराम-विजय।

पहले अङ्क में सीता-स्वयंवर के अन्तर्गत रावण का एक दूत उपस्थित है और परशुराम मिथिला में ही आकर हारते हैं। दूसरे अङ्क में राम और सीता के संभोग का वर्णन अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया गया है। तीसरे अङ्क में राम-वन गमन के समय भरत अयोध्या में विद्यमान थे। अहल्या-उद्धार की कथा अगस्त्याश्रम से पंचवटी की ओर जाते समय घटित है, सीता-संरक्षण के लिए भूमि पर धनुष से रेखा खींचकर राम लक्ष्मण के साथ मायामृग को मारने के लिए जाते हैं। चौथे अङ्क में राम-लक्ष्मण मृग का शिकार करने साथ-साथ जाते हैं। पाँचवें अङ्क में बालि राम को स्वयं युद्ध के लिए ललकारता है। इसमें हनुमान को रुद्रावतार माना गया है, अगले अङ्क में भी इन्हें 'रुद्रांश' कहा गया है। छठवें अङ्क में सीता हनुमान को तीन अभिज्ञान देती हैं–चूड़ामणि, काक की कथा और राम का सीता को तिलक लगाने का वृत्तान्त वर्णित है। सातवें अङ्क में राम के बाण चलाने का सेतु-बन्ध के समय, उल्लेख नहीं मिलता। आठवें अङ्क में अपने पिता के वध के कारण राम से बैर रखकर अङ्गद, रावण को युद्ध में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से उसका अपमान करता है, इसके नवें अङ्क का वर्णन समा-सम्बन्धी है। दसवें अङ्क में रावण राम और लक्ष्मण के मायामय शीश सीता को दिखाता है और रावण राम का रूप धारण कर तथा अपने दस मायामय शीश हाथ में लेकर सीता को ठगने का प्रयत्न करता है। ग्यारहवें अङ्क में अङ्गद द्वारा प्रभंजनी राक्षसी के वध का वर्णन है। बारहवें अङ्क में मेघनाद के वध का और तेरहवें अङ्क में हनुमान को हटाने के लिए ब्रह्मा द्वारा नारद को भेज देने का वर्णन है, इस प्रकार रावण लक्ष्मण को आहत करने का अवसर पाता है। लक्ष्मण की चिकित्सा के लिए रावण के वैद्य सुषेण को लंका से ले जाने का वर्णन मिलता है। चौदहवें अंक में लोहिताक्ष नामक रावण-दूत के राम के समीप आने का वर्णन है। रावण राम से संधि का प्रस्ताव करता है और साम्राज्य के परत्व के लिए सीता को लौटाना चाहता है, राम द्वारा यह प्रस्ताव मान्य नहीं होता। रावण-वध के पश्चात् अंगद अपने पिता के वध का प्रतिकार लेने के हेतु समस्त सेना को ललकारता है, जिसपर एक आकाशवाणी

द्वारा कहा जाता है कि कृष्णावतार में वालि व्याध के रूप में राम-कृष्ण का वध करेगा।

(१८) आश्चर्य चूड़ामणि—शक्तिभद्र कृत इस नाटक में शूर्पणखा आगमन से लेकर सीता की अग्नि-परीक्षा तक की कथा सात अंकों में वर्णित है। इसकी विशेषता यह है कि राम-सीता के पास मुनियों द्वारा मिली एक अंगूठी और चूड़ामणि है, जिसके प्रभाव से छद्मवेषी राक्षस राम अथवा सीता के स्पर्श से अपना वास्तविक रूप धारण कर लेते हैं। आश्चर्य चूड़ामड़ि इसीलिए इस नाटक का नाम पड़ा है। राम का रूप धारण कर लेने वाला रावण, लक्ष्मण का रूप धारण करने वाले अपने सारथी की सहायता से जानकी को हर लेता है। इतने में शूर्पणखा सीता रूप में राम से वार्तालाप करती है और मारीच राम के रूप में लक्ष्मण से। यही इसकी विशेषता है।

(१६) प्रसन्न-राघव—कवि जयदेव कृत प्रसन्न—राघव में सीता स्वयं-वर से लेकर रावण-वध के पश्चात् राम के अयोध्या लौटने तक को कथा-वस्तु सात अंकों में वर्णित है। इस ग्रन्थ पर मुरारि कृत अनर्घराघव का प्रभाव है। इसकी कुछ अपनी जो विशेषताएँ हैं, वह यों हैं:—रावण और वाणासुर की सीता-स्वयं-वर में उपस्थिति और धनुष संधान के विफल प्रयत्न। इसी अवसर पर रावण सीता-हरण का व्रत धारण करता है। धनुर्भंग के पहले राम और सीता के मिथिला के चंडिकायतन में मिलन और विविध नदियों का मानवीकरण एवं उनका सागरतट पर मिलकर अपने भूभाग से संबंधित राम-कथा सुनाना, अन्त में विद्याधर रत्नशेखर का विरह-व्याकुल राम को लंका की सब घटनाएँ इन्द्रजाल द्वारा दिखाना।

इन रचनाओं के अतिरिक्त अनेक और भी छोटी-मोटी रचनाएँ हैं, जिनमें भी राम कथा का आंशिक रूप पाया जाता है, किन्तु ये रचनाएँ विशेष उल्लेख-नीय नहीं है। इन्हें खण्ड-काव्य, कथा-काव्य या चम्पू कहा जायगा। इनके अन्तर्गत 'गीता-राघव' 'जानकी-गीता' आदि हैं, हाँ भोजकृत चम्पू-रामायण वाल्मीकि रामायण का अनुवर्त्तन करता है, जो छोटी-मोटी रचनाओं में विशेष महत्वपूर्ण है।

उ—अन्य प्रादेशिक भाषाओं की रामकथा :—

(१) प्राकृत भाषा—महाराष्ट्रीय प्राकृत में लिखा गया प्रवरसेन का रावण-वह (रावण वध) काव्य 'सेतु-बन्ध के नाम से भी अभिहित होता है। इसमें 'वाल्मीकि रामायण' के युद्धकाण्ड की कथा का पन्द्रह सर्गों में विस्तार पूर्वक वर्णन है।

(२)—तामिल भाषा में राम-कथा—द्राविण भाषाओं में राम-कथा संबंधी सबसे पुरातन काव्य ग्रन्थ कम्बनकृत रामायण है, जिसकी रचना दसवीं शताब्दी ही में हुई मानी जाती है। इसमें वाल्मीकि रामायण के केवल प्रथम छः काण्डों की ही कथा-वस्तु पायी जाती है. इसकी रचना में स्वयं कवि वाल्मीकि रामायण और अन्य दो कवियों के आधार पर लिखने का वर्णन अपने काव्य के प्रारम्भ में ही कर देता है। इन दोनों में से एक कुमारदास प्रतीत होते हैं, क्योंकि अनेक वाल्मीकीय रामायण से भिन्न-वृत्तान्त जानकी-हरण, (जिसकी रचना आठवीं शताब्दी ईस्वी में मानी जाती है) और तामिल रामायण दोनों में मिलते हैं। कथानक के दृष्टिकोण से कंबन कृत रामायण का उत्तर-काण्ड ओंचकुयन नामक किसी कवि की रचना मानी गयी है, जिसमें धोबी के कहने से सीता का निष्कासन किया गया वर्णित है। इसकी कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

१—मिथिला नगर के विस्तृत वर्णन के पश्चात् राम और सीता के एक दूसरे को देखने और उसके फलस्वरूप रात में दोनों के विरह का वर्णन, २—दशरथजी के साथ मिथिला अन्तःपुर की रमणियाँ भी जाती हैं, ३ सीता-हरण स्पर्श भय से रावण पृथ्वी खोद कर करता है, ४—विभीषण रावण से राम के साथ युद्ध न करने का अनुरोध करते हुए नृसिंहावतार की कथा उसे सुनाता है। ५—महोदर की आज्ञा से एक मरुचन नामक राक्षस जनक का रूप धारण कर रावण को पतिरूप में स्वीकार करने का सीता से अनुरोध करता है और रण-भूमि में मन्दोदरी-वध का भी वर्णन किया गया है।

(३) तेलगू भाषा में रामायण—तेलगू 'द्विपाद रामायण' की रचना बुद्धराजु नामक कवि के द्वारा (बारहवीं शताब्दी ई० में) माना जाता है। इस रामायण का दूसरा नाम 'रंगनाथ रामायण' भी है। यह भी वाल्मीकि

रामायण के मात्र छः काण्डों की ही कथा का वर्णन करता है। इसमें उर्मिला का प्रसंग विशेष रूप से वर्णित है। इसके अतिरिक्त इसकी निम्न विशेषताएँ और भी हैं—सीता स्वयंवर के समय जनकजी घोषणा करते हैं कि हल जोतते समय सीता को वे एक मंजूषा में पाए थे। वन जाते समय लक्ष्मण निद्रा देवी से उर्मिला के लिए चौदह वर्ष की नींद और अपने लिए उतने समय तक जागरण का वर मांगते हैं। सुलोचना वृत्तान्त पूरे विस्तार के साथ वर्णित है। इसमें भी उत्तरकाण्ड बाद में जोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त इस भाषा में मोल्लाकृत "मोल्ला रामायण" है, जो अधिक लोकप्रिय है। इसकी रचना किसी कुमारी कुम्हारिन की मानी जाती है। इसमें भी वाल्मीकि रामायण की ही कथा संक्षिप्त रूप से वर्णित है। चौदहवीं शताब्दी में 'भास्कर रामायण' की रचना हुई जो इस भाषा का सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रन्थ माना जाता है। वास्तव में यह वाल्मीकि रामायण का संस्कृत गर्भित तेलगू भाषा में स्वतन्त्र अनुवाद है। अठारहवीं शताब्दी में भी एक 'गोपीनाथ रामायण' लिखा गया है, जिसको चम्पू-शैली कही जायगी।

(४) मलयालम भाषा में रामायण—इस भाषा में 'इराम चरित' या 'रामचरित' सब से प्राचीन और संरक्षित ग्रन्थ चौदहवीं शताब्दी ई० की रचना है। कुछ लोग इसे किसी राजा के द्वारा रचा गया मानते हैं, जो ट्रावनकोर का रहनेवाला था। इसमें वाल्मीकि रामायण की युद्धकाण्ड की ही कथा का उल्लेख है। इस भाषा में इसके अतिरिक्त और भी अनेक रामायणें मिलती हैं, जो संस्कृत की रामायणों का अनुवाद प्रतीत होती हैं। इस भाषा की सबसे लोकप्रिय रामायण 'अध्यात्म रामायण' है, जो संस्कृत की इसी नाम की रामायण का अनुवाद है। इसके अतिरिक्त 'कन्नास रामायण' और 'केराल वर्मा रामायण' दो रचनाएं और भी मिलती हैं, जो वाल्मीकि रामायण का स्वतन्त्र अनुवाद कहा जा सकता हैं।

(५) कन्नड़ भाषा में रामायण—इस भाषा का 'तोरावे रामायण' सबसे प्रसिद्ध रामायण है। इसकी रचना १६वीं शताब्दी ई० में मानी जाती है जो तोरावे निवासी किसी 'नरहरि' कवि कृत मानी जाती है। इसमें वाल्मीकि रामायण के प्रथम छः काण्डों की ही कथा का वर्णन है। नरहरि की

दूसरी रचना 'मैरावण कलग' भी है, जो चार सन्धियों में हनुमान द्वारा मैरावण-वध का उल्लेख करती है। 'तोरावे रामायण' की मुख्य विशेषता यह है कि—लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र शंबूक का वध, सीता-हरण के प्रथम अग्नि का सीता का आधा भाग अपने गढ़ में रखने के लिए ले जाना और लक्ष्मण का १४ वर्ष तक जागरण और उपवास करने का उल्लेख। इसके अतिरिक्त तिरुमल वैद्य और योगेन्द्र द्वारा दो 'उत्तर रामायणों' की और भी रचना हुई, जो विशेष महत्वपूर्ण नहीं है।

(६) काश्मीरी रामायण—दिवाकरप्रकाश भट्ट द्वारा १८वीं शताब्दी के अन्त में इसकी रचना वाल्मीकि रामायण की पूरी कथा का अनुवर्तन करते हुए की गयी। इसका सम्पूर्ण काव्य उमा-महेश्वर-संवाद के रूप में वर्णित है। इसमें राम विष्णु के, लक्ष्मण शेष के, भरत शंख के और शत्रुघ्न सुदर्शन के अवतार माने गए हैं। वनवास के समय अहल्या से भेंट, वाल्मीकि द्वारा कुश की उत्पत्ति, कुश-लव का राम की सेना से युद्ध और इसके अतिरिक्त अनेक नवीन बातों का उल्लेख मिलता है, जो वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलता। 'स्वायम्भुव रामायण' के मन्दोदरी के गर्भ से सीता की उत्पत्ति वाला कथानक भी इसमें पाया जाता है। इसके अतिरिक्त रावण के किसी चित्र के कारण राम द्वारा सीता का परित्याग भी इसमें दिया गया है। इसमें अनेक अलौकिक कथाओं का भी समावेश किया गया है।

(७) बँगला भाषा—इस भाषा में सबसे महत्वपूर्ण रामायण 'कृत्तवासी रामायण' माना जाता है, जिसकी रचना १५वीं श० ई० में हुई थी; किन्तु इसका सर्वमान्य कोई संस्करण उपलब्ध नहीं है। विद्वानों का कथन है कि इसमें प्रक्षिप्त अंश अधिक आ गए हैं। इसमें भी वाल्मीकि रामायण के कथानक का अनुवर्तन किया गया है, किन्तु कहीं-कहीं भक्तिवाद का बड़ा समर्थन किया गया है। इसमें विभिन्न राक्षसों के द्वारा राम के प्रति बड़ी भक्ति दर्शायी गयी है। इसमें रावण तक अवतारवाद में विश्वास करता हुआ दिखाया गया है। यत्र-तत्र इसमें कृष्ण-भक्ति और शाक्तमत की महत्ता का भी स्पष्ट प्रभाव दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त 'राम-रसायन' नामक रचना रघुनन्दन गोस्वामी कृत विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त चन्द्रावती कृत 'रामायण',

रामानन्द कृत 'रामलीला', कविचन्द्र कृत 'अंगद रैबर' और जगतराम कृत 'रामायण' भी बँगला में पाये जाते हैं, जो साधारण रामायणें हैं।

(८) उड़िया भाषा—इस भाषा में बलरामदास की 'जगन्मोहन-रामायण' बहुत प्रसिद्ध है, जिसकी रचना १५ वीं शताब्दी ई० में मानी जाती है। इसका दूसरा नाम 'दाण्डि रामायण' भी है। शिव पार्वती के संवाद रूप में इसका प्रणयन हुआ है। कथानक की दृष्टि से यह भी 'वाल्मीकि रामायण' का अनुवर्त्तन करती है। इसके अतिरिक्त "विलंका-रामायण" और "विचित्र-रामायण" हैं, जिनमें कुछ नवीन सामग्री पायी जाती है और ये बड़ी लोकप्रिय रचनाएँ हैं।

(९) मराठी भाषा—इस भाषा में प्राचीनतम राम-कथा से सम्बन्धित ग्रन्थ "भावार्थ रामायण" है, जिसकी रचना १६ वीं शताब्दी ई० में मानी जाती है। इसका रचयिता सन्त एकनाथ माने जाते हैं। इसकी कथा, 'अध्यात्म रामायण' और "आनन्द रामायण' से मिलती है। 'रामविजय' नामक रामायण की कथा का काव्य (मोरोपन्त नामक कवि की कृति) विशेष लोकप्रिय रचना है। इसके अतिरिक्त श्रीधर नामक कवि ने भी राम-कथा पर रचना की है, किन्तु वह 'रामविजय' की भाँति लोकप्रिय नहीं है।

(१०) गुजराती भाषा—इस भाषा में गिरधरदास कृत रामायण अधिक लोकप्रिय है, जिसकी रचना १६ वीं शताब्दी ई० है। इसके अतिरिक्त भालणकृत 'राम-विवाह' और 'रामबाल चरित' भी विशेष प्रसिद्ध हैं, किन्तु इन रचनाओं में राम-कथा का सम्पूर्ण विवरण नहीं है। मंत्रण कर्मणकृत 'सीता-हरण' लावण्य-समय कृत 'रावण-मन्दोदरी-सम्वाद', प्रेमानन्दकृत 'रणयज्ञ' और हरिदास कृत 'सीता-विरह' आदि रचनाएं भी संक्षिप्त राम-कथा का वर्णन करती हैं।

(११) असमी भाषा—इस भाषा के भी साहित्य में चौदहवीं शताब्दी ई० में माधव कंदलि ने वाल्मीकि 'रामायण' का भावानुवाद किया था। इसके प्रथम तथा अन्तिम काण्ड अप्राप्य हैं। इस भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि शंकरदेव ने भी उत्तर-काण्ड का अनुवाद किया है। और 'राम विजय' नामक एक नाटक की रचना की। इसी प्रकार दुर्गावर कवि की 'गीति-रामायण' भी प्रसिद्ध है, जिसमें राम-कथा-वर्णन पद्यों में मिलता है। रघुनाथ कृत 'कथा रामायण' की रचना गद्य में और 'राम कीर्तन' रामायण अनन्त आता कृत भी लेखनीय हैं।

७

(१२) हिन्दी भाषा—इस भाषा के अन्तर्गत गोस्वामी तुलसीदास की रचनाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। इनके सम्बन्ध में आगे विस्तार-पूर्वक लिखा जायगा। गोस्वामीजी के पहले सूरदास ने सूरसागर में मुक्तक पदों में राम-कथा का वर्णन किया था, जिसमें वाल्मीकि रामायण के ही अनुसार कथा का क्रम रखा गया है। केशवदास की 'रामचन्द्रिका' भी हिन्दी में एक प्रसिद्ध रचना है, जिसमें नवीन प्रसंग भी पाए जाते हैं। राम-कथा को लेकर हिन्दी में अनेक कवियों ने रचनाएँ कीं, जिनके नाम हैं:—अग्रदास, नाभादास, सेनापति, हृदयराम, प्राणचन्द्र चौहान, बालदास, लालदास, बालभक्ति, रामप्रियाशरण, जानकीरसिकशरण, प्रियादास, कलानिधि, महाराज विश्वनाथ सिंह, प्रेमसखी, कुशल मिश्र, रामचरणदास, मधुसूदनदास, कृपानिवास, गंगाप्रसाद, व्यास उदैनियाँ, सर्वसुखशरण, भगवानदासी खत्री, गंगाराम, रामगोपाल, परमेश्वरीदास, पहलवानदास, गणेश, ललकदास, रामगुलाम द्विवेदी, जानकीचरण, शिवानन्द, दुर्गेश, जीवाराम, बनादास, मोहन, रत्नहरि. रामनाथ, जनकलाड़िलीशरण, गिरिधर-दास, जनकराजकिशोरीशरण, गंगाप्रसादद्दास, हरवख्श सिंह, लछमण, रघुवरशरण, महाराज रघुराज सिंह और इनके अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी में रामचरित उपाध्याय, बलदेवप्रसाद मिश्र, पं० रामनाथ 'ज्योतिषी', हरिऔध एवं मैथिलीशरण गुप्त आदि हैं[१] हिन्दी-साहित्य में इस प्रकार अनेक कवियों ने राम-कथा पर रचनाएँ कीं, जिनमें तुलसीदास की रचनाओं को सर्वश्रेष्ठ माना जायगा। क्योंकि इन्होंने राम-कथा को लेकर मानव-जीवन की जितनी व्यापक समीक्षा की. उतनी किसी भी कवि की रचना में नहीं प्राप्त होती। रामचरित्र को लेकर उपर्युक्त अन्य बहुत से कवियों ने फुटकल रचनाएँ कीं, किन्तु प्रबन्ध-काव्यों में 'वैदेही-वनवास'—हरिऔध कृत, रामचरित उपाध्याय का "राम-चरित्र-चिन्तामणि", बलदेवप्रसाद मिश्र का 'कोशल किशोर', मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' और पंडित रामनाथ "ज्योतिषी" का 'श्रीरामचन्द्रोदय' उल्लेखनीय हैं।

१—देखिए 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' डा० श्रीराम-कुमार वर्मा कृत।

नीचे हम 'रामचन्द्रिका' 'साकेत' 'वैदेही-वनवास'-'रामचरित चिन्तामणि' 'श्रीरामचन्द्रोदय' और 'कोशल किशोर' का कुछ परिचय दे रहे हैं।

राम-चन्द्रिका—इसकी रचना वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक, और 'प्रसन्नराघव' के आधार पर कवि ने किया है। इसमें ३६ प्रकाश हैं। प्रत्येक प्रसंग में कथा भाग का नाम देकर उसका वर्णन किया गया है। इसमें अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है। जिससे छन्दों के शीघ्र परिवर्तन के कारण कथा के तारतम्य में आघात पहुँचता है। इसमें प्रबंधात्मकता का पूर्ण निर्वाह नहीं हो पाया है। प्रारम्भ में न तो रामावतार का कारण दिया गया है और न राम के जन्म का ही विशेष वर्णन है। इसकी कथा का वर्णन स्थिरता पूर्वक नहीं हुआ है। इसकी सबसे बड़ी उल्लेखनीय बात यह है कि संवादों के कथन में इसे बड़ी सफलता मिली है। जैसे सुमति-विमति-संवाद, रावण-वाणासुर-संवाद, राम-परशुराम-संवाद, रावण-अङ्गद-सवाद और लव-कुश-भरतादि-संवाद आदि अच्छे वर्णन हैं। इसमें 'मानस' की भांति न तो किसी दार्शनिक सिद्धान्तों के दर्शन होते हैं और न धार्मिकदृष्टिकोण की ही व्यञ्जना होती है। 'मानस' की भांति, कवि वर्णनों के मार्मिक-स्थलों को नहीं पहचान सका है।

साकेत—राम के ईश्वरत्व पर पूर्ण आस्था रखते हुए भी कवि ने इस ग्रन्थ के सृजन के मूल में उर्मिला की जीवनाभि व्यक्ति को ही प्रधानता दी है। कवि राम के ऊपर से दृष्टि हटाकर उर्मिला के चरित पर ही केन्द्रित करने की चेष्टा करता दिखायी पड़ता है। कवि की अपनी इस रचना में उर्मिला के जीवन-विकास से संबंधित सभी परिस्थितियों और घटनाओं का संगठन करता हुआ देखा जाता है। यद्यपि ऊपर हम लिख आए हैं कि रामचरित के साथ उर्मिला को भी लेकर 'रंगनाथ-रामायण' में बुद्धराज नामक कवि ने तेलगू भाषा में रचना प्रस्तुत की है, किन्तु इसमें वर्णित घटनाएँ कवि की व्यक्तिगत कल्पना पर आधारित हैं। पुष्पवाटिका में सीता के साथ उर्मिला भी राम-लक्ष्मण-दर्शन करती है और मन ही मन लक्ष्मण को वरण करती है। चित्रकूट में उर्मिला और लक्ष्मण के मिलन की सम्भावना गुप्त जी के मौलिक दृष्टिकोण का सूचक है। इसी भांति चित्रकूट की महती सभा में कैकेयी ग्लानि से दुःखी नहीं होती,

किन्तु वात्सल्य का भाव दिखाकर अपने कुकृत्य का मनोवैज्ञानिक कारण उपस्थित करती है। चित्रकूट-मिलाप के पश्चात् की घटनाएँ घटित नहीं होतीं।

वैदेही वनवास—हरिऔधजी का यह प्रबन्ध-काव्य उत्तर-रामचरित की पृष्ठभूमि में सीता-निष्कासन की कथा से प्रारम्भ होता है। इसमें पूर्ववर्ती कवियों की कथा से कुछ परिवर्त्तन भी दिखाई पड़ते हैं, जैसे निष्कासन का कारण सीता पर प्रकट कर देना, सीता की अन्य बहिनों के साथ चलने का आग्रह करना, वशिष्ठ द्वारा पत्र देकर वाल्मीकि को सूचना देना, शत्रुघ्न द्वारा सीता को उनके वियोग के कारण पारवारिक जीवन में व्याप्त वेदना का कथन और आत्रेयी द्वारा पूर्व-जीवन-वृत्त संग्रह का प्रयास आदि कवि की मौलिक कल्पना है। इस प्रकार समस्त कथा प्रायः घटित न होकर वर्णित ही है। इसके साथ ही स्त्रियों का त्याग, कर्त्तव्य-पालन, दाम्पत्य-जीवन की मधुरता, जीवन में सदाचार की महनीयता और भौतिकता से ऊपर उठकर आध्यात्मिक जीवन की प्रतिष्ठा आदि आदर्शों के ग्रहण करने का उपदेश देता हुआ कवि दिखाई पड़ता है। १८ सर्गों में कथा समाप्त होती है, जिसमें करुण-रस के परिपाक को सुन्दर बनाने की चेष्टा की गयी है।

श्रीरामचरित चिन्तामणि—यह एक वृहत् प्रबन्ध-काव्य है, रामायण के राजनैतिक तथ्यों एवं विषयों पर कवि का विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है। भाषा में विदग्धता का दर्शन जहाँ-तहाँ देखने को मिलता है। इसकी शैली इति-वृत्तात्मक है और प्रबन्ध-संघटन साधारण है।

रामचन्द्रोदय—इसकी रचना ब्रजभाषा में की गयी है। यह भी एक महाकाव्य माना जाता है। केशव की 'रामचन्द्रिका' की-सी पाण्डित्य की झलक मिलती है।

कोशल किशोर—यह महाकाव्य के सभी लक्षणों से संयुक्त है। कथा-धारा विष्णु के अवतार के लिए स्तुति करते हुए देवताओं के चित्रण से प्रारम्भ होकर राम के युवराज-पद-वर्णन पर समाप्त हुई है।

गोविन्द रामायण—सिखों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने भी 'रामायण'

की रचना की।[१] इसकी रचना अनेक प्रकार के छन्दों में हुई है। इसकी मिली-जुली भाषा है। अन्य रामायणों की भांति इसकी रचना काण्डों में न विभक्त होकर छोटे-शीर्षकों में हुई है, जैसे—(१) रामावतार, (२) सीता-स्वयंवर, (३) अवध-प्रवेश, (४) वन-वास, (५) वन-प्रवेश, (६) खरदूषण-युद्ध, (७) सीता-हरण, (८) सीता की खोज, (९) लंका-गमन हनुमान शोध को पठैवो, (१०) प्रहस्त-युद्ध, (११) त्रिमुण्ड-युद्ध, (१२) महोदर-युद्ध, (१३) इन्द्रजीत-युद्ध, (१४) अतिकाय-युद्ध, (१५) मकराक्ष-युद्ध, (१६) रावण-युद्ध, (१७) सीता-मिलन, (१८) अयोध्या-आगमन, (१९) माता-मिलन, (२०) सीता-वनवास, (२१) सीता द्वारा जीवनदान और (२२) सीता-अवध-प्रवेश। समान रूप से इनका विस्तार नहीं है। यह रचना केशव की रामचन्द्रिका की भांति ही निर्मित हुई है।

(१३) फ़ारसी और अरबी भाषा—सबसे पहले मुसलमानी राज्यकाल में अकबर की प्रेरणा से वाल्मीकि रामायण का मुल्ला अब्दुल-कादिर बदायूनी द्वारा सन् १५८९ ई० में अनुवाद (फ़ारसी में) पद्य में हुआ। इसके साथ ही 'रामायण फ़ैजी' नाम से एक गद्यानुवाद भी तैयार किया गया। इसके पश्चात् मुल्ला मसीह कृत 'रामायण मसीही', लालाअमानत राय लालपुरी कृत 'रामायण' (सन् १७५४ ई० में), चन्द्रभान 'बेदिल' कृत 'रामायण' आदि पद्य में तथा लाला अमरसिंह का 'रामायण अमर प्रकाश' गद्य में लिखे गए, किन्तु इन्हें 'वाल्मीकि रामायण' का अक्षरशः रूपान्तर नहीं कहा जा सकता; किन्तु फिर भी इनकी राम-कथा में विशेष अन्तर नहीं है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त राम-कथा की चर्चा अल्बेरूनी द्वारा लिखे गए भारत विषयक-ग्रन्थ में भी मिलती है। यद्यपि इसमें कोई विस्तृत एवं शृङ्खलाबद्ध कथा तो नहीं मिलती, किन्तु राम-कथा के अंशों का उल्लेख प्रसंगानुसार कर दिया गया है। इसमें लंका में दुर्ग-निर्माण की कथा जानकी-हरण के बाद होती है। इसमें इसका भी उल्लेख

१—देखिए 'भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ' श्रीपरशुराम चतुर्वेदी कृत पृ० १५०।

है कि राम ने लौटते समय पुल को अपने बाणों द्वारा दस स्थानों पर तोड़ भी दिया।

(१४) उर्दू भाषा—इस भाषा में कुछ उर्दू कवियों ने राम-कथा के फुटकल प्रसंगों के आधार पर कुछ पद्यों की रचना की, जिसमें कल्पना का अधिक आश्रय लिया गया है। फकीरशाह जलालुद्दीन बसाली के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने राम-कथा संबंधी फारसी और उर्दू में रचना की थी, किन्तु उसकी किसी ऐसी रचना का पता नहीं चलता। इसी प्रकार 'नज़ीर' अथवा 'चकबस्त' जैसे कवियों के भी फुटकल पद्य ही प्राय मिलते हैं।

(१५) लोक गीत एवं परम्परा—लिपिबद्ध-साहित्य के अतिरिक्त राम-कथा की कुछ ऐसी सामग्री भी मिलती है, जिसमें आंशिक रूप से राम-कथा का वर्णन मिलता है। इस प्रकार की सामग्री प्राय: गेय पद्यों के रूप में मिलती है, जिसमें राम-कथा की स्फुट घटनाओं और उसके पात्रों की झलक पायी जाती है। सिंहल देश की प्राचीन धार्मिक विधि 'ददकम' को सम्पन्न करते समय अनेक काव्य कथाओं का पाठ किया जाता है, जिनमें एक कथा सीता-त्याग की भी है[१]। इस कथा के अनुसार वालि लंका दहनकर सीता को राम के निकट पहुँचा देता है। रावण चित्र के कारण सीता का परित्याग किया जाता है। सीता के लिए वाल्मीकि दो बालकों का सृजन कर देते हैं, ये दोनों सीता के एक अन्य पुत्र के साथ राम की सेना के साथ युद्ध करते हैं। राम-कथा के कुछ अंश बिहार एवं मुण्डा जातियों की दन्त-कथाओं में भी मिलते हैं, इसमें राम जन्म से लेकर रावण और कुम्भकर्ण के वध तक की कथा का वर्णन मिलता है। मुण्डा जाति की कथा में सीता की खोज का जो वर्णन मिलता है, उसमें बगुला राम की सहायता करने से इन्कार करता है, जिससे वे उसकी गरदन खींच देते हैं। बेर वृक्ष सीता की साड़ी के कुछ टुकड़े देता है, जिससे वे उसे अमर कर देते हैं तथा गिलहरी को मार्ग प्रदर्शित करने के लिए पीठ पर तीन लकीरों से चिह्नित कर देते हैं। इसके अतिरिक्त भारत की ग्रामीण बोलियों में राम-कथा की अनेक घटनायें वर्णित

१—देखिए श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत 'मानस की राम-कथा' पृ० ७४।

मिलती हैं। जैसे सोहर, बारहमासा आदि में राम की बड़ी मार्मिक कथाएँ लोकगीतों के रूप में मिलती हैं।

(१६) पालि-भाषा का जातक-साहित्य—बौद्धों ने जातक[१]—साहित्य के अन्तर्गत राम-कथा का उल्लेख किया है। इनमें राम-कथा संबंधी तीन जातक सुरक्षित हैं। जिसमें बुद्ध राम का रूप धारण करते हैं। 'दशरथ जातक' इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसे रेवरेण्ड फादर कामिलबुल्के ने एक सिंहली पुस्तक का पाली अनुवाद माना है (देखिए पृ० ५२—'रामकथा')[कहा जाता है कि बुद्ध ने, किसी गृहस्थ को जब उसका पिता मर गया था और वह शोकसंकुलित-हृदय हो अपना सम्पूर्ण कार्य छोड़कर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था, तब जैतवन में यह जातक उसे सुनाया था कि प्राचीन काल के पंडित लोग अपने पिता के मरण पर शोक नहीं करते थे। उदाहरण के लिए उन्होंने दशरथजी की मृत्यु पर राम के धैर्य का उदाहरण देने के लिए 'दशरथ-जातक' की कथा कही,] जो इस प्रकार है:—

महाराज दशरथ वाराणसी में धर्मपूर्वक राज्य करते थे। इनकी प्रधान रानी से तीन संतानें थीं—१ रामपण्डित और २ लक्ष्मण, (दो पुत्र) तथा सीतादेवी नामक पुत्री तीसरी सन्तान थी। जब इस जेष्ठा महिषी का देहान्त हो गया, तब राजा ने अपनी दूसरी रानी को जेष्ठा महिषी के पद पर नियुक्त किया, जिससे भरत नाम का एक पुत्र और भी उत्पन्न हुआ। राजा ने उसे उसी समय एक वर दिया। भरत की जब सात वर्ष की अवस्था थी तभी रानी ने उसके लिए राज्य माँगा। इसे राजा ने स्वीकार न किया, किन्तु रानी बार-बार हठपूर्वक भरत के लिए राज्य माँगती ही रही। राजा ने अनिष्ट के भय से अपने पुत्रों को बुलाकर कहा-कि तुम किसी दूसरे राज्य या वन में जाकर रहो, मेरे मरने के पश्चात् आकर इस राज्य पर अपना आधिपत्य जमा लेना। राजा ने ज्योतिषियों से अपने जीवन की अवधि

१—जातक बौद्धों का ऐसा कथा-साहित्य है, जिसके अन्तर्गत भगवान बुद्ध अपने अनगिनित पूर्व-जन्मों में मनुष्य अथवा पशु के रूप में भाग लेते हुए, दिखाए गए हैं।

पूछी। बारह वर्ष का उत्तर सुनकर उन्होंने पुत्रों से कहा कि बारह वर्ष की अवधि कहीं बाहर तुम लोग बिताकर लौट आना। पिता की आज्ञानुसार राम-पण्डित और लक्खण अपनी बहन सीतादेवी के साथ हिमालय की ओर चल पड़े। उनके साथ बहुत से और लोग भी चले, किन्तु उनको लौटाकर वे लोग हिमालय पर आ कुटी बनाकर रहने लगे। नौ वर्ष बीतने पर पुत्र शोक से दशरथजी की मृत्यु के उपरान्त अपनी माता की राय अस्वीकृत करके राम को लौटाने के लिए भरत उनके पास पहुँचे और विलाप करते हुए पिता की मृत्यु का समाचार रामको सुनाया, किन्तु राम पण्डित न तो रोए और न शोक ही किए। अपने कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ता से स्थित रहते हुए राम बिना बारह वर्ष पूर्ण हुए लौटने पर राजी न हुए। लक्खण और सीतादेवी को पिता की मृत्यु सुनने पर महान् शोक होता है, जब राम पण्डित उन्हें धैर्य और उपदेश देते हैं, तब उनका शोक दूर होता है। भरत को राम पण्डित ने अपनी तृण-पादुका देकर लौटा दिया। भरत के साथ लक्खण और सीता भी लौटती हैं। पादुकाओं के समक्ष भरत राज्य करते हैं, जब कभी अन्याय होता है, तो वे पादुकाएँ एक दूसरे पर आघात करती हैं; तीन वर्ष बीतने पर राम पण्डित वाराणसी लौट आते हैं और अपनी बहन सीतादेवी से विवाह कर सोलह हजार वर्षों तक राज्य कर स्वर्ग चले जाते हैं। इस प्रकार इसमें सीताहरण, वानरों की राम से मित्रता, रावण के साथ युद्ध और सीता-त्याग आदि कथाएँ नहीं पायी जाती हैं, किन्तु दूसरे जातक 'अनामकं जातकम्' की कथा का रूप दूसरा है, इसके अनुसार बोधिसत्व एक बड़े राजा थे, जो सब जीवों की रक्षा दान, प्रियवचन, न्याय और समदर्शिता से किया करते थे। उनके मामा भी राजा थे, जो बड़े दुष्ट; निर्दयी, लोभी और निर्लज्ज थे। बोधिसत्व का राज्य छीनने के लिए उन्होंने एक महती सेना एकत्र की, किन्तु असंख्य नर-संहार के भय से बोधिसत्व ने उनके साथ युद्ध न किया और रानी के साथ बाहर वन में चले गए। वहाँ समुद्र में एक दुष्ट नाग रहता था, उसने कपटवेश धारण कर रानी को उस समय हर लिया, जब राजा फल के लिए वन में गए थे। समुद्र की ओर उसका मार्ग दो घाटियों के संकीर्ण पथ से था। पहाड़ पर एक विशाल पक्षी था, उसने अपना पंख फैलाकर नाग का मार्ग रुद्ध कर दिया। नाग ने पक्षी का दाहिना पंख तोड़कर उसे खूब मारा और अपने द्वीप को वह लौट गया। फल लेकर

लौटने पर राजा ने जब रानी को नहीं देखा, तब वे बहुत दुःखी हुए और धनुष-बाण धारणकर पर्वतों और वनों में रानी की खोज करते हुए घूमने लगे। एक नदी के श्रोत पर पहुँचकर राजा ने एक उदास बन्दर को देखा। पूछने पर बन्दर ने बताया कि मैं एक राजा था, मेरे चाचा ने मेरा राज्य छीन लिया है, मेरा इस समय काई साथी नहीं है। बोधिसत्व ने अपना भी सब वृत्तान्त कह डाला। आपस में वचनबद्ध होकर राजा और बानर ने मित्रता कर ली। दूसरे ही दिन बन्दर ने अपने चाचा से युद्ध किया। राजा के बाण संधान करते ही उस बन्दर के चाचा ने भय से भागकर अपना प्राण बचाया। बन्दर ने अपने आधीन अन्य वानरों को रानी की खोज करने का आदेश दिया। रानी की खोज करते हुए वानरों ने एक आहत पक्षी देखा, जिसने कहा कि 'रानी को एक दुष्ट नाग ने चुराया है।

कपिराज ने जब देखा कि समुद्र पार करने में मेरी सेना असमर्थ है। उस समय इन्द्र ने छोटे बन्दर का रूप धारण कर कहा--हर एक वानर को पहाड़ का एक-एक टुकड़ा लाने की आज्ञा दो; इस प्रकार समुद्र में तुम्हारी सेना को पार करने के लिए एक मार्ग बन जायगा और उस मार्ग से आप सेना के साथ उस द्वीप में पहुँच जायँगे, जहाँ दुष्ट नाग रहता है। वानरों ने इसी उपाय से समुद्र पार किया और नाग-द्वीप को घेर लिया। नाग ने जब एक घना कुहरा पैदा किया, जिसके कारण सब भूमि पर गिर पड़े, तब छोटे बानर (इन्द्र) ने एक देवी औषधि सबके कान में लगाकर स्वस्थ्य किया। इस पर नाग ने पुनः आँधी एवं बादलों से सूर्य को छिपा लिया। बादलों में जो बिजली चमक रही थी, उसे छोटे वानर (इन्द्र) ने कहा—बिजली ही नाग है। ऐसा सुनकर राजा ने एक ही बाण से नाग को मार कर गिरा दिया। इस प्रकार छोटे वानर की सहायता से रानी मुक्त हो गयी। राजा यह सुनकर कि उसके मामा का अब देहान्त हो गया है, अपने देश को वापस लौट गया। राजा (बोधिसत्व) ने कहा—हे रानी! पति से अलग दूसरे के यहाँ निवास करनेवाली स्त्री के आचरण पर लोग सन्देह करने लगते हैं। इस परम्परा के अनुसार तुम्हें स्वीकार करना मुझे कहाँ तक उचित होगा! रानी ने उत्तर दिया—"मैं एक नीच की गुफा में पंकज की तरह रहती थी, यदि मुझमें सतीत्व है, तो पृथ्वी फट जाय।"

इतना कहने पर पृथ्वी फट गयी, तब राजा का सन्देह दूर हो गया। इसके पश्चात् राजा और रानी मिलकर शासन करने लगे। उनके प्रभाव से प्रजा धर्म से विमुख न होती थी। बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—"तब मैं राजा था, गोपा रानी थी, देवदत्त रावण था और मैत्रेय इन्द्र (छोटा बन्दर) था। यद्यपि इस घटना से रामायण की राम-कथा से कुछ समानता है, किन्तु इसमें राम-कथा के पात्रों का नाम नहीं आता है।

इसी प्रकार 'दशरथ कथानम्' नामक जातक में भी राम-कथा का वर्णन मिलता है, किन्तु वह उपर्युक्त दोनों से कुछ-न-कुछ बातों में भिन्न है। इसके अनुसार प्राचीनकाल में जब मनुष्य की आयु दस सहस्र वर्ष होती थी, जम्बूद्वीप के अन्तर्गत दशरथ नाम के एक राजा थे, जिनकी पहली रानी से राम जिनमें नारायणीय शक्ति थी, दूसरी से लक्ष्मण (लोमन-लदमन), तीसरी से भरत और चौथी से शत्रुघ्न नाम के चार पुत्र थे,। इन रानियों में राजा तीसरी रानी को बहुत मानते थे। एक दिन राजा ने उसी रानी से कहा कि मैं तुम्हारी किसी भी कामना को पूर्ण करने में अपना सम्पूर्ण कोष न्योछावर कर दूँगा। ऐसा करने में मुझे कुछ भी संकोच न होगा। इस पर रानी बोली मैं किसी दिन तुमसे कहूँगी। कुछ दिन बीत जाने पर राजा दशरथ बीमार पड़े, उन्होंने राम को ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया। इसे रानी सहन न कर सकी, उसने ईर्ष्यावश राजा से अपने पुत्र को राजा बनाने और राम को निर्वासित करने का वर माँगा। यह सुन कर राजा दशरथ दुःखी तो हुए, किन्तु अपना वचन भंग न कर सके। लक्ष्मण राम से बोले तुम इस अपमान को सहन न करो। इस कार्यवाही के विरुद्ध सतर्क हो जाओ। राम ने लक्ष्मण की इस बात को न माना। दशरथ ने अपने इन दोनों पुत्रों को बारह वर्ष के लिए वनवास दे दिया। इस समय भरत किसी दूसरे देश में थे। जब लौटे तो उनके हृदय में अपनी माता के प्रति बड़ी घृणा हुई। अन्त में वे अपनी सेना को साथ ले, जहाँ राम रहते थे, उस पर्वत पर गए; किन्तु राम न लौटे। भरत को ही राम ने अपनी पादुका देकर लौटा दिया। भरत प्रत्येक दिन उन पादुकाओं की पूजा किया करते थे और उन्हीं पादुकाओं से आज्ञा माँग कर राज्य भी करते। जब अवधि व्यतीत हो गयी, तब राम अपने देश लौट आए और भरत के आग्रह पर राज्य करने

लगे[१]। यद्यपि यह कथा अधिकांशतः रामायण की कथा से मिलती हुई जान पड़ती है, किन्तु इसमें किसी स्त्री के हरे जाने की कथा का न तो उल्लेख ही मिलता है और न तो उसके कारण किसी युद्ध का ही वर्णन है। सच बात तो यह है कि इस कथा में राम की किसी पत्नी का उल्लेख ही नहीं है। इसमें दशरथ की दो चार रानियों के चार पुत्रों की उत्पत्ति की कथा है।

इसी प्रकार पाली 'तिपिटक' के अन्तर्गत राम-कथा का जो वर्णन मिलता है, वह भी उपर्युक्त कथाओं का ही प्रभाव पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। उन कथाओं में वाल्मीकि रामायण का कहीं-कहीं अनुसरण दिखाई पड़ता है। 'जयद्दिस जातक' में जो राम के दण्डकारण्य की यात्रा का वर्णन पाया जाता है, वह 'दशरथ जातक' वाली कथा के हिमालय-यात्रा की कथा से भिन्न है और 'रामायण' के अनुसार है। 'साम-जातक' में जो मातृ-पितृ-भक्त साम के बनारस के राजा पिलियक केविषैले वाणों द्वारा आहत होने की कथा है, वह 'रामायण' की अंधमुनि पुत्र-वध की कथा के अनुसार है। 'संबुला-जातक' में जो संबुला की पति-सेवा और 'संचनक्रिया' की कथा का उल्लेख है, वह भी सीता की पति-सेवा एवं अग्नि-परीक्षा से भिन्न नहीं है।

इसी प्रकार बौद्ध-साहित्य में राम-कथा का वर्णन अन्यत्र भी अनेक ग्रन्थों में मिलता है, किन्तु वह सब रामायण' की कथाओं से मिलती-जुलती कथाएँ हैं। बौद्ध-धर्म के पौराणिक-साहित्य में राम-कथा का कोई भी रूप सुरक्षित नहीं मिलता। किन्तु 'लंकावतारसूत्र' के प्रारंभिक अंशों में लंकाधिपति रावण के मलय पर्वत पर जाने और वहाँ पर शाक्यसिंह के साथ धर्म संबंधी बात चीत करने का उल्लेख मिलता है, जिसका राम कथा से कोई संबंध नहीं है।[२]

(१७) जैन-साहित्य में राम-कथा—इस साहित्य में भी राम-कथा का अपना रूप अलग है। बौद्ध साहित्य में भगवान् बुद्ध राम के एक अवतार के रूप में माने गये हैं, किन्तु जैन-धर्म में राम (पद्म), लक्ष्मण तथा रावण जैन-धर्म के अनुयायी महापुरुष के रूप में वर्णित हैं। राम-कथा जैन-साहित्य में एक समान

१—देखिए 'राम-कथा'—डा० फादर कामिलबुल्के पृ० ५७, ५८।

२—देखिए श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत 'मानसकी राम- कथा' पृ० ७६।

रूप से नहीं पायी जाती। श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों के अनुसार राम-कथा अपना भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की राम-कथा सर्व प्रथम विमल सूरि द्वारा 'पउम-चरिय' में प्रचलित हुई मानी जाती है, जो संस्कृत अनुवाद 'पद्म चरित' के नाम से विख्यात है और दिगम्बर सम्प्रदायवाली राम-कथा प्रधानतः गुणभद्र द्वारा 'उत्तर-पुराण' की राम-कथा के अनुरूप प्रचलित हुई है।

विमलसूरि के 'पउमचरिय' का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :- राजा श्रेणिक (श्रेणिक) किसी दिन गोयम (गोतम), महावीर के प्रधान शिष्य से राम-कथा का यथार्थ रूप सुनने की इच्छा करते हैं। इस पर गोयम उन्हें पउमचरिय सुनाते हैं, आरम्भ में विद्याधर-लोक, राक्षस-वंश और रावण की वंशावली का वर्णन है। इसके अनुसार राक्षस-राज रत्नश्रवा एवं केकसी के चार सन्तान हैं, जिनके नाम हैं—रावण, कुम्भकर्ण, चन्द्रनखा तथा विभीषण। जब रत्नश्रवा ने प्रथम रावण को देखा था, तब वह शिशु माला पहने था, इस माला में पिता को रावण के दस सिर दिखाई पड़े। इसीलिए उसका नाम दसग्रीव या दशानन रखा गया। अपने मौसेरे भाई का वैभव देखकर रावण, कुम्भकर्णादि भी तप करने जाते हैं और विद्यायें प्राप्त करते हैं। रावण मन्दोदरी तथा ६००० अन्य कन्याओं से भी विवाह करता है। दिग्विजय में वह अनेक राजाओं को पराजित करता है। इस विजय-यात्रा में नलकूबर की पत्नी का प्रेम प्रस्ताव रावण अस्वीकार करता है तथा किसी केवली का उपदेश सुनकर धर्म-प्रतिज्ञा करता है "मैं विरक्त पर नारी का भोग नहीं करूँगा।"

इसमें बालि विरक्त होकर सुग्रीव को अपना राज्य देता है और जैन-धर्म में दीक्षित होता है। हनुमान रावण की ओर से वरुण के विरुद्ध संग्राम करके अनंगकुसुमा जो चन्द्रनखा की पुत्री है, विवाह करते हैं। खरदूषण रावण के भाई न माने जाकर किसी दूसरे विद्याधरवंश का राजकुमार है, जो चन्द्रनखा से विवाह करता है। दशरथ की तीन पत्नियां हैं, जिनके नाम कौशल्या, सुमित्रा और सुप्रभा हैं। नारद द्वारा यह जानकर कि तुम्हारी मृत्यु जनक-पुत्री के कारण दशरथ के पुत्र से होगी, रावण अपने भाई विभीषण को इन दोनों की हत्या के लिए भेजता है। यह जानकर नारद दोनों राजाओं को सतर्क कर देते हैं।

वे लोग अपने रूप का पुतला-बनाकर अपने-अपने महल में रख देते हैं और गुप्त रूप से परदेश चले जाते हैं। विभीषण इन पुतलों का सर काटकर समुद्र में फेंक देता है परदेश जाकर दशरथ कैकेयी के स्वयंवर में पहुँचते हैं। कैकेयी उन्हें माला पहनाती है। इससे वहाँ अन्य राजाओं से युद्ध होता है। इस युद्ध में कैकेयी दशरथजी का रथ बड़ी प्रवीणता से हाँकती है, जिसकी प्रसन्नता में वे उसे एक वर देते हैं। इसके पश्चात् दोनों राजा अपने-अपने नगर को लौटकर राज्य करने लगते हैं। दशरथजी की चारों रानियों से चार पुत्र हुए—अपराजिता या कौशिल्या से पद्म या राम, सुमित्रा से लक्ष्मण, कैकेयी से भरत और सुप्रभा से शत्रुघ्न। इसी प्रकार जनक की विदेहा नामक रानी से एक पुत्री सीता और एक पुत्र भामंडल उत्पन्न हुआ। सीता स्वयंवर में राम ने धनुष चढ़ाया। सीता से उनका विवाह हुआ। इसके बाद दशरथ को वैराग्य होता है, इस समय कैकेयी भरत के लिए राज्य माँगती है। राम-लक्ष्मण और सीता दक्षिण की ओर बढ़ जाते हैं। भरत जाकर उनसे राज्य करने का अनुरोध करते हैं। वन जाकर राम और लक्ष्मण को अनेक युद्ध करने पड़ते हैं, राम गन्धर्व राजा की तीन कन्याओं को पत्नी के रूप में ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण भी वज्रकर्ण की आठ कन्याओं और कल्याणमाला, वनमाला तथा रत्नमाला से विवाह करते हैं, इन्हें वे बाद में बुलाने का प्रण करते हैं। जटायु के भेंट के बाद दण्डक-वन में निवास का वर्णन है। सीता-हरण का प्रसंग विमलसूरि ने इस प्रकार वर्णन किया है :- चन्द्रनखा एवं खरदूषण-पुत्र शम्बूक ने सूर्य हास खंग की सिद्धि के निमित्त १२ साल साधना की। उसकी साधना सफल हुई, जिसमें खंग प्रकट हुआ। संयोग से लक्ष्मण वहाँ पहुँचते हैं और खंग उठाते हैं और पास के बाँस को काटकर शम्बूक का सर भी काट लेते हैं। चन्द्रनखा मरे हुए अपने पुत्र को देखकर वन में विलाप करती हुई घूमती है। राम-लक्ष्मण के पास पहुँच कर उनसे वह उनकी पत्नी बनने का प्रयास करती है। जब वह इस कार्य में विफल हो जाती है, तब शम्बूक-वध का समाचार अपने पति को सुनाती है। इसकी सूचना रावण को दी जाती है। रावण आता है। सीता को देखकर वह उनपर आसक्त हो जाता है। वह अवलोकनी विद्या से जानता है कि लक्ष्मण ने राम को बुलाने के लिए उन्हें

सिंहनाद का संकेत बनाया है। अतः रावण सिंहनाद करके राम को लक्ष्मण के पास भेजता है और अकेले में सीता-हरण करता है। इसके पश्चात् सुग्रीव की राम से मित्रता का उल्लेख है। साहसगति ने सुग्रीव का रूप धारण कर उसके राज्य और पत्नी का हरण कर लिया है। साहसगति का वध कर राम सुग्रीव का राज्य लौटाते और सुग्रीव की १३ कन्याओं से विवाह करते हैं। सुग्रीव के आदेशानुसार विद्याधर सीता की खोज करने जाते हैं। रत्नजटी द्वारा यह ज्ञान कर कि सीता का हरण रावण ने किया है। रावण के भय से विद्याधर युद्ध करने से इन्कार करते हैं। अनन्तवीर्य के कथनानुसार लक्ष्मण कोटि शिला उठाते हैं और सबको विश्वास हो जाता है कि (जो कोटि शिला उठायेगा उसी के हाथ से रावण की मृत्यु होगी) रावण को लक्ष्मण मारेंगे। हनुमान को रावण के पास भेजने का प्रस्ताव होता है। हनुमान रावण के परम मित्र हैं। वज्रमुख की कन्या (लंका-सुन्दरी) से हनुमान का विवाह होता है। बाद में वे विभीषण और सीता से मिलते हैं आगे की कथा रामायण के अनुसार है। युद्ध-पर्व की कथा कुछ परिवर्तन के साथ उल्लिखित है। इसमें समुद्र नामक राजा ने वानरों की सेना को रोक लिया। इस पर उसे नल के साथ घोर युद्ध करना पड़ा। जब समुद्र पराजित हो जाता है, तब राम उसका राज्य उसे लौटा देते हैं, वह लक्ष्मण के साथ अपनी कन्या ब्याह देता है। सुवेल नामक राजा की पराजय के पश्चात् वानरी सेना लंका पहुँचती है। जब युद्ध होता है, उसमें लक्ष्मण को शक्ति लगने पर वे द्रोणमेघ की कन्या विशल्या की चिकित्सा से अच्छे होकर उससे विवाह करते हैं। जैनमत के अनुसार लक्ष्मण अर्थात् नारायण ने प्रतिनारायण अर्थात् रावण का वध किया। अयोध्या लौटकर राम-लक्ष्मण राज्य करने लगते हैं। राम की आठ सहस्र तथा लक्ष्मण की तेरह सहस्र पत्नियों के होने का इसमें उल्लेख है। भरत की दीक्षा लेने के बाद राम लोकापवाद से गर्भवती सीता को निकाल देते हैं। इसके पश्चात् सीता के पुत्र लवण एवं अंकुश राम तथा लक्ष्मण से युद्ध करते हैं। अन्त में राम से पुत्रों की संधि हो जाती है। सुग्रीव, हनुमान तथा विभीषण के कहने पर राम सीता को बुलाते हैं। अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सीता एक आर्यिका के पास जैन-धर्म में दीक्षित होती हैं और बाद में स्वर्ग जाती हैं। किसी दिन दो

स्वर्गवासी देव बलभद्र-नारायण का प्रेम परखने के लिए लक्ष्मण को विश्वास दिलाते हैं कि राम का देहान्त हो गया है। इस पर शोक के कारण लक्ष्मण नरक जाते हैं। लक्ष्मण की अन्त्येष्टि के पश्चात् राम विरक्त होकर जैन-धर्म में दीक्षा लेते हैं और साधना द्वारा मुक्ति के अधिकारी होते हैं। रावण ने विरक्त परनारी का भोग न करने की प्रतिज्ञा पूरी की थी, इसके अनुसार वह अनेक जन्म लेकर अर्हन्त का पद प्राप्त करेगा।[१]

'पउम-चरिय' के आधार पर कालान्तर में अनेक ऐसे ग्रन्थों का निर्माण हुआ जिनमें से रविषेण का 'पद्म-चरित' अथवा 'पद्म-पुराण' नामक संस्कृत ग्रन्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध है, जो 'पउम-चरिय' का परिवर्द्धित और छायानुवाद संस्करण प्रतीत होता है[२]। यह श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुयायियों में बहुत लोकप्रिय है। इसके अतिरिक्त 'पउम-चरिय' के आधार पर अन्य दो रचनाएँ भी महत्वपूर्ण हैं, जिनमें एक स्वयंभूदेव कृत 'पउम-चरिउ' अपभ्रंश-काव्य है और दूसरी 'पम्पप रामायण' नागचन्द कृत है, जिसकी रचना कन्नड़ी भाषा में है। स्वयंभूदेव कृत 'पउम-चरिउ' के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह कुछ अंशों में तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' के लिए आदर्श ग्रन्थ बना होगा[३]। 'क्वचिदन्यतोदि' शब्द से (तुलसी के 'मानस' में) 'पउम-चरिउ' के लिए ही संकेत किया गया है, और भी राहुल जी लिखते हैं कि जिस शूकर-क्षेत्र में गोस्वामीजी राम-कथा सुने थे, वहाँ जैन-घरों में स्वयंभू रामायण पढ़ा जाता था। 'पम्पप रामायण' अथवा 'पम्परामायण' का दूसरा नाम 'रामचन्द्र चरित पुराण' भी है, इसके आधार पर कन्नड़ी भाषा में रामचरित सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं।

'पउम चरिउ' की राम-कथा में वर्णन आता है कि राम और लक्ष्मण को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ा था, राम का विवाह सीता के अतिरिक्त सात और कन्याओं के साथ हुआ था। इसी प्रकार लक्ष्मण का १६ राजकुमारियों के साथ, सीता रावण-मन्दोदरी की ही सन्तान थी, जिसे अनिष्टकारी समझकर मंजूषा

१—देखिए 'राम-कथा' पृ० ६५ से ६८ तक।

२—देखिए श्रीनाथूराम प्रेमीकृत 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ०२७१-४

३—श्रीराहुल सांकृत्यायन कृत 'हिन्दी-काव्यधारा' (अवतरणिका) पृ० ५२-३०

में बन्द करके फेंक दिया गया था; उसे जनक पा गए और पालन किये। सीता-हरण वाराणसी के समीपवर्ती वन में नारद द्वारा उत्साहित किए जाने पर रावण ने किया था। इसमें रावण-वध का वर्णन लक्ष्मण द्वारा किया गया है और लक्ष्मण की मृत्यु भी रोग से हुई थी, लक्ष्मण को नरक भी जाना पड़ा था, राम जैनमत के नव बलदेवों में थे, लक्ष्मण उसके नव वासुदेवों में अन्तिम थे; इसी प्रकार रावण भी उसके नव प्रतिवासुदेवों में अन्तिम था।[1] उल्लिखित है।

'पद्म रामायण' के भी अनुसार पता चलता है कि राम-कथा के अनेक पात्र–राम, लक्ष्मण और रावण आदि–जैनी हैं, अथवा अन्त में जैन-मतावलम्बी बन जाते हैं, जो राक्षस हैं, वे सभी विद्याधर कहलाते हैं। इनमें आकाश में विचरण करने की क्षमता है। वानर वस्तुतः बन्दर नहीं हैं, बल्कि मनुष्य हैं, जिनकी ध्वजाओं पर बन्दर के चिन्ह हैं। इसमें राम की सेना किसी सेतु-मार्ग से नहीं जाती, वह 'नभोगमन विद्या' का अवलम्ब ग्रहण करती है। राम तथा लक्ष्मण अवतारी पुरुष नहीं हैं, वे मात्र 'कारण पुरुष' हैं। लक्ष्मण कृष्ण, केशव तथा अच्युत भी कहलाते हैं और वे ही रावण का वध भी करते हैं। लक्ष्मण और शत्रुघ्न भिन्न-भिन्न माता से उत्पन्न होते हैं। राम की माता का नाम कौशल्या न होकर अपराजिता है और सीता का एक यमज भाई प्रभामण्डल है, जो सीता को उसके स्वयंवर के समय पहचान पाता है।[2]

'उत्तर पुराण' जिसका रचयिता गुणभद्र है, इसकी रचना जिनसेन कृत 'आदि पुराण' की कथा की पूर्ति में हुई मानी जाती है, कुछ विद्वानों का मत है कि गुणभद्र ने अपनी इस रचना का आधार किसी प्राचीन जैनाचार्य के ग्रन्थ को बनाया होगा।[3]

गुणभद्र की इस परम्परा का अनुसरण अनेक अन्य जैन-कवियों ने किया, जिनमें मुख्य हैं-कृष्ण कवि, पुष्पदन्त और चामुण्डराय। उपर्युक्त इन कवियों की रचनाएं संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत अपभ्रंश तथा कन्नड़ी में भी हैं, जिनमें राम के साथ ही

१—देखिए श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत 'मानस की रामकथा' पृ० ८१।
२—देखिए वही पृ० ८१। ३—देखिए श्रीनाथूराम प्रेमी कृत 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ० २८२।

साथ तिरसठ दूसरे महापुरुषों के भी चरित्र सम्मिलित हैं। गुणभद्र की रचना के अनुसार राम-कथा का जो वर्णन मिलता है वह इस प्रकार है—दशरथ वाराणसी के राजा थे, उनकी रानियों में सुबाला से राम तथा कैकेयी से लक्ष्मण पैदा हुए थे। भरत और शत्रुघ्न की माताओं का नाम नहीं आता। सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई मानी जाती हैं, जिसे अनिष्टकारी समझकर रावण ने मारीच के द्वारा मंजूषा में बन्दकर मिथिला में गड़वा देता है और हल जोतते समय जिसे जनक पा जाते हैं, उसका पालन जनक अपनी पुत्री की भाँति करते हैं। सीता के विवाह के उपलक्ष में जनक एक वैदिक 'यज्ञ' का आयोजन करते हैं। यज्ञ की रक्षा के निमित्त राम तथा लक्ष्मण बुलाये जाते हैं और सीता का विवाह राम के साथ कर दिया जाता है। उस यज्ञ में रावण को निमंत्रण नहीं दिया जाता, इस कारण विशेष से नारद द्वारा सीता के सौन्दर्य का बखान सुनकर वह सीता के हरण की बात सोचता है। बनारस के पास चित्रकूट वन से वह सीता का हरण करता है। इसीलिए लंका में राम-रावण युद्ध होता है तथा रावण को लक्ष्मण मार कर और दिग्विजय करके राम-लक्ष्मण वापस लौट आते हैं[१]। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से मर कर रावण-वध के कारण नरक जाते हैं। अन्त में राम दीक्षा लेकर मुक्ति प्राप्त करते हैं तथा सीता भी अनेक रानियों के साथ दीक्षा लेकर स्वर्ग चली जाती हैं। उपर्युक्त रचना में 'रामायण' की अन्य कथाएँ जैसे कैकेयी के हठ करने की, राम को वनवास देने की, पंचवटी की, दण्डकवन की, जटायु की और शूर्पणखा-खर-दूषण आदि की नहीं वर्णित हैं। 'पउम चरिय' तथा 'पद्मचरित' की कथा 'रामायण' के ही ढंग पर चली है। 'उत्तर पुराण' की कथा (जानकी की उत्पत्ति संबंधी वर्णन) 'अद्भुत रामायण' से मिलती जुलती है। दशरथ बनारस के राजा थे, यह वर्णन बौद्ध-जातक से मिलता है। 'उत्तर पुराण' की तरह उसमें भी सीता-निर्वासन, लव-कुश-जन्म आदि का वर्णन नहीं है।

जैन-साहित्य की राम-कथा, बौद्ध-साहित्य की राम-कथा से अधिक विस्तृत

१—देखिये श्रीनाथूराम प्रेमीकृत 'जैन साहित्य और इतिहास', पृ० २७६।

और साम्प्रदायिक है, किन्तु यह अधिकांश विद्वान मानते हैं कि बौद्ध राम-कथा का रूप जैन राम-कथा से प्राचीन ठहरता है।[१]

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि हिन्दू-राम-कथा, बौद्ध-राम-कथा, तथा जैन-राम-कथा के प्रचलित रूपों में बहुत अन्तर है। क्योंकि धार्मिक दृष्टिकोणों से राम-कथा प्रभावित रही है। हिन्दू-राम-कथा में राम विष्णु के अवतार माने गए हैं, इस कारण उसमें भक्ति-भावना के भी दर्शन होते हैं। बौद्ध-राम-कथा में राम को बोधिसत्व के रूप में वर्णित किया गया है और जैन-राम-कथा में राम को ऐसा महान् पुरुष माना गया है, जिसका अन्तिम लक्ष्य जैन-धर्म में दीक्षित होकर मुक्ति का अधिकारी हो जाना है। इन तीनों प्रकार की राम-कथाओं में तीनों धर्म के अन्तर्गत कर्मवाद के महत्व का स्पष्टीकरण है, ये तीनों ही स्वर्ग-नरक में विश्वास रखनेवाले हैं।

२—विदेश में राम-कथा

(१) खोतान, चीन और तिब्बत—ईस्वीसन् के प्रारंभिक समय में जब कुषाण वंश का राज्य काशी से खोतान तक फैला था, तब उधर के बाहर-वाले देश भारतीय संस्कृति से धीरे-धीरे प्रभावित होते गये। मध्य एशिया, चीन तथा तिब्बत इत्यादि 'उपरलाहिन्द' कहे जाने लगे। इतिहासज्ञों का कथन है कि चीनी सम्राट् हो-ति (सन् ८६--१०५ ई०) के सेनापति पान्छाव् से, जिसने मध्य एशिया में युद्ध किया था, चीन और मध्य एशिया का सम्पर्क बढ़ा तथा ईसा की दूसरी शताब्दी तक बौद्ध-धर्म, संस्कृति और साहित्य का उधर

१—देखिए श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत 'मानस की राम-कथा' पृ० ८३।

भी प्रसार हो गया। चीन के साथ फिर तिब्बत का संबंध स्थापित हुआ और नैपालाधिपति अंशु वर्मा की कन्या के ५८० ई० में विवाहार्थ ल्हासा पहुँच जाने पर, तिब्बत पर भारत का सीधा प्रभाव भी पड़ने लगा, इसी समय के आस-पास चीन सम्राट् की आज्ञानुसार थोन्-मिने, काश्मीर की लिपि के अनुकरण में भोट भाषा लिखने के निमित्त एक लिपि का भी आविष्कार किया। इस प्रकार ई०। की सातवीं शताब्दी तक खोतान, चीन, तिब्बत तथा भारत का सम्बन्ध भली-भाँति स्थापित हो गया और भारतीय संस्कृति का प्रसार भी उधर थोड़ा-बहुत प्रारम्भ हो गया। भारत में उन दिनों बौद्ध-धर्म तथा बौद्ध-साहित्य का बड़ा महत्व था। अनेक लोग दूर-दूर जाकर उसका प्रसार कर रहे थे। बाहर की जनता उसे सम्मान देते हुए, अपने यहां के साहित्य में उचित स्थान देने लगी और अपनी संस्कृति में उसे पचा भी लिया। इस समय भारत के पाली तथा संस्कृत ग्रन्थों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद होने लगा। वे वहाँ के निवासियों के अपने साहित्य में गिने जाने लगे और उनके अधिक लोकप्रिय होने के कारण उन पर स्थानीय प्रचलित परम्परा का प्रभाव पड़े बिना न रह सका१।

ईसा की तीसरी शताब्दी में 'अनामकं-जातकं' का कांग सेंई द्वारा चीनी भाषा में अनुवाद हुआ जो 'लियेऊत्सी किंग' नामक पुस्तक में संरक्षित है। इसी प्रकार चीनी तिपिटक में 'चा-पाव्-छाड़्-चिड़्' नामक एक अवदानों का संग्रह सन् ४७२ ई० में चि-चि-आ-ये नामक चीनी लेखक द्वारा अनूदित हुआ, जिसमें 'दशरथ कथानं' नाम का दूसरा बौद्ध जातक भी सम्मिलित है। इन दोनों जातकों में राम-कथा का वर्णन है। 'अनामकं-जातकं' में यद्यपि राम-कथा के पात्रों का नाम नहीं है; किन्तु उसमें राम और सीता का वनवास, सीता-हरण, जटायु की घटना, बालि-सुग्रीव-युद्ध तथा सीता-अग्नि परीक्षा आदि जैसी घटनाओं का संकेत मिलता है। इन प्रसंगों को पढ़ने पर इसे राम-कथा के होने में ही विश्वास होने लगता है। 'दशरथ कथानं' में राम-लक्ष्मण के वनवास की कथा आ तो जाती है, किन्तु उसमें सीता नामक राम-कथा के पात्र का वर्णन नहीं आता और न तो युद्धादि की घटनाओं के वर्णन का अवसर ही मिलता है।

१—देखिए श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत 'मानस की राम-कथा' पृ० ८६।

तिब्बती-भाषा में राम-कथा का जो रूप सुरक्षित है, वह अनेक हस्तलिपि प्रतियों में पाया जाता है। रावण की कथा उनमें प्रथम दी गयी है। वहाँ पर भी सीता रावण की ही पुत्री मानी गयी है, जो अनिष्टकारी होने से फेंकी जाती है, उसे भारत के कृषक पालते-पोसते हैं। राम को उसमें रामन संज्ञा दी गयी है, जो पिता के असमंजस में पड़ जाने पर लक्ष्मण को राज्य देकर किसी आश्रम में स्वेच्छापूर्वक तपस्या के लिए चले जाते हैं। कृषकों के अनुरोध करने पर वे अन्त में तपस्या छोड़ देते हैं और सीता से विवाह कर राज्य करने लगते हैं। तिब्बती रामायण में रामन की राजधानी के ही निकट सीता-हरण दिखाया गया है। हरण के समय रावण सीता को छूता नहीं, उसे विघ्न उपस्थित करने-वाले जटायु को, रक्त से सने पत्थर खिलाकर वह मार डालता है। इसमें बालि-सुग्रीव के युद्ध में सुग्रीव के पूँछ में एक दर्पण बँधे जाने और बानरों द्वारा सीता की खोज करते समय एक-दूसरे की पूँछ थामकर स्वयंप्रभा-गुफा में प्रविष्ट होने का वर्णन है। इस रामायण पर गुणभद्र कृत 'उत्तर-पुराण' और 'कथा-सरित्सागर' का पूर्ण प्रभाव है।[१]

तिब्बतवाली कथा का खोतन की राम-कथा में पिछला अंश नहीं पाया जाता, शेष बातें समान रूप से दोनों में हैं। बौद्ध साहित्य का प्रभाव इस कथा पर स्पष्ट है, क्योंकि इसमें राम की चिकित्सा के हेतु बौद्ध वैद्य जीवक बुलाए जाते हैं तथा आहत रावण का वध नहीं किया जाता। समग्र कथा जातक-शैली की भाँति बुद्ध की आत्मकथा से आरम्भ होती है। इसमें सहस्रबाहु दशरथ का पुत्र है तथा उसके पुत्र राम-लक्ष्मण हैं, जिनकी माता उन्हें बारह वर्षों तक पृथ्वी में छिपा रखती है। सहस्रबाहु परशुराम के पिता की गाय चुराता है, जिसके अपराध में परशुराम उसे मार डालते हैं, इसका बदला राम पृथ्वी के बाहर होकर उसे मार-कर चुराते हैं। राम और लक्ष्मण दोनों ही सीता से विवाह करते हुए इस कथा में दिखाए गए हैं, जो इधर की प्रचलित बहुपतित्व-प्रथा के अनुसार है। इसमें बुद्ध बतलाते हैं कि राम-कथा के समय मैं स्वयं राम था और मात्रेय लक्ष्मण के रूप में थे। इसी हेतु खोतानी रामायण में अवतारवाद का संकेत नहीं मिलता। इस

१—देखिए श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत 'मानस की राम-कथा' पृ० ८६।

रामायण में जो अंश 'वाल्मीकि रामायण' के विपरीत मिलता है, उनमें से अनेक का आधार काश्मीरी 'रामायण' और 'महानाटक' में मिलता है।[१]

(२) इन्दोनेशिया—विद्वानों का अनुमान है कि राम-कथा का प्रसार इन्दोनेशिया में खोतान आदि देशों के पश्चात् हुआ है। वहाँ राम कथा का सर्व प्रथम पता, ईसा की नवीं शताब्दी में शैवों द्वारा निर्मित दो मन्दिरों में पाषाण चित्रलिपि के द्वारा लगता है। कहा जाता है, इन मन्दिरों से भी एक प्राचीन शिव मन्दिर मिलता है। जावा का राम-कथा सम्बन्धी साहित्य अधिकांश 'वाल्मीकि रामायण' से प्रभावित है और उसकी सबसे पुरातन रचना 'रामायण काकाविन' जो 'भट्टि काव्य' के अनुकरण में ही बनी है। इसके २६ सर्गों में 'भट्टिकाव्य' के २२ सर्गों की कथा अधिक विस्तारपूर्वक दी गयी है, जो इसके युद्ध-वर्णन में विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसकी कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं, जो सर्वथा मौलिक हैं; जैसे (शबरी अपनी कथा सुनाते हुए राम से कहती है—विष्णु ने बाराहावतार में मेरी माला खाई थी और जब वे मर गए थे तो मैंने उनके शव का भक्षण किया था, जिससे मेरा मुख काला हो गया है। इसलिए वह राम से अनुरोध करती है कि मेरा मुख पोंछ कर शुद्ध कर दीजिए।) एक अन्य प्रसंग पर इन्द्रजित् की सात पत्नियों की वर्णना मिलती है, जो सातों अपने पति के साथ राम से युद्ध करती हुई मारी जाती हैं। कहा जाता है यह 'काकाविन रामायण' किसी योगीश्वर कवि की रचना है। इसमें युद्ध काण्ड तक की ही कथा वर्णित है। उत्तर-काण्ड के आधार पर एक अलग 'उत्तर काण्ड, की रचना हुई है। इसी प्रकार जावा की आधुनिक रचना 'सेरत राम' भी वाल्मीकि रामायण की रचना का ही अनुवर्त्तन करती है। 'काकाविन रामायण' की रचना बारहवीं शताब्दी में हुई मानी जाती है। इसके प्रथम, नवीं शताब्दी में निर्मित परमवनं (मध्य जावा) स्थान के शिव मन्दिर की दीवारों पर 'रामायण' की समग्र घटनाएं पाषाण चित्र-लिपि में अंकित की गयी पायी जाती हैं, जो वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त 'महानाटक', 'सेतुबन्ध' 'बाल - रामायण' और 'उत्तर-राम-चरित' की कथाओं से

१—देखिए श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत 'मानस की राम कथा' पृ० ८७।

प्रभावित है। पूर्वी जावा के पनतरन स्थान के एक दूसरे शिव-मन्दिर में भी दीवारों पर राम-कथा पाषाण चित्र-लिपि में अंकित की गई मिलती है।

'काक्राविन रामायण' की परम्परा से भिन्न इन्दोनेशिया में उससे अर्वाचीन एक अन्य परम्परा भी मिलती है। इस परम्परा की महत्वपूर्ण रचनाएँ मलयदेश की 'हिकायत सेरी राम' और जावा की 'राम के लिंग' तथा 'सेरतकाण्ड' हैं। 'हिकायत सेरी राम' में रावण-चरित से लेकर सीता-त्याग तथा राम सीता-मिलन तक की कथा आती है। रावण-चरित में रावण अपने पिता द्वारा निर्वासित होकर सिंहलद्वीप जाता है और वहाँ पर तपस्या करके अल्लाह से चार लोकों में से एक का अधिकार प्राप्त करता है और वह लंकापुरी का निर्माण करता है। इस रचना में भी सीता का जन्म मन्दोदरी के गर्भ से ही हुआ वर्णित है और वह इसमें भी अशुभ जन्म के कारण समुद्र में फेंक दी जाती हैं। राम का वन-वास इसमें दशरथ की पत्नी बलियादरी के आग्रह पर हुआ वर्णित है। इसमें राम पद-त्याग बड़ी प्रसन्नता से कर देते हैं। अंजनी इसमें गौतम की पुत्री मानी गयी है, बालि और सुग्रीव इसके पुत्र। इसमें राम के वीर्य से हनुमान की उत्पत्ति मानी गयी है। जावा के 'सेरत काण्ड' की कथा के आरंभ में नवी अदम की कथा की एक लम्बी भूमिका मिलती है, जिसमें जावा के पुराने राजवंशों की सूची भी है। उस वंशाली में भारतीय अनेक देवताओं की कथा भी मिलती है, इसमें रावण द्वारा विष्णु के पराजित होने तथा पुनः उनके अवतारों के साथ रावण के युद्ध करने की कथा का वर्णन आता है। विष्णु, वासुकी तथा श्री, रावण के भय से भागकर दशरथ के यहाँ जाते हैं और प्रथम दो उनके पुत्र बन जाते हैं और श्री अपने को एक अण्डे में बदल देती है, रावण उस अण्डे को खा डालता है जिसके कारण श्री मन्दोदरी के गर्भ से सीता के रूप में पैदा होती हैं। राम-कथा के अन्तिम भाग में कहा गया है कि सीता का केवल एक पुत्र 'बुतलव' नाम का था, जिसे राम ने राज्य भार सौंप दिया और एक अनल नामक वानर के अपने को अग्नि-रूप में बदल देने पर उसमें प्रवेश कर राम, सीता, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव इत्यादि भस्म हो गए। मात्र हनुमान उसमें न जले।[१]

१—दे० श्रीपरशुराम चतुर्वेदीजी कृत 'मानस की राम-कथा पृ० ८८ ८९।

(३) इन्डोचीन, श्याम और मल्य देश—विद्वानों का अनुमान है कि ईसा की पहली शताब्दी से ही इन्डोचीन में भारतीय व्यवसायी यहाँ की संस्कृति का प्रसार और प्रचार करने लगे थे। चम्पा राज्य की स्थापना हो चुकने पर वहाँ जो शिलालेख सातवीं शताब्दी में लिखे गये, उनसे ज्ञात होता है कि वाल्मीकि रामायण का तब तक वहाँ प्रचार हो गया होगा, जिससे वहाँ के एक मन्दिर में 'विष्णु के अवतार' वाल्मीकि मुनि की मूर्ति का स्थापन होना संभव हुआ होगा। वहाँ के 'अनाम' प्रदेश में प्राप्त हुए अठारहवीं शताब्दी के एक रामायण ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उसकी रचना वाल्मीकि रामायण की रचना के आधार पर हुई। जो अन्तर है, वह केवल यह कि दशानन का राज्य अनाम के दक्षिण भाग में माना गया है और दशरथ का राज्य उसके उत्तरी भाग में। दशरथ के राज्य पर उसके अनुसार रावण चढ़ाई करता है और जानकी का हरण करता है। इसी प्रकार कम्बोडिया की ख्मेर भाषा में जो 'रेआमकेर' रामायण प्राप्त होती है, वह भी वाल्मीक रामायण से प्रभावित है। इसके अनुसार सीता जनक की दत्तक-पुत्री है और वह त्याग दिए जाने पर वाल्मीकि मुनि के आश्रम पर रहने लगती है। जनक सीता को यमुना के तट पर हल चलाते समय एक बेड़े पर पाते हैं। सीता-हरण के पश्चात् जटायु को रावण सीता की अंगूठी से आहत करता है। सीता के त्याग का कारण सीता के पंख पर रावण का अंकित चित्र है। अयोध्या लौटने से इन्कार करती हुई सीता का कथन है कि मैं राम की मृत्यु हो जाने पर ही वहाँ जाऊँगी। राम हनुमान द्वारा अपनी मृत्यु का समाचार सीता के पास भेजते हैं फिर उनकी चिता पर विलाप करती हुई वह उनके बहुत समझाने-बुझाने पर भी नागराज निरुण की शरण में चली जाती है।

श्याम की 'रामकियेन' रचना प्रायः 'रेआमकेर' पर ही आश्रित है। इसकी कुछ विशिष्ट कथाएँ इस प्रकार हैं—शूर्पणखा के पुत्र का वध लक्ष्मण ने किया है, लक्ष्मण और हनुमान का युद्ध होता है। सेतुबंध के प्रथम रावण राम के पास तपस्वी का रूप धर कर जाता है, महीरावण राम को पाताल ले जाता है, हनुमान कुमारियों के साथ प्रेमलीला प्रदर्शित करते हैं। श्याम की

लाग्रो भाषा में 'राम जातक' नामक एक ग्रन्थ भी मिलता है, जिसमें राम और रावण चचेरे भाई माने गए हैं तथा राम की अपनी एक बहन शान्ता और भाई लक्ष्मण हैं। राम यहाँ पर सीता की खोज करते समय दो विवाह भी करते हैं, जिनमें से उनकी एक पत्नी बालि की विधवा स्त्री रहती है और अन्य बालि-सुग्रीव की बहन रहती है। अन्त में राम को बुद्ध का, रावण को देवदत्त का, दशरथ को शुद्धोदन का, लक्ष्मण को आनन्द का और सीता को भिक्षुणी का रूप कहा गया है। जो सर्वथा जातक शैली पर ही वर्णित है। श्याम में राम-नाटक भी प्रचलित है।

श्याम के राम-नाटकों का प्रभाव ब्रह्मदेश के राम-कथा साहित्य पर पड़ा है। कहा जाता है कि सन् १७६७ में ब्रह्मदेश के एक राजा ने श्याम देश की राजधानी पर चढ़ाई कर वहाँ अनेक लोगों को बन्दी बना लिया, जिनमें अनेक राम-नाटकों के अभिनेता भी थे, आजकल वहाँ का सर्वाधिक लोकप्रिय नाट्यग्रन्थ 'यामत्वे' है जो वस्तुतः एक राम-नाटक के ही रूप में वर्णित है। इसके अभिनेता मूल्यवान चेहरे पहनते हैं, जिनकी पूजा होने का प्रचलन है। इसकी कथा के अनुसार सीता-हरण के प्रथम गाम्बी (शूर्पणखा) मृग का रूप धारण कर राम को बहुत दूर तक बहका ले जाती है, अन्त में राम द्वारा आहत किये जाने पर अपना राक्षसी रूप प्रकट करती है[१]।

(४) अन्य पश्चिमी देशों में राम-कथा—पाश्चात्य यात्रियों एवं मिशनरियों की भारत-सम्बन्धी रचनाओं में भी राम-कथा सम्बन्धी सामग्री मिलती है, जिसका भी यहाँ राम-कथा के प्रत्लवन की दृष्टि से उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है।

भारतीय दश अवतारों की भाँति भारत के पश्चिमवाले सुमेर-निवासी—सुमेरियन —भी दश अवतार मानते हैं। विद्वानों का अनुमान है कि यहूदियों के नवें अवतार का नाम 'लामश' भारतीय पुराणों के रामः शब्द से मिलता-जुलता है। ईरान के अखामनी वंश के सम्राट् आर्यराम (अरियरन) का नाम भी इस 'राम' नाम का अवशेष है। इस प्रकार यूरोपीय मिशनरियों और यात्रियों की भारत-सम्बन्धी रचनाओं में राम-कथा-सम्बन्धी रचनाएँ निम्न-लिखित उल्लेखनीय हैं :—

१—देखिए बुल्के कृत-'राम-कथा' पृ० २४५।

१—जेसुइट मिशनरी जे० फेनिचियो द्वारा १६०६ में "लिब्रो डा सेटा" की रचना हुई, जिसमें दशावतार के वर्णन के अन्तर्गत दक्षिण में प्रचलित राम-कथा का एक विस्तृत वर्णन पाया जाता है। दशरथ के यज्ञ से सीता-अग्नि-परीक्षा के आरम्भ तक की कथा-वस्तु इसमें मिलती है। यद्यपि इसमें वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही वर्णन है, किन्तु अनेक स्थलों पर इस रामायण से इसमें कुछ भिन्नता भी है। जैसे—रावण-चरित्र का वर्णन अरण्य-काण्ड में किया गया है, अभिजा सीता की कथा और राम द्वारा स्वेच्छा से वन-गमन का वर्णन रामायण से सर्वथा भिन्न है।

२—ए० रोजेरियुस (डच ईस्ट कम्पनी के पादड़ी) की रचना 'दि ओपन-दोरे' (जिसका प्रकाशन १६५१ में माना जाता है) में अवतार-वर्णन के अन्तर्गत रावण-चरित्र से राम के अयोध्या लौटने तक की कथा का उल्लेख किया गया है, जो वाल्मीकि की कथा के अनुसार ही है।

३—पी० वलडेयुस (जो १६५८ से १६६४ ई० तक सिंहलद्वीप और दक्षिण भारत में रहे) की रचना 'आफगोडेरैय डर ओस्ट इंडिशेइडाइडेनन' (जो १६७२ मे प्रकाशित हुई थी) में रावण-चरित से राम स्वर्गारोहण तक की कथा का उल्लेख है, अग्नि-परीक्षा के अतिरिक्त सीता की अनेक और परीक्षाओं का इसमें उल्लेख है।

४—डा० ओ० डैप्पर की रचना 'असिया' उपर्युक्त ए० रोजेरियुस और पी० वलडेयुस की रचना के अनुसार ही है। इसका प्रकाशन हालैण्ड में १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था।

५—डेफ़रिया की स्पेनिश रचना "असियाँ पोतुगेसा" का प्रकाशन १६७४ में हुआ था इसकी राम कथा जे० फेनिचियो के अनुसार है। इसमें रावण के चित्र के कारण सीता-परित्याग का उल्लेख है।

६—'रलासियो डेस एरयर'—फ्रेञ्च भाषा की यह रचना संभवतः डे नोबिल के नोट्स के आधार पर लिखी जाने का विद्वानों ने अनुमान किया है। इसकी राम-कथा अति संक्षिप्त है, जिसमें धोबी के वृत्तान्त के कारण सीता परित्याग की कथा का उल्लेख है। फ्रेञ्च भाषा की दूसरी रचना "ला वान-दिलिटे डु बेंगाल" की राम कथा एक पुर्तगाली रचना के अनुसार है, जिसके रचयिता के संबंध में पता नहीं है।

७—पुर्त्तगाली वृत्तान्त—डा० कार्लेंड ने तीन पुर्त्तगाली रचनाओं का डच भाषा में भी अनुवाद कर पुर्त्तगाली और डच भाषाओं में प्रकाशन किया था, जिनमें से एक की राम-कथा में उत्तर काण्ड की कथा-वस्तु का उल्लेख है, दूसरी में सीता के अग्नि से उत्पत्ति का उल्लेख और तीसरी में राम-कथा का रलासियों डेस एरयर के अनुसार वर्णन है।

८—जे० वी० टावर्निये ने १६७६ ई० में प्रकाशित अपनी भारत यात्रा के वर्णन में एक संक्षिप्त राम-कथा का उल्लेख किया है।

९—एम० सोनेरा की रचना "वोयाज़ ओस इड ओरियण्टाल" १७८२ ई० में प्रकाशित हुई थी, जिसमें एक संक्षिप्त राम-कथा का उल्लेख है। इसके अनुसार राम १५ वर्ष की अवस्था में लक्ष्मण और सीता के साथ चित्रकूट में तपस्या करने जाते हैं।

१०—डे पोलिए की रचना "मिथोलोजी डेस इण्डू" १८०६ई० में पेरिस में प्रकाशित हुई थी, जिसमें राम-कथा का विस्तृत वर्णन है। डे पोलिए लखनऊ में (१८ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) विलियम जोन्स के भूतपूर्व पंडित से राम कथा सुने थे। इसमें राम-कथा की बहुत-सी ऐसी सामग्री मिलती है, जो वाल्मीकि रामायण की कथा से सर्वथा भिन्न है।

११—जे० ए० डुब्आ की प्रसिद्ध रचना "हिन्दु मैनर्स, कस्टम्स एंडसेरे-मोनिस, में संक्षिप्त राम-कथा का उल्लेख है, जो अनेक स्थलों पर वाल्मीकीय कथा से भिन्न है—जैसे कैकेयी राम से अनुरोध करती है कि वह भरत को राज्य पर अपना अधिकार प्रदान करें। हनुमान समुद्र की धारा पर चल कर समुद्र पार करते हैं आदि। इसके अतिरिक्त राम-कथा का पूर्ण-वर्णन न करनेवाली अर्थात् राम-कथा के किसी तत्व की ओर संकेत करनेवाली कुछ रचनाएँ और भी हैं, जिनके नाम हैं :—

'वोलेले गोज़' की रचना में सीताहरण और हनुमान के लंका से सीता को राम के पास ले आने का वृतान्त मिलता है। पी० एफ० विनजेनजा मरिया की रचना "इल वियाजियो अल इण्डिये ओरियण्टालि" रोम में (१६७२ ई० में प्रकाशित) सीता का जन्म लंका में माना गया है। चीगेनबाल्ग की रचना का अंग्रेजी अनुवाद १८६६ में मद्रास में प्रकाशित हुआ था। मूल जर्मन, जो

१८ वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखी गयी थी, केवल १८६७ ई० में प्रकाश में आ सकी। एन० मानुच्ची की "स्टोरिया डो मोगोर" (१६५३-१७०८) में धोबी के कारण सीता-त्याग का उल्लेख किया गया है और राम परमेश्वरी के पुत्र माने गए हैं। "लेट्स एडिफ़ियण्ट" जो जेसुइट मिशनरियों के पत्रों का संकलन माना जाता है और पेरिस में प्रकाशित किया गया है। १२ वें भाग (१७१८ ई०) में अग्निजा सीता का उल्लेख है, जिसमें उनका जन्म वृत्तान्त और शूर्पणखा-पुत्र-वध का एक नवीन रूप पाया जाता है—('राम-कथा' से उद्धृत।)

(५) रूसी रामायण—अकदमीशियन अलेक्सेइ पेत्रोविच वरान्नीकोव ने रूसी-पद्यानुवाद में रामायण की रचना उस समय की, जब द्वितीय महायुद्ध के समय फासिस्ट जर्मन ने रूस पर आक्रमण किया था। प्रोफेसर वरान्नीकोव शरणार्थी के रूपमें कज़ाकिस्तान में जाकर इसे पूरा किए[१]।—यह रामायण तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का अनुवाद है। इस ग्रन्थमें अनुवादक ने सैकड़ों पृष्ठों (भूमिका भाग) में विद्वतापूर्ण ढंगसे अनेक दृष्टियों से तुलसीदास और 'रामचरित मानस' पर विचार किया है, जिसके अध्याय नीचे दिये जाते हैं।

१—तुलसीदास का युग, २—तुलसीदास और उनकी कारयित्री प्रतिभा, ३—तुलसीदास की रामायण की कथा-वस्तु, ४—तुलसीदास की रामायण की प्रबन्धात्मकता, ५—तुलसीदास की कविता का विशिष्ट स्वरुप, ६—तुलसीदास के दार्शनिक विचार, ७—तुलसीदास के धार्मिक विचार ८—तुलसीदास के सामाजिक एवं नैतिक कथन, ९—तुलसीकृत रामायण—ऐतिहासिक स्तंभ के रूप में और १०—अनुवाद के स्वरूप के विषय में आदि-आदि[२]।

उपर्युक्त अध्यायों के शीर्षक से ही अनुवादक की सार-ग्राहिणी प्रवृत्ति एवं व्यापक सर्वांगीण मनोदृष्टि की झलक मिल जाती है। 'मानस' पर विचार करते हुए अनुवादक ने प्रत्येक महत्त्वपूर्ण तत्वों—युगसंस्कृति, कलापक्ष, भावपक्ष और भाषा-शैली आदि—पर गम्भीर विचार किया है, इस ग्रन्थ में तुलसीदास के युग संबंधी अध्याय मे विचार करते हुए लेखक ने देश (भारत) की राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक अस्तव्यस्तता का भी चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त

१—देखिए 'मानस की रूसी भूमिका' अनुवादक डा० श्रीकेसरीनारायण शुक्ल वक्तव्य पृ० ७। २—वही पृ० १०।

तुलसीदास की समस्त कृतियों से 'यथास्थान उदाहरण देते हुए अनुवादक ने स्पष्ट कर दिया है कि तुलसी-साहित्य का वह भली-भाँति अध्ययन कर चुका है। अभी तक विदेशी विद्वानों द्वारा तुलसीदास के साहित्य पर इतना महत्वपूर्ण प्रकाश नहीं डाला जा सका है। विदेशी विद्वानों द्वारा तुलसीदास के सम्बन्ध में सबसे पहले गार्सां द तासी द्वारा हिन्दुस्तानी के इतिहास में उल्लेख है; किन्तु वह प्रायः तुलसीदास के जीवन-वृत्त से ही संबंधित है तथा बहुत सीमित है। ग्रियर्सन ने अवश्य तुलसी सम्बन्धी अपनी खोजों पर विशेष प्रकाश डाला है और उनका यह कार्य भी बड़े महत्व का है, काव्य एवं दर्शन सम्बन्धी तथ्यों से परिपूर्ण होते हुए भी उसमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपेक्षाकृत कम है। इसी प्रकार ग्राउज़ ने भी राम-चरित-मानस के अंग्रेजी रूपान्तर की भूमिका में काव्य, दर्शन और लोकप्रियता अनेक विषयों पर विस्तारपूर्वक लिखा और जिसका भी स्वागत किया गया, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उसमें भी विवेचन उतना पूर्ण नहीं है, जितना कि वरान्निकोव की रचना में है। कारपेण्टर ने थीज़म इन मेडिवल इण्डिया में भक्ति की व्यापक भारती पृष्ठभूमि में तुलसीदास के दर्शन एवं भक्ति की गम्भीर विवेचना की है, किन्तु वह एकांगी होने से वरान्निकोव की रचना की समकक्षता में अपूर्ण भी जान पड़ती है। कीज़ एवं केई ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में तुलसीदास की लोकप्रियता का संकेत किया है, किन्तु इन दोनों लेखकों का इतिहास भी बहुत संक्षिप्त है, जिससे तुलसीदास के सम्बन्ध में भी वे विस्तारपूर्वक कोई विवरण न उपस्थित कर सके। आधुनिक समय में हिलने 'मानस' के अंग्रेजी रूपान्तर की भूमिका में उसके अनेक पक्षों पर विचार किया है तथा तुलसी के जीवन-वृत्त पर भी प्रकाश डाला है। उपर्युक्त लेखकों में हिल का विवेचन सबसे अधिक गंभीर व्यापक एवं विद्वतापूर्ण है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण उनका भी संकुचित है।

यद्यपि उपर्युक्त विद्वानों के भी प्रयत्न बड़े महत्व के हैं, उनकी महनीयता इन्कारी नहीं जा सकती; किन्तु वरान्निकोव की भूमिका इन सबसे विशेष महत्वपूर्ण है।[१] अतः यह 'मानस' का रूसी भाषा में सफल अनुवाद है।

१—'मानस-रूसी-भूमिका' अनु० डा० श्रीकेसरीनारायणशुक्ल-(वक्तव्य) पृ०१६।

तृतीय-खण्ड

राम-कथा और तुलसीदास

१—तुलसी की राम-कथा का संगठन

राम-कथा, जो विभिन्न रायणों में वर्णित है, वह अत्यन्त साधारण-सी लगती है, जो संक्षेप में इस प्रकार है:—

अयोध्याधिपति महाराज दशरथ के तीन रानियां थीं, किन्तु किसी भी रानी से कोई सन्तान न थी। वृद्धावस्था में कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी आदि रानियों से राम, भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र हुए। राम सबसे बड़े थे, राम का विवाह महात्मा जनक की पुत्री सीता से होता है। कुछ समय के पश्चात् महाराज दशरथ अयोध्या के राज्य पर राम का राज्याभिषेक करना चाहते हैं, किन्तु कैकेयी द्वारा विघ्न पड़ जाता है, राम वन चले जाते हैं, उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी वन को प्रस्थान करते हैं, राम के स्थान पर कैकेयी भरत का अभिषेक कराना चाहती है; किन्तु भरत इसे स्वीकार नहीं करते। अन्त में राम के समझाने पर वे मान जाते हैं। राक्षसों का राजा रावण सीता को हर लेता है। सीता की खोज करते हुए राम वानरों के राजा सुग्रीव के मित्र बन जाते हैं और सुग्रीव की सहायता से वे लंका पर चढ़ाई कर देते हैं। राक्षसों का संहारकर राम सीता को पुनः प्राप्त कर भाई लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौट आते हैं। अयोध्या के राज्य पर उनका अभिषेक होता है और वे राज करने लगते हैं।

किन्तु इस कथा को लेकर विशेष-विशेष दृष्टिकोणों से विशेष-विशेष भाव ग्रहण किए गए। हिन्दू राम-कथा में राम विष्णु के महत्वपूर्ण अवतार हैं, अतः उसमें भक्ति-भावना की छाप है। बौद्ध-साहित्य में राम-कथा के अन्तर्गत, राम बोधिसत्व के रूप में देखे जाते हैं, अतः उनके चरित्र में सत्य, शील, की प्रतिष्ठा कर उन्हें बुद्ध की कोटि में पहुँचाने की चेष्टा है। जैन-राम-कथा के अन्तर्गत राम का व्यक्तित्व एक ऐसे महनीय पुरुष के रूप में वर्णित है, जो इस सम्प्रदाय के अन्तिम लक्ष्य—(जैनधर्म में दीक्षित हो) मुक्ति का अधिकारी होता है। हिन्दू-राम-कथा में यत्र-तत्र कर्मकाण्ड और वर्णाश्रम-धर्म के कारण आचार-व्यवहार की विशेष प्रणाली द्वारा राम के जीवन की विभिन्न घटनाओं से दार्शनिक, धार्मिक

नैतिक एवं मर्यादित तत्वों की अभिव्यक्ति करती हुई राम के स्वरूप के विकास को प्रतिबिम्बित कर रही है।

बौद्ध और जैन राम-कथाओं में श्रमण-परम्परा का प्रभाव लक्षित होता है। इसके सिवाय धार्मिक मत-भेद के कारण राम-कथा के भिन्न गौण पात्रों और प्रासंगिक घटनाओं के संयोजन में हिन्दू-राम-कथा से बौद्ध-जैन-राम-कथाओं में अन्तर आ गया है। हिन्दू-राम-कथा में कल्पित अंशों में जहाँ ऋषि, मुनि, बन्दर, ऋक्ष तथा राक्षस आदि के कार्य अपने निजी ढंग के दिखलाए गए हैं, वहाँ बौद्ध-जैन राम-कथाओं में इस प्रकार के कोई भेद-भाव नहीं हैं। यहाँ तो सभी (राम-कथा के) पात्रों को साधारण मानव-कोटि में ही प्रदर्शित किया गया है। इन तीनों परम्पराओं के कारण, राम-कथा की साधारण विवरण संबंधी बातों में भी कुछ न कुछ अन्तर आया हुआ जान पड़ता है। हिन्दू-राम-कथा में राम अयोध्यापति महाराज दशरथ के पुत्र हैं और वे वनवास के समय दण्डक वन की ओर दक्षिण दिशा में जाते हैं, किन्तु बौद्ध राम-कथा का प्राचीन रूप राम के पिता को वाराणसी का राजा मानकर चलता है, उसमें राम घर छोड़ कर हिमालय की ओर जाते हैं। दक्षिण की यात्रा में, सीता-हरण के कारण राम को अनेक युद्ध भी करने पड़ते हैं, किन्तु उस प्राचीन कथा में इन बातों का उल्लेख नहीं मिलता। बौद्ध राम-कथा पिछले रूपों में और जैन राम-कथा में इन बातों का अपने ढंग से समावेश हुआ है। वाराणसी का वर्णन महाराज दशरथ की राजधानी के रूप में बौद्ध और जैन दोनों परम्पराएँ करती हैं। बौद्ध राम-कथा की कुछ ऐसी भी परम्पराएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें राम सीता आदि अनेक महत्वपूर्ण पात्रों के नाम भी नहीं आते। प्रायः सभी नाम विचित्र से लगते हैं, किन्तु इसमें आए हुए पात्रों के विविध कार्यों एवं घटनाओं के वर्णन ऐसे हैं, जो राम-कथा के ही समान हैं।

देश-विदेश में उपलब्ध समग्र राम-कथाओं में गोस्वामी तुलसीदास कृत 'राम चरित-मानस' का स्थान सर्वोपरि है। इसे प्रायः सभी विद्वान मानते आ रहे हैं। इस स्थल पर तुलसीदास की राम-कथा के संगठन के संबंध में विचार कर लेना ठीक होगा।

गोस्वामी तुलसीदास ने राम-चरित-मानस के प्रारम्भ में ही लिखा है कि—

"नाना पुराण निगमागम संमतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—
भाषा निबन्धमति मंजुलमातनोति ॥"

अर्थात् अनेक पुराण, वेद और (तन्त्र) शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्रीरघुनाथजी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा रचना में विस्तृत करता है अतः इस उक्ति के आधार पर राम-कथा का स्वरूप 'मानस' में इस प्रकार दिखायी पड़ता है :—

शिव द्वारा रची गयी राम-कथा (जिसे रचने के पश्चात् शिव ने अपने मानस में रख छोड़ा और समय पाकर पुनः शिवा अर्थात् पार्वती से कही और परंपरागत वही कथा कालान्तर में याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज ऋषि को सुनाई) अपने गुरु द्वारा तुलसीदास सुनकर अपनी स्मृति के आधार और अनेक ग्रन्थों से लेकर भाषा रचना में प्रस्तुत कर रहे की घोषणा करते हैं। प्रारम्भ में उमा के मन में होनेवाले संदेहों का वर्णन है। उमा को राम के सम्बन्ध में यह सन्देह हुआ कि वे परब्रह्म हैं, अथवा नहीं। वे इस बात की परीक्षा करती हैं, जिससे उन्हें विश्वास तो कुछ-कुछ हुआ, किन्तु सीता का रूप धारण करने के कारण उन्हें शिव त्याग देते हैं और वे अपने पिता के घर जाकर मृत्यु को प्राप्त हो गयीं। दूसरे जन्म में राजा हिमालय की पुत्री—पार्वती के रूप में जन्म लेती हैं और पुनः शिव को पति-रूप में वरण करने के लिए घोर तप करती हैं। ठीक इस समय त्रैलोक्य-विजयी राक्षस तारक देवताओं को सन्तप्त करता दिखाया गया है। देवगण ब्रह्मा से सहायता चाहते हैं। उन्हें बताया जाता है कि तारक शिव से उत्पन्न पुत्र द्वारा ही पराजित किया जा सकता है और किसी से वह नहीं हार सकता। देवगण समाधिस्थ, पवित्र अन्तःकरण शिव के पास उन्हें काम से क्षुभित करने के लिए कामदेव को भेजते हैं। वह शिव को क्षुभित करने की चेष्टा करता है, जब शिव का ध्यान भंग हुआ, तब वे क्रुद्ध होकर अपनी दृष्टि से उसे भस्म कर देते हैं तथा कामदेव की पत्नी रति को वरदान देकर शिव उसे सन्तुष्ट करते हैं।

इधर पितामह ब्रह्मा सब देवताओं की ओर से पार्वती का पाणिग्रहण करने के लिए शिव से प्रार्थना करते हैं। इसे शिव मान लेते हैं और पर्वतराज हिमालय के यहाँ बड़ी धूमधाम के साथ पार्वती का शिव से विवाह होता है। कुछ समय व्यतीत होने पर शिव-पार्वती का राम-कथा सम्बन्धी वार्तालाप होता है, जिसमें शिव-राम-कथा कहने के ही प्रसंग में उनके यथार्थ स्वरूप का भी वर्णन करते हैं। राम परमब्रह्म परमेश्वर हैं, वे भक्तों की भलाई के लिए समय-समय पर अवतार लिया करते हैं। उनके अवतार के अनेक कारणों में एक कारण नारद का शाप है, दूसरा कारण मनु और शतरूपा को पुत्ररूप में पैदा होने का दिया गया वरदान है, तीसरा कारण राजा भानुप्रताप के पतन पर परिवार सहित राक्षस हो जाने और स्वयं भानुप्रताप का त्रैलोक्य-विजयी राक्षस-राज रावण के रूप में पैदा होने और घोर तप द्वारा वानर और मनुष्य को छोड़ अन्य से अवध्यता का वरदान ब्रह्मा द्वारा प्राप्त होने का है, जिसे राम मारते हैं।

राक्षसराज रावण मन्दोदरी से विवाह कर लंका में बस जाता है, वहाँ वह अत्यन्त दुर्गम दुर्ग बना देवताओं को अपने झण्डे के नीचे कर लेने का निश्चय करता है, जिससे यज्ञादि कर्म बन्द करा देता है। देवता दुरात्मा रावण के भय से भाग कर पहाड़ों की गुफाओं में अपना प्राण बचाते हैं। सारे संसार के मनुष्य रावण की दुष्टता से अत्यन्त त्रस्त हो उठते हैं, क्योंकि वहाँ तहाँ, गाँव-गाँव को वह फूँक कर ब्राह्मणों और गायों को अग्नि में झोंक देता है। दिन-प्रति दिन रावण के बढ़ते हुए अत्याचारों से पृथ्वी अत्यन्त दुःखी हो जाती है और अत्यन्त दीनता के साथ वह देवताओं के पास जाती है। देवताओं के साथ शिव और ब्रह्मा विष्णु से बड़ी विनम्रता पूर्वक प्रार्थना करते हैं। विष्णु भगवान राजा दशरथ के यहाँ रावण-वध करने की प्रतिज्ञा कर अवतार लेने का वचन देते हैं। उधर अयोध्यापति महाराज दशरथ पुत्रेष्टि-यज्ञ करते हैं। और समय पाकर बड़ी रानी कौशल्या से राम का अवतार उनके यहाँ होता है, उनके अंश के तीनों भाई भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी कैकेयी और सुमित्रा के गर्भ से पैदा होते हैं। राम की बाललीला का वर्णन और विश्वामित्रद्वारा अयोध्या-गमन, राम का विवाह, उनके राज्याभिषेक का प्रसंग, राजा दशरथ के वचन से

ही राज्याभिषेक में विघ्न पड़ना, नगर-निवासियों का विरह-विषाद, राम का वन-गमन, केवट का प्रेम, गङ्गा पार कर प्रयाग में निवास, वाल्मीकि आश्रम पर सीता लक्ष्मण सहित राम का स्वागत, चित्रकूट में निवास, फिर सुमन्त्र का राम-लक्ष्मण-सीता को पहुँचा कर लौटना, राजा दशरथ का मरण, भरत का ननिहाल से अयोध्या में आना, राजा दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया करके नगर-निवासियों को साथ लेकर भरत का राम को लौटाने के लिए चित्रकूट जाना, राम के समझाने पर उनकी पादुका लेकर राज्य सँभालने के लिए नगर-वासियों के साथ भरत का अयोध्या लौटना, भरत के नन्दिग्राम में बसकर शासन का भार सँभालना, इन्द्र-पुत्र जयन्त की कथा और राम-अत्रि ऋषि के मिलाप का वर्णन, विराध का वध, शरभंग ऋषि के शरीर-त्याग की कथा, सुतीक्ष्ण के प्रेम का वर्णन करते हुए अगस्त्य ऋषि के साथ राम के सत्संग का वर्णन, दण्डकारण्य जाकर राम ने उसे जिस प्रकार शाप-मुक्त किया और गृद्धराज जटायु की राम से मित्रता का वर्णन, राम के पंचवटी के निवास का वर्णन, वहाँ ऋषियों को निर्भय करते हुए लक्ष्मण को ज्ञान-वैराग्य का अनुपम उपदेश दिया जाना और शूर्पणखा के चेहरे की विकृति की कथा और खर एवं दूषण राक्षसों के साथ चौदह सहस्र राक्षसों के वध की कथा का वर्णन और रावण को इन बातों के समाचार पाने की कथा का वर्णन मानस में तुलसीदास करते हैं। इसके आगे रावण और मारीच की बात-चीत, माया-सीता का हरण, राम के विरह का वर्णन, राम के द्वारा जटायु की क्रिया करने का वर्णन, कबन्ध का वधकर शबरी के परगति का वर्णन, राम के वियोग-वर्णन और उनके पंपासरतीर पर जाने की कथा का वर्णन, नारद-राम-संवाद, मारुतनन्दन हनुमान के मिलने का प्रसंग, सुग्रीव की मित्रता, बालि-वध का प्रसंग, सुग्रीव के राज्याभिषेक का वर्णन, राम-लक्ष्मण के प्रवर्षण पर्वत पर निवास करने की कथा, वर्षा,शरद ऋतु का वर्णन, राम का सुग्रीव पर रोष और सुग्रीव के भयभीत होने की कथा, जानकी की खोज में सुग्रीव द्वारा वानरों के दिशा-विदिशा में भेजे जाने का वर्णन, स्वयंप्रभा के विवर में वानरों के प्रवेश, संपाती गृद्ध का वानरों से मिलन आदि की कथा का वर्णन; संपाती के मुख से सीता का पता पाकर जीव जन्तुओं से संकुलित अपार सागर का हनुमान द्वारा शीघ्रत से पार कर लंका में प्रवेशकर जानकी को ढूढ़ने और उन्हें धैर्य

देने की कथा, हनुमान द्वारा अशोक वन को उजाड़ने, लंका को जलाकर भस्म करने और पुनः समुद्र लाँघकर सब साथी बानरों के साथ हनुमान का राम के समीप लौटने का वर्णन, जिस प्रकार सेना के साथ राम समुद्र के किनारे पहुँचे, राम से आकर विभीषण मिला और समुद्र के बाँधने की बातचीत का वर्णन, सेतुबन्ध, राम-लक्ष्मण का बानरी सेना के साथ समुद्र पार करना अंगद का दूत-कर्म, बानर-राक्षसों का युद्ध, कुम्भकर्ण, मेघनादादि के बल, पुरुषार्थ, और संहार की कथा, राक्षस गणों के मरण का वर्णन, राम और रावण के अप्रतिम युद्ध का वर्णन. रावण के वध की कथा. मन्दोदरी के शोक का वर्णन, विभीषण-राज्याभिषेक की कथा, राम और सीता के मिलन की कथा, देवताओं द्वारा राम और सीता की की गयी स्तुति का वर्णन, पुष्पक विमान द्वारा प्रमुख बानरों, विभीषण और सीता-लक्ष्मण के साथ वनवास की अवधि बिताकर राम का अयोध्या के लिए प्रस्थान का वर्णन, राम के राज्याभिषेक की कथा और राम की राजनीति का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास ने अपने मानस' में किया है। इस कथा के पश्चात् कवि राम-कथा के मर्म को समझने के लिए काकभुशुण्डि और गरुड़ का एक और संवाद वर्णित करता है। उमा से शिव जब कहते हैं कि हे प्रिये, मैंने तुम्हें राम की वह सारी कथा सुना दी, जिसे भुशुण्डि ने पक्षिराज गरुड़ को सुनाया था, तब उमा शिव से पूछती हैं कि कौवे ने राम से भक्ति का महान वर किस प्रकार पाया और अपवित्र कौवे का शरीर उसे कैसे मिल गया, क्योंकि वह तो बड़ा ही ज्ञानी था। इस पर शिव पार्वती से बोले हे प्रिये! तुम्हारे पूर्व जन्म में जब तुम्हारा 'सती' नाम था, तब तुम्हारी मृत्यु से मुझे बड़ा दुःख हुआ और तुम्हारे वियोग से दुःखी हो मैं संसार में घूमता रहा। इस सिलसिले में मैं सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में और दूर चला गया, वहाँ मैं बहुत ही सुन्दर नील पर्वत पर पहुँचा। उस पर्वत के स्वर्णमय शिखर हैं, जिनमें से चार सुन्दर शिखर मुझे बहुत ही अच्छे लगे। उन शिखरों में एक-एक पर बरगद, पीपल, पाकर तथा आम का एक-एक विशाल वृक्ष है। पर्वत के ऊपर एक सुन्दर तालाब शोभित है, जिसकी मणियों की सीढ़ियाँ देखकर मन मुग्ध हो जाता है उस तालाब का जल मधुर, शीतल और अत्यन्त स्वच्छ है, उसमें रंग-बिरंगे कमल पाए जाते हैं, उस तालाब में हंसगण रहा करते हैं, उस सुन्दर पर्वत पर काक-

भुशुण्डि रहता है, जिसका नाश महा-प्रलय (कल्प के अन्त) में भी नहीं होता। माया रचित गुण-दोष, काम आदि अविवेक जो समग्र संसार में व्याप्त हैं, उसके निकट नहीं फटकते। वहाँ रहकर काकभुशुण्डि पीपल-वृक्ष के नीचे ध्यान धरता है, पाकर के नीचे जप-यज्ञ, आम के नीचे मानसिक पूजाकर बरगद के नीचे भगवान राम की कथा कहा करता है, जिसे सुनने के लिए अनेक पक्षी आया करते हैं। जब आनन्द देनेवाले उस स्थान पर मैं गया, तो मुझे बड़ा ही आनन्द आया और हंस पक्षी का रूप धारण कर कुछ समय तक मैं वहाँ राम की कथा सुनता रहा। कुछ समय के पश्चात् मैं कैलाश लौट आया। इसी प्रसंग में गरुड़ को, जिन्हें राम के ईश्वरत्व में सन्देह था, और सर्वत्र अपना सन्देह मिटाने के लिए दौड़ चुके थे, शिव ने काकभुशुण्डि के पास राम-कथा सुनने के लिए भेजा। राम-कथा सुन चुकने के पश्चात् गरुड़ पूछते हैं कि प्रभो! आपको कौवे का शरीर कैसे प्राप्त हो गया? काकभुशुण्डि इस पर अपने अनेक जन्मों की कथा सुनाते हैं और अपने ऊपर लोमश ऋषि के क्रोध द्वारा श्राप और वरदान की भी कथा सुनाते हैं। इसके पश्चात् पुनः काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद में आत्मा, माया, ज्ञान और भक्ति सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण विषयों की सुन्दर विवेचना करते हुए कवि राम-कथा का विस्तार अपनी रचना में समाप्त करता है।

गोस्वामी तुलसीदास की रचना में राम-चरित के माध्यम से दार्शनिक, धार्मिक और सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक अभिव्यंजना की महान चेष्टा की गयी है।

राम-कथा की अनेक रूपात्मक सामग्री काव्य-शास्त्र के सम्पूर्ण कलात्मक विशेषताओं से समन्वित होकर संग्रथित होती है। तुलसीदास द्वारा रची गयी रामायण में आदि-काव्य (वाल्मीकि रामायण) की अपेक्षा राम-कथा सम्बन्धी अनेक कथाएँ जो दी गयी हैं, वे राम-कथा के महत्व को और भी बढ़ाने में सहायक होती हैं। परब्रह्म परमेश्वर राम के अवतार ग्रहण करने के लिए जो व्याख्या की गयी है, उसमें तीन कथाएं मुख्य हैं, जो आदि-काव्य में नहीं पाई जातीं। १—देवर्षि नारद की कथा; जिसमें दिखलाया गया है कि वह भगवान श्रीहरि को श्राप देते हैं और उनके श्राप के सहन करने के उद्देश्य से राम का अवतार होता है। २—राजा भानुप्रताप की कथा; जिसमें वह अपने कर्तव्य के अनुसार घोर राक्षस होकर महाशक्तिशाली रावण होता है, जिसके

उद्धार के लिए राम को अवतार लेना पड़ता है। ३—आदि पूर्वज महाराजा मनु और उनकी पत्नी शतरूपा के घोर तप से प्रसन्न हो उनके पुत्र के रूप में राम को अवतरित होने की कथा है। इसके अतिरिक्त काकभुशुण्डि की कथा के समावेश का उद्देश्य सारी राम-कथा की दार्शनिक व्याख्या एवं गुप्त रहस्यों और तत्वों के उद्घाटन के लिए है। काव्य के प्रबन्धात्मक स्वरूप-संगठन में और भावाभिव्यंजना के विभिन्न काव्यात्मक साधनों के कौशलपूर्ण उत्कृष्ट प्रयोगों में कवि को बड़ी सफलता मिली है। कहीं-कहीं कथानायकों (छोटी-छोटी कथाओं के नायकों) का नाम प्रसंगानुसार लेकर कवि सूत्रात्मक ढग से उनकी भी कथाओं को रामचरित में सम्मिलित कर देता है, जैसे शिवि, दधीचि, बलि, हरिश्चन्द्र, परशुराम, नहुष, गालव, सगर, ययाति, रन्तिदेव, शबरी और अजामिल आदि की अन्तर्कथाएँ ऐसी ही सामग्री हैं।

२—'रामचरित-मानस' के आधार-ग्रन्थ

अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में जिस राम-कथा की उत्पत्ति हुई और देश-विदेश में जिसका पल्लवन हुआ उस राम-कथा सम्बन्धी समग्र रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ तुलसीदास की कृति 'राम-चरित-मानस' की रचना किन-किन ग्रन्थों के आधार पर हुई, इसका थोड़ा विचार कर लेना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। 'मानस' का प्रधान आधार 'अध्यात्म रामायण' है, क्योंकि इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक विचारों एवं कथानक के दृष्टिकोण से इसका प्रभाव अधिक है। किन्तु 'मानस' की कथाएँ जो विभिन्न रचनाओं से ग्रहण की गयी हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

शिव ने अपने मानस में राम-कथा की रचनाकर रख छोड़ा और समय पाकर पार्वती को सुनाया। यह कथा 'महारामायण', 'रामायणमहामाला' के समान है।

शीलनिधि राजा के यहाँ स्वयंवर की कथा, 'रामायण चम्पू' के समान, नारद-मोह-वर्णन 'शिवमहापुराण' के सृष्टि-खण्ड (अध्याय ३--४) के समान, रावण-कुम्भकर्ण-अवतार 'भागतमहापुराण', 'शिवमहापुराण' और 'आनन्द-रामायण' के समान उल्लिखित है। प्रतापभानु--अरिमर्दन और धर्मरुचि के रावण-कुम्भकर्ण और विभीषण होने की कथा 'अगस्त्यरामायण' और 'मंजुल रामायण' के अनुसार वर्णित है। मनु-शतरूपा की तपस्या, पूर्णब्रह्म से पुत्र रूप में अवतरित होने का वरदान 'संवृत-रामायण' के अनुसार, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओं की विष्णु से अवतार की प्रार्थना, पायस प्राप्तकर रानियों में वितरण, देवताओं का वानर आदि योनियों में जन्म, राम का अपनी माता को विराट रूप दिखाना तथा उनकी बाललीलाओं का कुछ वर्णन, विश्वामित्र-आगमन, राम-लक्ष्मण की यज्ञ-रक्षा के लिए याचना-वर्णन 'अध्यात्म-रामायण' के अनुसार गोस्वामीजी ने किया है। अहल्योद्धार-वर्णन 'नृसिंह-पुराण' 'स्कन्द पुराण', 'पद्म पुराण', 'आनन्द रामायण' और 'रघुवंश' के अनुसार, गिरिजा-पूजन, सीता-राम के पारस्परिक आकर्षण का वर्णन, राम विवाह 'जानकी-हरण' और 'स्वायम्भुव रामायण' के अनुसार, परशुराम-प्रकरण 'महावीर-चरित', 'बाल-रामायण', 'प्रसन्नराघव' और 'महानाटक' के अनुसार वर्णित है। राम-राज्याभिषेक की तैयारी, वशिष्ठ-राम-वार्तालाप, राज्याभिषेक में विघ्न और राम-वन-गमन 'अध्यात्म-रामायण' के अनुसार, कैकेयी का दोष सरस्वती के ऊपर होने का वर्णन 'आदन्द-रामायण' के अनुसार, राम-वन-गमन के प्रसंग में केवट-संवाद 'चान्द्र-रामायण', 'अध्यात्म रामायण' और 'आनन्द-रामायण' के अनुसार, राम के चरण-धोने का वर्णन 'सूर-सागर' के अनुसार; प्रयाग-माहात्म्य, भरद्वाज-पहुनाई 'सुब्रह्म रामायण' और 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार, ग्राम वधूटी-स्नेह कथन और उनका पश्चात्ताप-वर्णन 'सौपद्म-रामायण' के अनुसार, वाल्मीकि-मिलन और चित्रकूट-निवास वर्णन, 'रामायण मणिरत्न' और 'आध्यात्म-रामायण' के अनुसार, सुमन्त्र के अयोध्या लौटने, उनका विलाप, दशरथ-मरण 'अध्यात्म-रामायण' के; भरत-महिमा, भरत-शपथ, भरत-विलाप, राम को लौटाने की तत्परता, निषाद-रोष, निषाद-भरत संवाद और लक्ष्मण रोष आदि कथाएँ 'दुरन्द रामायण' के अनुसार हैं। भरत-चित्रकूट-यात्रा 'अध्यात्म-

रामायण' के, जनक-चित्रकूट-आगमन 'श्रवण-रामायण' के, भरत के पादुका लेकर नन्दिग्राम में रहने का वर्णन, 'अध्यात्म-रामायण' के अनुसार, जयन्त की कथा 'देवरामायण' के अनुसार, अत्रि-राम-मिलन, अनुसुइया और सीता-संवाद, नारी-धर्म-निरूपण 'रामायण मणिरत्न' के अनुसार, विराध-वध, शरभंग का शरीर-त्याग, सुतीक्ष्ण का प्रेम, राम-अगस्त्य-मिलन 'अध्यात्म-रामायण' के अनुसार, दण्डकारण्य पवित्र करते हुए पंचवटी-आगमन और निवास की कथा 'वाल्मीकि-रामायण के अनुसार और गृद्धराज जटायु की मित्रता, लक्ष्मण को उपदेश, शूर्पणखा को दण्ड, खर-दूषण-वध, शूर्पणखा का रावण के पास आगमन, राम का मर्म समझने और रावण-मारीच-संवाद, सीता-अग्नि-प्रवेश, मायामयी सीता की रचना, रावण द्वारा सीता-हरण और मारीच-वध 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार है। सीता-विलाप, जटायु-सहायता, उसके मुक्ति का वर्णन, कबन्ध-वध, राम की शबरी से भेंट, नवधा-भक्ति-वर्णन 'मंजुल रामायण' के अनुसार, शबरी की मुक्ति और पम्पासर-गमन की कथा 'अध्यात्म-रामायण' के अनुसार है। राम-नारद-संवाद 'सौ पद्य रामायण' के अनुसार, राम-हनुमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, बालि-वध सुग्रीव-राज्याभिषेक, राम-लक्ष्मण का प्रवर्षण-निवास, सुग्रीव द्वारा वानरों का सीता की खोज के लिए भेजा जाना, विवर-प्रवेश और सम्पाति-मिलन 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार समुद्रतीर पर अंगद-विलाप, वानरों का संभाषण 'दुरन्त-रामायण' के अनुसार, समुद्र संतरण, लंका-प्रवेश, सीता को धैर्य प्रदान, वन-उजाड़ना, लंका विध्वंस और वहाँ से वापस लौटकर सीता का सन्देश राम से कथन 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार, सेना-सहित जिस प्रकार राम समुद्र के किनारे आए, सेतु-बन्ध, विभीषण-मिलन, उनका अभिषेक 'अध्यात्म-रामायण' के अनुसार, मन्दोदरी का समझाना 'सुवर्चस रामायण' के अनुसार, अंगद का दूत कार्य 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार, राक्षस-वानर-संग्राम, कुम्भकर्ण-वध, मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण को शक्ति लगने, हनुमान द्वारा संजीवनी लाने, उपचार और उनके स्वस्थ होने की कथा 'अध्यात्म-रामायण' और 'सुवर्चस-रामायण' के अनुसार, मेघनाद-वध, रावण-यज्ञ-विध्वंस, राम-रावण युद्ध, रावण के नाभि-प्रदेश में अमृत, रावण-वध, विभीषण-राज्याभिषेक, सीता-अग्नि-

परीक्षा 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार, वेद, शिव, इन्द्र और ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति 'रामायण मणिरत्न' के अनुसार, पुष्पकारूढ़ राम का लक्ष्मण-सीता सहित प्रमुख वानरों के साथ अयोध्यागमन, राज्याभिषेक, अनेक प्रकार की नृप-नीति का वर्णन 'अध्यात्म रामायण' के अनुसार, काकभुशुण्डि और गरुड़ की कथा, भुशुण्डि-चरित 'भुशुण्डि रामायण' और 'सत्योपाख्यान' के अनुसार, शिव के मरालवेश में नीलगिरि पर राम-कथा-श्रवण 'रामायण महामाला' के अनुसार वर्णित है।

३—तुलसी के राम-कथा की विशेषता

राम-कथा के उद्‌गम, पल्लवन और 'मानस' में उसके संघटन आदि से स्पष्ट है कि राम कथा मानसकार' के मस्तिष्क की कल्पनाप्रसूत कथा-वस्तु नहीं है, बल्कि वह अत्यन्त प्राचीनकाल से व्यापकरूप में चली आती हुई परम्परागत है। ऐसी स्थिति में प्रश्न हो सकता है कि तब 'मानस| की इसमें विशेषता ही क्या है ? इसके उत्तर में कहा जायगा—काव्यात्मक साधनों के कौशलपूर्ण उत्कृष्ट प्रयोगों के कारण कवि को जो सफलता प्राप्त हुई है, वह अद्वितीय है।' राम-कथा कहनेवाली समग्र रचनाओं में 'मानस' की रचना प्रत्येक दृष्टियों से सर्वोपरि है। यह उसके प्रणेता की दृष्टिविस्तार की क्षमता, सारग्राहिणी प्रवृत्ति, काव्य-सृजन की कुशलता और युग की परिस्थितियों की अनुभूतियों की विशेषता है। विद्वानों के कथनानुसार जन्म से ही उस निराश्रित व्यक्ति('मानसकार')को अरक्षा, अभाव, असहिष्णुता, कटुता और पीड़ा का, सामाजिक पतन के विघटन, विशृंखलता, स्वार्थपरायणता, मर्यादाहीनता, धर्मान्धता और पाखण्ड आदि तत्वों का अनुभव हुआ। उस समय की समग्र सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक पाखण्डों,

राजनीतिक अनाचारों और सांस्कृतिक विषमताओं के विरुद्ध भारतीय जन-जीवन का पथ-आलोकित करने, उसके संचालन और नियमन के निमित्त 'मानस' द्वारा आलोक, शक्ति, सहिष्णुता और अभिलाषा का दान करनेवाला, धर्म न्याय, नीति, मानवता, मर्यादा, सुशासन, सुव्यवस्था, और स्वाधीनता आदि लोक-हितकारी तत्वों से ओत-प्रोत व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन की महनीय चेतनाओं का सुन्दर कलात्मक ढंग से संवहन करता हुआ दिखाई पड़ता है। राम और रावण का संघर्ष पुण्य का पाप के साथ, सत्य का असत्य के साथ, न्याय का अन्याय के साथ था। युग की पुकार सुननेवाले महात्मा तुलसीदास ने समस्त उत्पीड़नों और अव्यवस्थाओं के प्रतीक रावण को समूल नष्ट करनेवाले न्याय और मर्यादा की स्थापना करनेवाले पूर्ण-मानव श्रीरामचन्द्र जैसा नायक पाकर 'निर्बल के बलराम' की कल्पना को साकाररूप प्रदान किया। यद्यपि तुलसी के पहले से ही 'राम नाम' का गुणगान सहस्त्रों वर्षों से ऋषि-मुनि करते आ रहे हैं, किन्तु राम भक्ति की जो प्रबल धारा अपने 'मानस' के द्वारा तुलसीदास ने प्रस्फुटित की, उसमें अवगाहन कर भारतीय जनता ने जितनी उत्फुल्लता, शक्ति, सहिष्णुता और नवोन्मेषशालिनी भाव-प्रवणता-मूलक प्रेरणा पायी, उतनी कभी भी राम-चरित संबंधी किसी अन्य रचना में किसी को न मिली थी। कथा पुरानी कहते हुए भी दृष्टिकोण बदलकर, घोर नैतिक पतन के मध्य पिसी जाती जनता को, अपनी ज्ञानोक्तियों, उपदेशों और जीवन के अनुभवों के संबंध में तात्विक वचनों के सहारे, समुन्नत लक्ष्य की ओर ले जानेवाले प्रशस्त पन्थ को आलोकित करते हुए जीवन-दर्शन की महनीय चेतनाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण कर तुलसी ने राम-कथा में ताजगी ला पतनोन्मुख समाज का उद्धार किया और जनता की पराजित भावनाओं को बल और प्रेरणा दी। तुलसीदास विशाल हृदय थे, उन्होंने 'मानस' में जो छाया-चित्र खींचा है, उसमें मानवमात्र के लिए शक्ति है, रोचकता है, आकर्षण और सच्चाई है।

———

४—तुलसीदास और उनका युग

प्रायः सभी विद्वान मानते हैं कि तुलसीदास का युग भारतीय सांस्कृतिक और राजनीतिक पराभव का युग था। यद्यपि सम्राट् अकबर जिसके शासन काल में 'मानस'कार का आविर्भाव हुआ था, बड़ा आदर्श शासक था, किन्तु सारा देश उसका गुलाम था; जिसके फलस्वरूप जनता हृदय से उसका लोहा मानती थी, उसके हृदय में ऐसा संस्कार पैदा किया जाने लगा कि उसका अपनी स्वाधीनता, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था की रक्षा की ओर ध्यान नहीं जा पा रहा था, जिससे उसके सारे जीवनादर्शों का लोप होता जा रहा था और अपना आत्म-विश्वास खोकर भारतीय जनता परमुखापेक्षी बनती जा रही थी और धीरे धीरे अपने पतनोन्मुख सामाजिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन को स्वाभाविक मानने में भूल करने लगी थी, उसका जातीय स्वाभिमान मिट चला था, जनता के हृदय में न तो अपने देश के गौरवशाली अतीत के प्रति श्रद्धा रह गयी थी, और न वर्तमान विषमता, परतन्त्रता एवं पतन को मिटा कर नए सुन्दर और गौरवपूर्ण भविष्य-निर्माण की भावना ही स्वस्थ्य थी। इसी युग के दौरान में उत्तरी भारत में ज्ञानमार्गी और भक्तिमार्गी दोनों प्रवृत्तियों की धार्मिक-भावनाएँ प्रबल रूप से जनता के बीच चल रही थीं। ज्ञानमार्गी प्रवृत्ति के लोग समाज को कोरे ज्ञानोपदेश से भगवान की ओर अभिमुख करना चाहते थे; किन्तु भक्तिमार्गी प्रवृत्ति के लोग ज्ञानातीत परात्पर ब्रह्म को मनुष्य की भाँति दुःख-सुख भोगनेवाले, मानवीय क्रिया-कलापों में देखने-दिखाने की चेष्टा करते थे। इन भक्तिमार्गी-प्रवृत्तियों में दो धाराएँ अर्थात् कृष्ण-काव्य और राम-काव्य हिन्दी-साहित्य में प्रवाहित हुईं; किन्तु कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत भगवान् का जो रूप प्रस्तुत किया गया, वह महाभारत के उस कृष्ण का रूप न था, जिसके द्वारा अर्जुन का रथ हाँककर दुष्टों के संहार में अर्जुन का उत्साह बढ़ाया गया था। अतः भगवान कृष्ण की महाभारत के महासमर की अलौकिक शक्ति-सम्पन्न छवि न दिखाई पड़ी, जिसे समाज को देखना आवश्यक था, समाज ने कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत

भगवान् के उस बाल-लीला और कैशोर्य के लोकरंजनकारी चरित्र को हृदयंगम किया, जिससे उसे आनन्द का अनुभव तो हुआ, किन्तु 'धर्म-संस्थापनार्थाय' में उसे उतनी सजीवता न प्राप्त हुई जो राम काव्य के द्वारा हुई।

राम-काव्य में राम की बाललीला के साथ ही साथ राम के वीरोचित, उदात्त, अन्याय-विरोधी 'धर्मसंस्थापनार्थाय' रूप प्रस्तुत किया गया, जिसमें जनता ने राम के उस रूप का दर्शन किया, जिसमें अन्याय के विरुद्ध न्याय की, पाशविकता के विरुद्ध देवत्व की, अधर्म के विरुद्ध धर्म की, पराधीनता के विरुद्ध स्वतंत्रता की, पतन के विरुद्ध उत्कर्ष की और पराजय के विरुद्ध जयकी क्षमता थी, या यों कह सकते हैं, कि राम-भक्ति के अन्तर्गत गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समाज का प्रत्येक दृष्टियों से अध्ययन कर परम्परा से आती हुई राम-भक्ति-रसायन में ऐसे तत्वों का मिश्रण किया, जो समाज के हृदय में मृतप्राय आत्म-गौरव और आत्म-विश्वास आदि भावनाओं को जाग्रत कर प्राणवन्त करने में सक्षम था। इस प्रकार 'मानस' की राम-कथा के मूल में अत्याचारी अथवा आसुरी प्रवृत्तियों के उपशमन में संघर्ष करने और उस पर विजय प्राप्त करने की प्रवृत्ति भी है। इस प्रकार तुलसीदास की राम कथा में काव्य की विशेषता, उसकी अमरता, उसका एक क्रान्तिकारी नवीन रूप देखा जा सकता है। राम के प्राचीनकाल से आते हुए चरित में 'मानस' में जो विशेषताएँ प्रतिष्ठित की गयीं, उनमें मर्यादा का संरक्षण सबसे महत्वपूर्ण है, जिसके अन्तर्गत सूत्रात्मक ढंग से समाज को सुन्दर, स्वस्थ्य और पुष्ट करनेवाले सभी तत्व सन्निहित हैं।

मैंने तुलसीदास के विशाल हृदय का ऊपर उल्लेख किया है, जिसके अनुसार उनकी भावधारा व्यक्तिगत अथवा एकान्तमूलक नहीं थी, बल्कि वह समष्टिगत थी, उसमें सारे समाज का रुदन था, सारे समाज की कामना थी, उनकी वाणी में सारे समाज की ध्वनि थी, उनके व्यक्तित्व में सारे राष्ट्र का व्यक्तित्व था, उनके विद्रोहात्मक भावनाओं में सारे समाज की विद्रोहात्मक भावना थी। इसलिए अपने युग में सभी पाषण्ड फैलानेवाले संप्रदायों को जो भ्रम में डालनेवाले थे, सामाजिक एकता को भंग करनेवाले थे और सामाजिक नैतिकता को दुर्बल बनानेवाले थे, उन सबों का कड़ा विरोधकर सामाजिक, धार्मिक और

सांस्कृतिक जीवन को विघटित होने से बचाने का प्रयत्न किया। तुलसीदास के समन्वयकारी दृष्टिकोण ने जनता को याद दिलाया कि जब बन्दर-भालू मिलकर त्रिलोक विजयी रावण के स्वर्ण विनिर्मित राज्यप्रासाद को फूँककर राख बना सकते हैं, तो क्या करोड़ों की संख्या में भारती जनता राज-समाज के कुशासन को नहीं समाप्त कर सकती? 'राम-चरित-मानस' में रावण-वध के पश्चात् राम-राज्य की जो झाँकी तुलसीदास उपस्थित करते हैं, वह कितना आशाप्रद और कितना प्रेम-पूर्ण है :—

> "राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब सोका॥
> बयर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥
> दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहू नहि ब्यापा॥
> सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती॥
> राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
> फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
> खगमृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
> × ×
> सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुंजहिं अलि लै चलि मकरंदा॥
> लता विटप मागे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
> ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृत जुग कै करनी॥
> बिधु महि पूर मयूखन्हि, रवि तप जेतनेहि काज।
> मागे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥"

भक्त और विरक्त महात्मा, जिसे सम्राट् अकबर के दरबार में मनसबदारी मिल रही थी और जिसने साफ इन्कार कर दिया था :—

> "हम चाकर रघुबीर के, पटौ लिखौ दरबार।
> अब तुलसी का होहिंगे, नर के मनसबदार॥"

उसे परलोक प्राप्ति के अतिरिक्त अत्यन्त आकर्षक, सुख-सम्पदापूर्ण राम-राज्य से क्या काम? इसका मतलब यह था, कि वे जनता को समझाकर कहते हैं—दुराचारी राज-समाज के विरुद्ध जनता के संगठित होकर विद्रोह करने से

नए सुशासन का जो रूप होगा, वह यही है। सुख-सम्पदा और सुव्यवस्था के पश्चात् ही अध्यात्म और परलोक की बात सूझती है। अतः मानना होगा कि 'मानस' की रचना कर कवि ने बहुत बड़ी क्रांति और उसमें परम्परा से आती हुई राम-कथा में नवीन तत्वों का समावेश किया, जिससे पिछली राम-कथाओं से 'मानस' में विशेषता आ गयी है।

गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसका रचयिता अपने समय का सबसे बड़ा भाषाविद्, सबसे बड़ा सन्त, सबसे बड़ा दार्शनिक, सबसे बड़ा विद्वान, सबसे बड़ा मानव-प्रेमी तथा सबसे बड़ा समाज-सेवी था। ये समस्त विशेषताएँ और कवि की संवेदनशीलता सहानुभूतिपूर्ण भावुकता, विशाल हृदय और कवित्व उसकी रचना के स्तरोन्नयन के, लोक-प्रियता के और भव्य विकास के कारण हैं। मानवता की कहानी कहने में 'मानस' के अन्तर्गत कवि ने ज्ञान, वैराग और भक्ति संबंधी तत्वों को इस प्रकार लाकर रख दिया है, कि वे कथानक के आवश्यक अंग बन गये हैं। वे कोरे उपदेश न होकर अत्यन्त प्रभावशाली, मार्मिक, सरलएवं सरस होकर हमारे मानस पर अपनी स्थायी छाप छोड़ देते हैं। ज्ञान की उपदेशात्मक बातें बहुत प्राचीन काल से कही जाती रही हैं, किन्तु उनका प्रभाव जनता पर उतना न रहा, जितना कि मानव-जीवन के विभिन्न व्यापारों के मध्य इन तत्वों को मिलाकर कहने से 'मानस' के द्वारा मानस पर पड़ा। 'मानस' की व्यापकता राम-कथा की ही भाँति दिगन्तव्यापी इन्हीं कारणों से हुई। तुलसी-साहित्य भारतीय जनता तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि दिनों-दिन विदेशी जनता में भी लोक-प्रिय होता जा रहा है। बड़े बड़े अंग्रेज विद्वानों ने इसका विशद् अध्ययन किया, समालोचनात्मक पुस्तकें लिखीं, खोज किया और अनुवाद किए। धीरे-धीरे इसका प्रभाव और प्रसार फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि प्रदेशों में भी होता जा रहा है। इस प्रकार आशा पाई जा रही है, कि सारे संसार को कालान्तर में मानवता की इस अमर कहानी राम-कथा के साथ-साथ तुलसी का 'मानस' मानव-जाति का पथ आलोकित करता हुआ उसे एक महान् संदेश और प्रेरणा देगा, क्योंकि इसमें धार्मिकता, आध्यात्मिकता, सामाजिकता, मानव-प्रेम और मानव-जाति के भविष्य-निर्माण के जो तत्व मौजूद हैं, वे देशव्यापी

न होकर विश्वव्यापी होकर रहेंगे। कवि ने हृदयतत्व की सृष्टिव्यापिनी भावना द्वारा जो उपदेश दिया है, वह समग्र विश्व के छोर को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकता।

५—'मानस' की रचना के वाह्य-उपकरण

'मानस' का रचना-काल सर्व सम्मति से सं० १६३१ माना जाता है। स्वयं कवि के शब्दों में ही:—

"संवत सोरह सौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥"

(अ) 'मानस' की छन्द-संख्या—'मानस' में राम-कथा का सांगोपांग वर्णन है। अन्य रामायणों की भांति यह ग्रन्थ भी सात काण्डों में विभक्त है। किसी-किसी प्रति में क्षेपक कथाएँ भी मिलती हैं। जिनके कारण छन्द-संख्या निर्धारण में कठिनता होती है। किन्तु प्रामाणिक प्रतियों के आधार पर पंडित श्रीरामनरेश त्रिपाठीजी के अनुसार चौपाइयों की संख्या ४६४७ और छन्द संख्या ६१६७ है।[१] श्रीरामदास गौड़ ने 'रामचरित-मानस' की भूमिका में सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै' के अनुसार 'अंकानां वामतो गतिः' रीति के आधार पर सत का अर्थ १००, पंच का ५ लेकर ५१०० छन्द माना है।[२] इससे मिलती-जुलती छन्द-संख्या श्रीचरणदास

१—देखिए 'तुलसीदास और उनकी कविता'—श्रीरामनरेश त्रिपाठीजी कृत पृ० १२१ (हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग)।

२—देखिए 'रामचरित-मानस' की भूमिका पृ० ६४-६५ (हिन्दी-पुस्तक एजेंसी कलकत्ता सं० १६८२)।

ने भी 'मानस-मयंक' में लिखा है—"एकावन सत सिद्ध हैं, चौपाई तहँ चार। छन्द सोरठा दोहरा, दस रित दस हज्जार।" अर्थात् चौपाइयों की संख्या ५१०० है तथा छन्द सोरठा और दोहा सब मिलकर दस कम दस हजार अर्थात् सम्पूर्ण छन्द-संख्या ६६६० है।

(आ) मानस के छन्द—जिन छन्दों में 'मानस' की रचना हुई है, उन संख्या १८ है। प्रधान रूप से चौपाई और दोहा छन्द में ही 'मानस' की रचना हुई है। इनके अतिरिक्त वर्णिक वृत्तियों में स्रग्धरा, रथोद्धता, अनुष्टुप, मालिनी, वंशस्थ, तोटक, भुजंगप्रयात वसन्ततिलका, नगस्वरूपिणी, इन्द्रवज्रा और शार्दूलविक्रीड़ित आदि का प्रयोग हुआ है।

(इ) वर्ण्य-विषय—यद्यपि 'वाल्मीकि रामायण', 'अध्यात्म रामायण', 'हनुमन्नाटक' 'प्रसन्न राघव' और 'श्रीमद्भागवत' आदि में जो राम-कथा परम्परा से वर्णित है, वह प्रचलित समस्त शास्त्रीय काव्य-पद्धतियों के अनुसार मानस' में वर्णित है[1] किन्तु मुख्यतः मानस में वर्णित सामग्री कथा के विस्तार की दृष्टि से 'वाल्मीकि रामायण' का, कथा के आधार की दृष्टि से 'अध्यात्म रामायण' का नवीन घटनाओं—(पुष्पवाटिका दर्शन और लक्ष्मण-परशुराम-संवादादि) की दृष्टि से हनुमन्नाटक' एवं 'प्रसन्नराघव' का और सूक्तियों की दृष्टि से 'श्रीमद्भागवत' एवं अनेक अन्य धार्मिक ग्रन्थों का अवलम्बन लिया गया है। प्रसिद्ध रामायणी पण्डित श्रीरामनरेश त्रिपाठीजी का तो कथन है कि "संस्कृत के दो सौ ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन चुनकर उन्होंने उनका रूपान्तरकर 'मानस' में भर दिया है।[2]

(ई) 'मानस' का कलापक्ष—'मानस' की कला अपनी स्वाभाविक गति से चलती हुई समाज के आदर्शों की अपेक्षा रखती है। पात्रों के चरित-चित्रण में हम देखते हैं कि 'मानस' का प्रत्येक पात्र अपनी श्रेणी के लोगों के लिए आदर्श है 'मानसकार, लोक को शिक्षा देते हुए जिस हृदयग्राही चरित-चित्रण

१—'मानस' के वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में पिछले परिच्छेद में विस्तार-पूर्वक विवेचन किया जा चुका है। पाठक वहां पढ़ चुके हैं।

२—देखिए 'तुलसीदास और उनकी कविता' (हिन्दी-मन्दिर प्रयाग) पृ० १३७।

की अभिव्यंजना करता है, वह अद्वितीय है। 'मानस' के कुछ पात्रों की विशेषताओं पर प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा।

(१ शिव—इनके चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत कविने 'वैष्णवानां शिवः' के सिद्धान्तानुसार भक्ति की प्रतिष्ठा की है, अर्थात् राम-भक्तों के प्रतिनिधि के रूप में शिव हमारे सामने आते हैं:—

"एहिं तन सतिहि भेंट मोहिं नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥
अस बिचारि संकर मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा।
चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। राम भगत समरथ भगवाना।"
तथा—' सिव सम को रघुपति व्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी।
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहिं प्रिय भाई॥"

(२) पार्वती के चरित्र-चित्रण में कवि ने राम-कथा के प्रति श्रद्धा दिखाते हुए पातिव्रत-धर्म की स्थापना की है। अतः पार्वती हमारे समक्ष पतिव्रता-स्त्रियों का प्रतिनिधि होकर आती हैं:—

"जगदातमा महेस पुरारी। जगत जनक सबके हितकारी।
पिता मन्दमति निन्दत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू।"
तथा—"सतीं मरत हरिसन बरु मागा। जनम जनम सिवपद अनुरागा॥"
और भी—"उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥"
इसी प्रकार—"जनम कोटिलगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥"

३—दशरथ--इसके चरित्र चित्रण में कवि ने सत्य-प्रतिज्ञा और पुत्र-प्रेम की प्रतिष्ठा की है। महाराज दशरथ सत्य-पालन और पुत्र-प्रेम का जो उज्ज्वल आदर्श हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं, वह अद्वितीय है :—

सत्यप्रेम —' रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥

सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥
"नृपहिं वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना ॥"

पुत्रप्रेम—"राम चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥
एहि ते कवन व्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना ॥"
'जिऐ मीन बरु वारि बिहीना। मनि बिनु फनिक जिऐ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं ॥
समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना ॥"
"अजस होउ जग सुजस नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोहीं। लोचन ओट रामु जनि होहीं ॥"
"नृपहिं प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िय भीरा ॥
सुकृत सुजस परलोक नसाऊ। तुम्हहिं जान बन कहिहि न काऊ।"
"राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हँरासू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी जग मोहिं समाना ॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा ॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा ॥
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर ॥

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ, राउ गएउ सुरधाम ॥

इसके अतिरिक्त जिस समय विश्वामित्र अयोध्या आकर दशरथजी से अपनी यज्ञ रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण की याचना करते हैं, उस समय का वर्णन कितना मार्मिक है :—

"सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी ॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेउ बिचारी ॥
मागहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा ॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥

सब सुत मोहिं प्रिय प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
"मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥"

४—जनक—इनके भी चरित्र-चित्रण में कवि ने सत्य-प्रतिज्ञा की स्थापना की है। धनुष्य-यज्ञ में उपस्थित राजाओं के मध्य जब जनकजी की ओर से घोषणा की गयी कि :—

"सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचारि बरइ हठि तेही॥"

और जब "देश-देश के भूपति नाना" जिसमें मनुज शरीरधारी देव, दनुज सभी सम्मिलित थे और जो प्रण सुनकर आये थे; जिसमें से एक भी ऐसा वीर न निकला कि:—

"कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सके छुड़ाई॥
अतः "अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥"

तब भी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रहते हुए जनकजी कहते हैं:—
"तजहु आस निज-निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ॥"

बल्कि अपने प्रण पर आरूढ़ रहने के कारण जानकी के अविवाहित रह जाने के भय से जनक को पश्चाताप भी हो रहा है। यदि उन्हें अपनी सत्य-प्रतिज्ञा पर आरूढ़ रहने का प्रण न रहता तो उन्हें पश्चाताप करने का कोई कारण ही न था। इसीलिए अत्यन्त दुःखित होकर वे पूरे राज-समाज में अपना क्षोभ प्रकट कर रहे हैं :—

"जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई॥"

महाराज जनक की सत्य-प्रतिज्ञा और राजाओं की शक्तिहीनता देखकर सब दुखी हो जाते हैं :—

"जनक बचन सुनि सब नर-नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी॥"

इसके अतिरिक्त जब राम के सौन्दर्य पर जनकपुर के सब नर-नारी मन में विचार करते हैं, कि 'वरु साँवरो जानकी जोगू' तथा जानकी भी जिस पर धनुष तोड़े जाने के पूर्व ही अनुरक्त हैं, वे अपने समस्त सुकृत और भवानी की आराधना का जो फल माँगती हैं, उसमें भी जनक की सत्य-प्रतिज्ञा का ध्यान रखती हैं; वे कहती हैं कि धनुष की गुरुता कम करो—हे देवताओ! 'करहु चाप गुरुता अति थोरी।' एक बार वे बड़े प्रेम से राम की ओर देखकर पुलकित तो होती हैं, किन्तु पिता के प्रण का ध्यान होते ही क्षुभित हो जाती हैं। उन्हें विश्वास है कि पिताजी कभी भी अपना प्रण नहीं छोड़ सकते :—

"नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनछोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहि कछु लाभ न हानी॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिय हीरा॥
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभु चाप गति तोरी॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥"

जनक की सत्य-प्रतिज्ञा मात्र जानकी ही तक विदित नहीं है, बल्कि उनके सम्पर्क में रहनेवाले पुर लोगों तक और भुवन विख्यात् भी है। पुर-लोग; जो राम को सर्वश्रेष्ठ जानकी के योग्य वर समझते हैं, वे भी विश्वास रखते हैं, कि जनक अपना प्रण नहीं छोड़ सकते; अतः राम जब धनुष के समीप जा रहे हैं, तब :—

'चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥
बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिव धनु मृनाल की नाईं। तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं॥'

और धनुष टूटने पर 'जनक लहेउ सुखु सोच बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई॥'

तथा—"जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा।
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। अब जो उचित सो कहिय गोसाईं॥"

महात्मा जनक की सत्यवादिता पर विश्वास रखनेवाले महामुनि विश्वामित्रजी ने कहा:—

'कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा विवाहु चाप आधीना ॥
टूटत ही धनु भयउ विवाहू। सुर नर नाग विदित सब काहू ॥"

(५) कौशल्या—इनके चरित्र-चित्रण में आदर्श माता और कर्तव्य-पालन की व्यंजना की गई है। धर्म-संकट में पड़ी हुई कौशल्याजी के मनः स्थिति का चित्रण इस प्रकार है।

"राखि न सकइ न कहि सक काहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू ॥"
"धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी।
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बन्धु विरोधू ॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी।
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। राम भरत, दोउ सुत सम जानी ॥
सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी।
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका ॥"

राज देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहिं भूपतिहि प्रजहिं प्रचंड कलेसु ॥
जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना ॥

दशरथ-मरण के समय किस धैर्य और साहस से कौशल्याजी काम करती हैं:—

"उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी ॥
नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू।
धीरज धरिय त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू ॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। राम लखनु सिय मिलहिं बहोरी।"

राम के वन चले जाने और दशरथ मरण के पश्चात् भरत के ननिहाल से लौटने पर जिस भरत के कारण राम को लक्ष्मण और सीता के साथ वन

जाना पड़ा, उन्हीं को पाकर कौशल्याजी राम के लौट आने जैसे सुख का अनुभव कर रही हैं :—

"सरल सुभाय मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥"

कौशल्याजी पुनः एक आदर्श गृहिणी की भाँति धैर्यपूर्वक भरत को सान्त्वना प्रदान करती हैं :—

"माता भरतु गोद बैठारे। आंसु पोछि मृदु बचन उचारे॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥
काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥"

अन्त में भरत को समझाते हुए उनकी सफाई स्वयं देकर वे कहती हैं:—

"राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यान बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥"

६—सुमित्रा—इनके चरित्र-चित्रण से धर्म-प्रेम की व्यंजना हुई है :—

"जो पै सीय राम बनु जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥"

लक्ष्मण को समझाते हुए वे कहती हैं :—

*"भूरिभाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥*

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥"
"सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥"
'राग रोष इरषा मद मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू॥'

७—सीता—इनके चरित्र-चित्रण से कवि ने पातिव्रत-धर्म की व्यंजना की है :—

"प्राननाथ करुना यतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहिं तरनिहुँ ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मोकहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी॥
"सिय मन राम चरन अनुरागा। घरु न सुगम बन बिषम न लागा॥"
"प्रभु करुनामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
"प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्दु तजि जाई॥"
"पितु बैभव बिलास मैं दीठा। नृपमनि मुकुट मिलत पदपीठा॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरे। पिय बिहीन मन भाव न मोरे॥

× × ×

"बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहिं केउ सपनेहुँ सुखद न लागा।
अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहिं सब सुखद प्रानपति संगा॥"
"मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मोकहँ भोगू॥"
"बन दुख नाथ कहे बहु तेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।"

८—राम—भगवान राम के मर्यादापूर्ण जीवन और उनके द्वारा लोक-शिक्षण के आदर्शों का जो उदाहरण 'मानस' में मिलता है, वह हिन्दी-साहित्य ही नहीं, विश्व-साहित्य में बेजोड़ है। उनके चरित्र का यथातथ्य वर्णन करने वाले तुलसीदासजी ने अपनी कला का पूर्ण परिचय दे दिया है। क्योंकि "होते न जो तुलसी से महाकबि तो फिर राम से राम न होते" इनके चरित-चित्रण में,

गुरु-प्रेम, माता-पिता-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, सत्य-प्रतिज्ञा-प्रेम, स्त्री-प्रेम, प्रजा-प्रेम और सेवक-प्रेम की व्यंजना की गयी है।

गुरु-प्रेम—"सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने।।"

"सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगल दमनू।।"

"सील सिन्धु सुनि गुर आगमनू। सिय समीप राखे रिपु दवनू।।
चले सवेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीन दयाला।।"

"गुरु वशिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इन्हकी कृपा दनुज रन मारे।"

माता-पिता-प्रेम—"सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितुमातु वचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनि हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।"

"आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ। पिता वचन मैं नगर न आवउँ।।"

'कहेउ सत्य सब सखा सुजान। पिता दीन्ह मोहिं आयसु आना।।"

भ्रातृ-प्रेम—"भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहिं सनमुख आजू।।'

"सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई।।
कृपासिन्धु प्रभु होहिं दुखारी। धीरज धरहिं कुसमय विचारी।।"

"जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे।।"

"जौं जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।"
जइहौं अवध कवन मुंह लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गवाई।।
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।"

भ्रातृ-प्रेम से भगवान राम इतने आगे हैं कि पिता का वचन मानना जिनके लिए परम कर्त्तव्य था, वे उसे भी छोड़ने के लिए तैयार थे।

"जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोहीं। जौ जड़ दैव जिआवै मोहीं।।"

भक्त-विभीषण की प्रार्थना करने पर.—

"अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै। मज्जन करिय समर श्रम छीजै।।
सुनत बचन मृदु दीन दयाला। सजल भए द्वौ नयन बिसाला।।

तोर कोप यह मोर सब सत्य वचन सुनु भ्रात।
मरत दसा सुमिरत मोहिं निमिष कल्प सम जात ॥
तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतन करु सखा निहोरउँ तोहि ॥
बीते अवधि जाउं जौं जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि-पुनि पुलक शरीर ॥

पत्नी-प्रेम—"बर्षा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई ॥
"एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महँ आनौं ॥
कतहुँ रहउ जौं जीवत होई। तात जतन करि आनउँ सोई ॥"
"तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा ॥
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥"

प्रजाप्रेम—"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥"

सत्य-प्रतिज्ञा-प्रेम—"सुनु सुग्रीव मैं मारिहउं बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गए न उबरिहि प्रान ॥"

ऐसा प्रण कर चुकने पर जब सुग्रीव ने कहा—

"बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा ॥"

अर्थात् 'बालि मेरा हितकारी है, जिसकी कृपा से शोक का नाश करनेवाले आप मुझे मिले।' भाव यह कि आप अब बालिका वध न कर ऐसी कृपा करें:—

"अब प्रभु कृपा करहु एहि भांती। सब तजि भजन करौं दिन राती ॥"

इस पर—"सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनु पानी ॥
जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा वचन मम मृषा न होई ॥"

सेवक-प्रेम—जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा ॥"
"राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी ॥"
"मम भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी ॥"
"सुनु सुरेस कपि भालु हमारे। परे समर निसिचरन्ह जे मारे ॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल बिआउ सुरेस सुजाना ॥"

"ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहं बेरे॥
ममहित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहिं अधिक पियारे॥"

बानर जो राम के सेवक हैं, उन्हें उनके समक्ष नीचे आसन पर रहना चाहिए था, किन्तु वे राम, से ऊँचे आसनों पर (असभ्यतापूर्वक व्यवहार होने पर) भी रहने से वे बुरा नहीं मानते और यह सोचकर प्रेम करते हैं कि इनका मन तो हमारे कार्य में ही लगा है:—

"प्रभु तरु तर कपि डार परते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥

(६) भरत—इनके चरित्र चित्रण में आदर्श भ्रातृ-भक्ति, आदर्श मर्यादा-पालन और आदर्श-भक्ति-भावना की व्यंजना की गयी है। 'मानस' में भरत-चरित्र के वर्णन में कवि की विशाल हृदयता की जो व्यंजना परिलक्षित होती हैं, वह हिन्दी-साहित्य में बेजोड़ है। भरत के हृदय की विविध भावनाओं का कवि ने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है। भरत के महान् चरित पर सभी मुग्ध हैं:—

धर्म-प्रेम—"समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥"
"पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥
अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरिहर को॥
"रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥"
"नव विधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥"

"अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन॥"

"सीताराम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥"

भरतजी ने उत्तरोत्तर बढ़ते हुए राम-प्रेम की अपने हृदय में जाँच भी कर ली। हनुमानजी को, संजीवनी लेकर आते समय जब भरत ने बिना नोंक के बाण से मार कर गिरा दिया और वे मूर्च्छित हो गए, तब उनकी मूर्च्छा दूर करने के लिए वे कहते हैं:—

भ्रातृ-प्रेम—"जो मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मोपर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठ बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥"
"बीतें अवधि रहहिं जौ प्राना। अधम कवन जग मोहिं समाना॥"
"जो न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥"
"सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहु पारस पायउ रंका॥
रज सिर धरि अरु नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥"
"निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥"
"जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जिन्ह चितये प्रभु जिन्ह-प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटेउ भव रोगू॥"
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥"

मर्यादा—"भरतहि होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीरसिन्धु बिनसाइ॥

१० लक्ष्मण—इनके चरित्र चित्रण में वीरता, भ्रातृ-प्रेम और भक्ति की व्यंजना की गयी है। कवि ने इनके सम्बन्ध में बालकाण्ड में ही सूत्रात्मक ढंग से कह दिया है:—

"रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भएउ जस जाका॥"
यहाँ पर थोड़ी-सी चौपाइयाँ इनकी वीरता आदि पर दी जा रही हैं:—

वीरता—"सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
"कमल नाल जिमि चाप चढ़ावउँ। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

"ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
ममहित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पियारे॥"

बानर जो राम के सेवक हैं, उन्हें उनके समक्ष नीचे आसन पर रहना चाहिए था, किन्तु ये राम, से ऊँचे आसनों पर (असभ्यतापूर्वक व्यवहार होने पर) भी रहने से वे बुरा नहीं मानते और यह सोचकर प्रेम करते हैं कि इनका मन तो हमारे कार्य में ही लगा है:—

"प्रभु तरु तर कपि डार परते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥

(६) भरत—इनके चरित्र चित्रण में आदर्श भातृ-भक्ति, आदर्श मर्यादा-पालन और आदर्श-भक्ति-भावना की व्यंजना की गयी है। 'मानस' में भरत-चरित्र के वर्णन में कवि की विशाल हृदयता की जो व्यंजना परिलक्षित होती है, वह हिन्दी-साहित्य में बेजोड़ है। भरत के हृदय की विविध भावनाओं का कवि ने बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है। भरत के महान् चरित पर सभी मुग्ध हैं:—

धर्म-प्रेम—"समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥"
"पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥
अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरिहर को॥
"रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥"
"नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥"

"अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन॥"

"सीताराम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥"

भरतजी ने उत्तरोत्तर बढ़ते हुए राम-प्रेम की अपने हृदय में जाँच भी कर ली। हनुमानजी को, संजीवनी लेकर आते समय जब भरत ने बिना नोंक के बाण से मार कर गिरा दिया और वे मूर्च्छित हो गए, तब उनकी मूर्च्छा दूर करने के लिए वे कहते हैं :—

भ्रातृ-प्रेम—"जो मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मोपर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठ बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥"
"बीतें अवधि रहहि जौ प्राना। अधम कवन जग मोहिं समाना॥"
"जो न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥"
"सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहु पारस पायउ रंका॥
रज सिर धरि अरु नयननि्ह लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥"
"निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥"
"जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जिन्ह चितये प्रभु जिन्ह-प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटेउ भव रोगू॥"
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥"

मर्यादा—"भरतहि होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीरसिन्धु बिनसाइ॥

१० लक्ष्मण—इनके चरित्र चित्रण में वीरता, भ्रातृ-प्रेम और भक्ति की व्यंजना की गयी है। कवि ने इनके सम्बन्ध में बालकाण्ड में ही सूत्रात्मक ढंग से कह दिया है :—

"रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भएउ जस जाका॥"

यहाँ पर थोड़ी-सी चौपाइयाँ इनकी वीरता आदि पर दी जा रही हैं :—

वीरता—"सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
"कमल नाल जिमि चाप चढ़ावउँ। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

तोरौं छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बलनाथ ।
जो न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु माथ ॥"

"आजु राम सेवक जस लेऊँ । भरतहिं समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फल पाई । सोवहु समर सेज दोउ भाई ॥
आइ बना भल सकल समाजू । प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसेहिं भरतहिं सेन समेता । सानुज निदरि निपातउँ खेता ॥
जौं सहाय कर संकर आई । तौ मारउँ रन राम दोहाई ॥"

"धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करौं पुर छार ।"

"जौं तेहि, आजु बधे बिनु आवउँ । तौ रघुपति सेवक न कहावउँ ॥
जौं सत संकर करहिं सहाई । तदपि हतौं रघुबीर दोहाई ॥"

भातृ-प्रेम—"गुरु पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाव नाथ पतिआहू ॥"

भक्ति-भावना—"सखा परम परमारथ एहू । मन क्रम वचन राम पद नेहू ॥"

"मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौं चरन रज सेवा ॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहिदाया ॥

ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ॥
जाते होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥"

११ हनुमान्—इनके चरित्र-चित्रण में स्वामि-भक्ति, भक्ति-भावना और वीरता की व्यंजना हुई है :—

स्वामिभक्ति-'राम काजुकरि फिरि मैं आवौं । सीता कइ सुधि प्रभुहिं सुनावौं ॥'

"सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर-नर मुनि तनु धारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि विचारि मन माहीं ॥"

"तब सुग्रीव चरन गहि नाना । भाँति बिनय कीन्हें हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा । पुनि तव चरन देखिहउँ देवा ॥
पुन्य पुंज तुम्ह पवन कुमारा । सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥"

भक्ति-भावना:—"कह हनुमन्त सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ॥"
"नाथ भगति अति सुख दायिनी। देहु कृपा करि अनपायिनी ॥"

वीरता—"सिंहनाद करि वारहिं बारा। लीलहिं नावउँ जलनिधि खारा ॥
सहित सहाय रावनहिं मारी। आनौं इहां त्रिकूट उपारी ॥"
"कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति बल बीरा ॥"

१२—रावण—इसके चरित्र-चित्रण में वीरोल्लास-गर्वोक्ति और दृढ़ता की व्यंजना मिलती है।

वीरोल्लास—गर्वोक्ति:—

"जौं आवइ मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई ॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा ॥"
"बिहसि दशानन पूछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता ॥
पुनि कहु खबरि बिभीषण केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी ॥
करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी ॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई ॥
जिनके जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा ॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी जिन्ह के हृदय त्रास अति मोरी ॥
की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजस सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर ॥"
"जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु ॥
पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास ॥
तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मोसन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवन्त मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥

सिलि कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगर जेहिं जारा। सुनत वचन कह बालिकुमारा ॥"

दृढ़ता—"सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सन्मुख जाकर मन डोला ॥
सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भएँ न भलाई ॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा ॥"

इस प्रकार और भी अनेक पात्र हैं, जिनके चरित्र-चित्रण में विभिन्न गुणों के साथ सामाजिक आदर्श मर्यादा का भी ध्यान रखा गया है, ये आदर्श स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढंग से रचना में अभिव्यंजित हुए हैं। अधिक न कह कर हम यही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि कला और उपदेश का इस जैसा समन्वय और किसी रचना में नहीं प्राप्त होता। गोस्वामीजी की इस रचना में जो अनुपम काव्य-शक्ति परिलक्षित होती है, उसके कारण समाज के प्रत्येक स्तर के लोगों में उसका बड़ा सम्मान है।

(द) रस-निरूपण—'मानस' में सभी रसों का उद्रेक बड़ी सफलता से हुआ है। गोस्वामीजी की इस रचना में रसों की अभिव्यंजना स्वाभाविक ढङ्ग से कथा-प्रवाह के बीच हुई है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं:—

(१) शृङ्गार-रस—(संयोग)—

"प्रभुहि चितै पुनि चितै महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल ॥"

(वियोग)—'राम बियोग कहा सुनु सीता। मो कहँ भए सकल बिपरीता ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वांस सम त्रिबिध समीरा ॥"

"देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा ॥
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी ॥"

(२) करुण-रस—

"सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहि न प्रेम पन मोर निबाहा ॥
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिन जियत बहुत दिन बीते।

(३) वीर-रस—"तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जो न करौं प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु माथ ॥"

(४) हास्य-रस—

'करहिं कूट नारदहिं सुनाई। नीक दीन्ह हरि सुन्दरताई॥
रीझिहि राजकुँवरि छबि देखी। इनहिं बरिहि हरि जानि बिसेखी॥
मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहिं संभुगन अति सचुपाएँ॥"

(५) रौद्र-रस—

"अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष केइ तोरा॥
बेगि दिखाउ मूढ़ न त आजू। उलटौ महि जहँ लगि तव राजू॥"

(६) भयानक-रस—

"मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रथम महा झोटिंग कराला॥"

(७) वीभत्स-रस—

"काक कंक लेइ भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लेइ खाहीं॥"

(८) अद्भुत-रस—"देखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥"

(९) शान्त-रस—"लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचंदु।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानंदु॥"

गोस्वामीजी ने संचारीभावों की यथास्थान जो सृष्टि की है, उसका भी कुछ संकेत इस स्थल पर दे देना प्रसंगानुकूल ही होगा।

ग्लानि—एक बार भूपति मन माहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं॥
निर्वेद—अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती॥
शंका— सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भएउ जथाथिति सब संसारू॥
श्रम— थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हहूँ परिहरी निमेषें॥
असूया—तव सिय देखि भूप अभिलाखे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥
मद— सुनु तैं प्रिया वृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥
आलस्य—बार बार मुनि आग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीं॥
धृति— धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरी अपनपउ पितु बस जाने॥
विषाद— तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही॥

मति—उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला॥
मोह—लीन्ह जनक उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ग्यान की॥
चिन्ता—चितवत चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किशोर मन चिंता॥
स्वप्न—दिन प्रति देखउँ रात कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥
स्मृति—वर्षा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥
विबोध—प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥
अमर्ष—जौ राउर अनुसासन पाऊँ। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ॥
गर्व—भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्हें। बिपुल बार महि देवन दीन्हें॥
अवहित्थ—तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू॥
उत्सुकता—बेगि चलिय प्रभु आनिय भुजबल रिपु दल जीति।
दीनता—पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं भूतल परेउ लकुट की नाईं॥
व्रीड़ा—गुरुजन लाज समाज बड़, देखि सीय सकुचानि॥
हर्ष—जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हरष न जाइ कहि।
मंजुल मंगलमूल, बाम अंग फरकन लगे॥
चपलता—एक बार कालहु किन होई। सिय हित समर जितब हम सोई॥
व्याधि—देखी व्याधि असाध नृप, पर्‍यो धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ॥
निद्रा—ते सिय राम साथरी सोए। स्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए।
मरण—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम॥
आवेग—उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥
अपस्मार—अस कहि मुरछि परा महि राऊ। राम लखन सिय आनि देखाऊ।
त्रास—भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्रभय रिषि दुरबासा॥
जड़ता—मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
उन्माद—लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती॥
वितर्क—लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥

ऊ—अलंकार योजना और गुण—गोस्वामीजी की भाव विश्लेषण-क्षमता इतनी अधिक मनोवैज्ञानिक है, कि उसकी भावतीव्रता अथवा सौंदर्य

की अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों को हठपूर्वक लाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। आचार्य शुक्लजी का भी कथन है कि "उनकी साहित्य-मर्मज्ञता, भावुकता और गम्भीरता के सम्बन्ध में इतना जान लेना और भी आवश्यक है कि उन्होंने रचना नैपुण्य का भद्दा प्रदर्शन नहीं किया है और न शब्द आदि के खेलवाड़ों में वे फँसे हैं। अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की व्यंजना को प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं, अपनी अलग चमक-दमक दिखाते हुए नहीं।......गोस्वामीजी की वाक्य-रचना अत्यन्त प्रौढ़ और सुव्यवस्थित है; एक भी शब्द फालतू नहीं।...हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह एक कवि ही हिन्दी को एक प्रौढ़ साहित्यिक-भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।"[१]

तुलसीदास की इस रचना में भावों की अभिव्यंजना इस प्रकार हुई है कि सरल स्वाभाविक एवं विदग्धतापूर्ण वर्णन के अन्तर्गत उनकी प्रतिभा और शैली के कारण अलंकारों का स्वतः यथास्थान वर्णन मिलता है। यही कारण है कि सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग इस रचना में हुआ है।

रसों की अभिव्यक्ति गुणों के सहारे 'मानस' में अनेक स्थलों पर हुई है। शृंगार-रस के अन्तर्गत माधुर्य-गुण, वीर और रौद्र-रस के अन्तर्गत ओज-गुण और अद्भुत शान्त एवं अन्य कोमल-रसों के मध्य प्रसाद-गुण बड़ी निपुणता के साथ प्रयुक्त है, यहाँ थोड़े से उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं :—

माधुर्य गुण—"बिमल सलिल सरसिज बहु रंगा। जल खग कूजत गुंजत भृंगा॥"

"कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥"

ओज गुण—"रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा॥
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरु धरु धरु करहिं भयकर गिरा॥"

"भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाखंड॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड। बिनु मौलि धावत रुंड॥"

१— हिन्दी-साहित्य का इतिहास' परिवर्द्धित संस्करण पृ० १४५-१४६।

प्रसाद गुण—"राम सनेह मगन सब जाने। कहि पिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहिं कर जोरी॥
अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु राउर कोसलराय॥

गुणों के अनुसार कहीं-कहीं वर्णों की समता भी है। इस कार्य में दो विशेषताएँ हैं। प्रथम तो भाषा में प्रवाह और दूसरी अर्थ में चमत्कार-वर्द्धन। यह कार्य असाधारण प्रतिभा सम्पन्न कवि का ही हो सकता है। उदाहरण के लिए नीचे एक प्रसंग प्रस्तुत किया जाता है:—

"जौं पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुबति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥"

इसमें प्रवाह के लिए लघु वर्णों की आवृत्ति कितनी सरस एवं उपयुक्त है। जानकी के सौन्दर्य की तुलना में कवि सरस्वती, पार्वती एवं कामदेव की पत्नी रति की सुन्दरता निष्प्रभ बतलाना चाहता है। इस चौपाई में लघुता की अभिव्यंजना के लिए कवि लघु वर्णों का ही सफल प्रयोग करता है। उपर्युक्त तीनों से सीता की सुन्दरता श्रेष्ठ है, अतः सीता के लिए गुरु वर्णों का ही प्रयोग है। देखिये:—

सीता—तीय सम सीया (दूसरे ही पद में स्त्रियों की हीनता प्रकट करने के लिए तीय शब्द 'जुवति' के लघु अक्षरों में बदल दिया गया है।

गिरा—की हीनता प्रकट करने के लिए 'मुखर' शब्द से दोष कहा गया है, जो ('मु' ख''र') तीनों लघु अक्षर हैं।

भवानी—की हीनता प्रकट करने के लिए 'तनु अरध' शब्द से दोष कहा गया है, जो ('त', 'नु', 'अ', 'र' और 'ध') सभी लघु अक्षर हैं।

इसी प्रकार रति—की हीनता 'अति दुखित अतनु पति जानी' शब्दों से दोष कहा गया है जो ('अ', 'ति', 'दु', 'खि', 'त', 'अ', 'त', 'नु', 'प', और 'ति',) सभी अक्षर लघु हैं। इस प्रकार शब्द-शिल्पी तुलसीदास की महनीयता 'मानस' में यत्र-तत्र देखी जा सकती है।

(ई) 'मानस' की रचना शैली—भाषा पद्य के स्वरूप में तुलसीदास के समय पाँच शैलियाँ प्रचलित थीं—१—वीर-गाथाकाल की छप्पय-पद्धति,

२—विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति, ३—गंग आदि की कवित्त-सवैया-पद्धति, ४—कबीरदास की नीति-संबंधी बानी की दोहा-पद्धति, जो अपभ्रंश काल से ही चली आ रही थी और ५—ईश्वरदास की दोहे-चौपाई वाली प्रबन्ध-पद्धति। तुलसीदास के पूर्व (जो चरण-काल के वीरगाथात्मक-ग्रन्थ और प्रेम-काव्य एवं सन्त-काव्य के ग्रन्थ थे, वे मुसलमानी प्रभाव से प्रभावित ग्रन्थ थे) चारण-काल में काव्य की भाषा स्थिर नहीं हो पायी थी; अतः उसमें साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव था, इसके अतिरिक्त प्रेम-काव्य की दोहे-चौपाई की प्रबन्धात्मक रचना में शैली का सौन्दर्य अवश्य था, किन्तु भावोंके उसमें उत्कृष्ट प्रकाश न का अभाव तो था ही। इसी प्रकार सन्त-साहित्य में भी एक मात्र एकेश्वरवाद और गुरु की वन्दना मात्र ही प्रमुख होकर सामने आई थी, जिसमें धर्म प्रचार की भावना प्रबल थी और साहित्य-निर्माण की भावना नहीं के बराबर थी। इसके अतिरिक्त कृष्ण-काव्य के आदर्शों का निर्माण हो रहा था, उसमें अभी प्रौढ़ता नहीं आ पाई थी। उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी के समय में हिन्दी-साहित्य में उत्कृष्टता न आ पायी थी। उसे उत्कृष्ट बनाने का कार्य तो इन्हीं महाकवि के द्वारा हुआ। आचार्य शुक्लजी के शब्दों में —"तुलसीदासजी के रचना-विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से सबके सौन्दर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणी में दिखाकर साहित्य में प्रथम पद के अधिकारी हुए। हिन्दी कविता के प्रेमी मात्र जानते कि उनका ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। ब्रज-भाषा का जो माधुर्य हम सूरसागर में पाते हैं, वहीं माधुर्य और भी संस्कृतरूप में हम गीतावली और कृष्णगीतावली में पाते हैं। ठेठ अवधी की जो मिठास हमें जायसी के 'पद्मावत' में मिलती है, वही जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, बरवा रामायण और रामलला नहछू में हम पाते हैं। यह सूचित करने की आवश्यकता नहीं कि न तो सूर का अवधी पर अधिकार था और न जायसी का ब्रज भाषा पर।[१]

१—आचार्य शुक्ल प्रणीत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' परिवर्द्धित संस्करण पृ० १३४ देखिए।

६—धार्मिक दृष्टिकोण

गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' में समाज के आदर्श का विस्तृत विवेचन करते हुए धार्मिक दृष्टिकोण से उन्होंने अपनी एक विशिष्ट धार्मिक मर्यादा की स्थापना के लिए तत्कालीन-प्रचलित अनेक मतों एवं पंथों से बड़ी उदारतापूर्वक समझौता किया। गोस्वामीजी के समय में जनता विविध मतों में विभक्त हो चुकी थी, जिसमें शैव, शाक्त और पुष्टिमार्ग का वैष्णव से बड़ी प्रतिद्वन्दिता थी। गोस्वामीजी ने इनसे विरोध करना अच्छा न समझा, बल्कि उदारतापूर्वक उसे अपने ही आदर्श में मिला लिया। फल यह हुआ कि थोड़ा-थोड़ा सब सब मतों और पंथों का इन्हें मिला, जिससे इनकी शक्ति और भी बढ़ गयी। पारस्परिक विरोध सर्वदा के लिए नष्ट हो गया। मुस्लिम धर्म की समकक्षता में इस संगठन से बड़ी शक्ति प्राप्त हुई। विभिन्न मतमतान्तरों में बटी जनता राम-भक्ति की ओर मुड़ी और राम-भक्ति के प्रचार के लिए पृष्ठभूमि बन गयी। शैव, शाक्त और पुष्टिमार्ग को जिस प्रकार गोस्वामीजी ने अपने आदर्श में सम्मिलित किया, उसका यहाँ थोड़ा वर्णन करना अनुचित न होगा।

शैवमत—भगवान श्रीरामचन्द्रजी के मुंह से :—

"करिहौं इहां संभु थापना। मोरे हृदय परम कल्पना।"
"शिवद्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।"
"संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥"

"संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक महँ बास॥"
"औरउ एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि॥
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥"

शाक्तमत—वैदेही जानकी के मुंह से:—

"नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ वेद नहिं जाना॥
भव भव विभव पराभव कारनि। विश्व विमोहनि स्वबस बिहारनि॥"

पुष्टिमार्गीमत—

"अब करि कृपा देहु वर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥"
"सोइ जानइ जेहि देउ जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई॥
तुम्हरिहिं कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चन्दन॥"
"राम भगति मन उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके॥"
"चतुर सिरोमनि तेइ जगमाहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥"

इस प्रकार भगवान श्रीरामचन्द्रजी के व्यक्तित्व में शैव, शाक्त और पुष्टि-मार्ग के आदर्शों को समाहित कर तुलसीदास ने वैष्णव-धर्म को पुष्ट कर दिया है। तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे, जिनके सामने ज्ञान का उतना महत्व नहीं था, जितना भक्ति का। ज्ञान की अपेक्षा गोस्वामीजी ने भक्ति को विशेष महत्व तो दिया; किन्तु ज्ञान और भक्ति में कोई विशेष अन्तर नहीं माना है:—

"ग्यानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भवसंभव खेदा॥"

यदि कुछ अन्तर है भी तो:—

"ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥

पुरुष त्याग सक नारिहिं जो बिरक्त मतिधीर।
न तु कामी बिषया बस बिमुख जो पद रघुबीर॥"

"मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहिं सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥"

इसलिए भक्ति पर माया का कोई प्रभाव नहीं हो सकता। ज्ञान की साधना बड़ी कठिन होती है। इस कठिन साधना में जो सफल होते हैं, वे मुक्ति पा जाते हैं, किन्तु सभी उसे प्राप्त भी नहीं कर सकते, क्योंकि यह साधना बड़ी कष्ट-साध्य है—

"ग्यान क पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥"

गोस्वामीजी ने इस प्रकार भक्ति और ज्ञान का विरोध दूरकर धार्मिक प्रवृत्तियों में एकता की स्थापना कर दी। ज्ञान मान्य तो है, किन्तु भक्ति की उपेक्षा करके नहीं, ठीक इसी प्रकार भक्ति का विरोध भी ज्ञान से नहीं। इसका संकेत अरण्य-काण्ड में देखिए:—

'सुनि मुनि तोहिं कहौं सहरोसा। भजहिं जे मोहिं तजि सकल भरोसा॥
करौं सदा तिन्हकै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहं राखइ जननी अरगाई॥
प्रौढ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिल बाता॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥
जनहिं मोर बल निज बल ताही। दुहुँ कहं काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहिं भजहीं। पाएहु ग्यान भगति नहिं तजहीं॥"

अर्थात् ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए, भगवान श्रीरामचन्द्रजी ने इसका निर्देश किया है:—

"धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलै जो सन्त होहिं अनुकूला॥"

अर्थात् ज्ञान-विज्ञान भी भक्ति के अन्तर्गत है, क्योंकि भक्ति से ही ज्ञान की सृष्टि होती है तथा ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति की स्थिति रहती है; दोनों एक दूसरे पर अवलंबित हैं, दोनों से विरोध नहीं है.—

"जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी ॥"

भक्ति के अनेक साधन गोस्वामीजी ने गिनाए हैं, जो सभी प्रायः वर्णाश्रम-धर्म के दृष्टिकोण से हैं। देखिए भक्ति के साधनों का उल्लेख कवि के ही शब्दों में:—

"भगति कि साधन कहौं बखानी। सुगम पन्थ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं ॥"
संतचरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें ॥

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं नि:काम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ॥

भक्ति की सर्वोच्च साधना ही तुलसीदासजी के धर्म की मर्यादा है। इन्होंने अपने धर्म की जो रूप-रेखा निश्चित की थी, वह अत्यन्त सरल साधनों के द्वारा ही निर्मित थी, जिसमें दोष आ जाने का भय था। अतः कबीर-पंथियों की भाँति उनकी भक्ति के अन्तर्गत वाह्याडम्बर और छल-कपट न आ जाय, इस दोष से बचते रहने के लिए ही उन्होंने सन्तों के लक्षण भी बता दिए:—

"सुनु मुनि संतन के गुन कहऊँ। जिन्हतें मैं उन्हके बस रहऊँ ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचिसुख धामा ॥
अमित बोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी ॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥

गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती ॥
जप तप व्रत दम संजम नेमा । गुरु गोबिन्द विप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
विरति विवेक बिनय बिग्याना । बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत सीला ॥

इसके अतिरिक्त पाप और धर्म की पहचान के लिए तुलसीदासजी ने निम्न प्रकार से व्याख्या कर दी है:—

'नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥'
'सत्यमूल सब सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥'
'धर्म कि दया सरिस हरिजाना । अघ कि पिसुनता सम किछु आना ॥'
'परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥'
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा । पर निन्दा सम अघ न गरीसा ॥

———

७—'मानस' में भाव-पक्ष और शब्द-शिल्प

'मानस' में भावाभिव्यंजना का जो समाहार मिलता है वह ग्रन्थ के महत्व को बढ़ाता है । तुलसीदास ने मानव-हृदय की सृष्टि-व्यापिनी सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रवृत्तियों का 'मानस' में जिस कुशलता से विश्लेषण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । मानव की विभिन्न परिस्थितियों में जितनी मनोदशाएँ संभव हो सकती हैं, अपने स्वाभाविक चरित्र-शक्ति के साथ उनका प्रकाशन कितना सफल है यहाँ थोड़ा-सा विवरण उपस्थित करना आवश्यक है:—

१—"गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव हिंस बाजि चहुँ ओरा।।"
निदरि घनहिं घुर्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिय न काना।।"

गज-गरजहिं, घण्टा धुनि घोरा, रथ रव, बाजि-हिंस और निदरि घनहिं, घुर्मरहिं निसाना आदि शब्दों के द्वारा भावों के अनुरूप ही शब्दों के प्रयोग कितने उत्कृष्ट हैं।

२—"राज कुँवर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए।।"
वाले प्रसंग में 'जिन्हकें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी।।'
में:—"देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रस घरे सरीरा।।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी।।
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।।
पुर बासिन्ह देखे दोउ भाई। नर भूषन लोचन सुखदाई।।

नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप।।

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा।।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे।।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसुसम प्रीति न जाति बखानी।।
जोगिन्ह परमतत्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा।।
हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता।।
रामहिं चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुख नहिं कथनीया।।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कबि कोऊ।।"

उपर्युक्त प्रसंग में कवि ने राम के प्रति जिसकी जैसी भावना थी, उसने वैसे ही उनको देखा, किन्तु कितनी बड़ी विशेषता यह है कि योगियों और जानकी की भावनाओं के लिए जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वह विशेषताओं से संयुक्त है। योगी अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में करके परमतत्व की अनुभूति करता है; क्योंकि योगियों के लिए परमतत्व आभासित होता है। वह नेत्र का ही विषय नहीं है कि उसे देखा जाय, किन्तु वह आभासित होने का ही विषय है। इसी लिए जोगिन्ह परमतत्वमय भासा।" और राम की ओर चितै कर जानकी

जिस सुख और सनेह का अनुभव करती हैं, वह अकथनीय है, उसे वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता; क्योंकि 'प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहिं नहिं बयना।'

३—तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवत जेहि तेही॥

जिस-तिस से विनय करना हृदय की अस्थिरता का कितना सफल चित्रण है।

४—दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू॥

इस स्थल पर शब्दों की ध्वनि से ही भाव सजीव हो उठा है।

५—"हमहिं देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भयनाहीं॥
। तुम्ह आनंद करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजत ए आए॥"

स्वर्ण-मृग के बध की उमंग में आकर श्रीरामचन्द्रजी ने जानकी को खो दिया था। उसको स्मरणकर श्रीरामचन्द्रजी के हृदय का क्षोभ कितना करुण और मार्मिक है।

६—"दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुम्भकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥"

अथवा ७—"सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मैं तोरे॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह भै परतीती॥

'रावन नाम बीर बरिबंडा' और बल, महाबल, अमित बल, क्रम से अपना-अपना अलग महत्व रखते हैं; इसी प्रकार लंका में 'भट', 'सुभट', महाभट' और 'दारुण भट' चार प्रकार के योद्धाओं का वर्णन है यथा :—

'रहे तहाँ बहु भट रखवारे', 'फेरि सुभट लंकेस रिसाना', रहे महाभट ताके संगा', 'कपि देखा दारुण भट आवा।' आदि हैं।

भावनाओं के अनुरूप शब्दों का प्रयोग तुलसीदास की सबसे बड़ी विशेषता है। दो उदाहरण और लीजिए :—

(८) राम चरन सरसिज उर राखी । चला प्रभंजन सुत बल भाखी ।

जब कपिवर हनुमान ने कहा कि मैं संजीवनी अभी लिए आता हूँ, तो उनके लिए 'पवन सुत', 'समीर सूनु' आदि शब्दों का प्रयोग न कर प्रभंजन (आँधी) सुत कहकर उनकी तीव्रगामिता का वर्णन किया है ।

९—चूड़ामणि उतारि तब दयऊ । हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥

जिन स्त्रियों के पति जीवित रहते हैं उनके लिए 'उतारि' शब्द का प्रयोग नहीं होता, बल्कि 'निकारि' शब्द ही प्रयुक्त हो सकता है; क्योंकि स्त्रियाँ जिस समय विधवा होती हैं, उसी समय में आभूषण उतारती हैं और फिर कभी उसे धारण नहीं करतीं और पति के जीवित रहने पर जो आभूषण निकालती हैं, उसे फिर धारण कर सकती हैं । इस परम्परा को रहते हुए भी गोस्वामीजी को जब जानकी सधवा स्त्री हैं, तब उनके लिए चूड़ामणि 'उतारि तब दयऊ' नहीं लिखना चाहिए था; किन्तु कारण विशेष से ही 'उतारि' शब्द प्रयुक्त हुआ है । अयोध्या कांड में जब वन-गमन के प्रसंग में श्रीरामचन्द्रजी ने कहा :—

"हंस गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू । सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥
नव रसाल बन बिहरनसीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चंद बदनि दुखु कानन भारी ॥"

इसे सुन जानकी ने जो उत्तर दिया उसका कुछ अंश इस प्रकार है :—

"तनु धनु धाम धरनि पुर राजू । पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषन भारू । जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥"

अर्थात्—"हे राम ! आपके वियोग में सम्पूर्ण भोग रोग के समान एवं आभूषण भार के समान हैं ।"

तो जब जानकी राम से अलग वियोगावस्था में लंका में पड़ी हैं, तब चूड़ामणि उन्हें भार (बोझ) की तरह लग रहा है और भार उतारा ही जाता है;

निकाला नहीं ! इस प्रकार सम्पूर्ण राम-चरित-मानम में विशेषताएं भरी पड़ी हैं, चाहे जहाँ इसकी परीक्षा की जा सकती है ।

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' में अपने अध्ययन और काव्य-ज्ञान से साहित्य के आदर्शों को ग्रहण करते हुए भी अपनी मौलिकता की छाप छोड़ दी है। परम्परा से आती हुई राम-कथा को लेकर राम के चरित्र में उन्होंने समाज की आदर्शभूत आवश्यकताओं का समावेश किया है। 'राम-कथा' के जिस अंश को उन्होंने आवश्यक समझा उसे ग्रहण कर और जिसे अनुपयुक्त समझा उसे छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी अनुभूतियों का भी प्रयोगकर राम-कथा को फिर से सजीवकर दिया। कविवर श्री 'वेनी' जी के शब्दों में —

"वेदमत सोधि, सोधि-सोधि के पुरान सबै सन्त औ असन्तन को भेद को बतावतो
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव कौन राम नाम हू की चरचा चलावतो ॥
'बेनी' कवि कहै मानो मानों हो प्रतीति यह पाहन हिए में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो ॥"

अब यहाँ इस स्थल पर गोस्वामी तुलसीदासकृत अन्य राम-कथा सम्बन्धी रचनाओं पर भी कुछ विचार किया जायगा। 'राम-कथा' सम्बन्धी इन रचनाओं पर विचार कर लेने के पश्चात् हम तुलसी के 'राम-कथा' की दार्शनिक पृष्ठभूमि और भाषा सम्बन्धी विचार प्रकट करेंगे।

८—कवि की अन्य राम-कथा संबंधी श्रेष्ठ रचनाएँ

(अ) दोहावली—बेणीमाधवदास के अनुसार इसका रचनाकाल संवत् १६४० है, किन्तु कुछ विद्वानों ने इसकी रचना-तिथि १६६५ से १६८० के बीच माना है. जो भी हो, इसकी रचना दोहों में है। इसमें ५७३ दोहे हैं। इस ग्रन्थ में अन्य ग्रन्थों के दोहे भी संग्रहीत हैं, जैसे 'मानस' के ८५ दोहे,

सतसई के १३१, रामाज्ञा के ३५ और वैराग्य-संदीपनी के २ दोहे हैं; शेष दोहे नए हैं, इसमें २० सोरठे भी हैं। यह ग्रन्थ दोहा और सोरठा छन्द में लिखा गया है। 'दोहावली' के अन्तर्गत कवि ने नीति, भक्ति, राम-महिमा, नाम-माहात्म्य, राम के प्रति चातक के आदर्श का प्रेम तथा आत्म-विषयक उक्तियों की हृदयग्राही रचना की है। चातक की अन्योक्तियों द्वारा तुलसीदासजी ने अपनी अनन्य भक्ति का आभास दिया है। इसी प्रकार कलिकाल वर्णन में तत्कालीन परिस्थियों पर अच्छा प्रकाश डालने का प्रयत्न दीखता है। इसमें आए हुए कुछ दोहे ऐसे भी हैं, जो मनोवेगों का स्वाभाविक चित्रण करते हैं। इसमें घन और चातक का जो अविचल और अनन्य प्रेम है, वह अलौकिक है और अत्यन्त उत्कर्ष पर पहुँचा हुआ है। कुछ दोहे नीचे दिए जा रहे हैं :—

> 'चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि।
> प्रेम तृषा बाढति भली, घटे घटेगी आनि॥"
> "जीव चराचर जहँ लग, है सबको हित मेह।
> तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह॥"
> "नहिं जाँचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ।
> ऐसे मानी माँगनेहिं को बारिद बिनु देइ॥"
> "एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
> एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥"

किन्तु वह चातक कैसा है।

> "उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
> चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥"
> "बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
> तुलसी चातक-प्रेम-पट, मरतहुँ लगी न खोंच॥"

अर्थात् चातक का प्रिय लोक मंगलकारी, लोक-संग्रही और लोक-कल्याण-कारी है। चातक के प्रिय का यही लोक मंगलकारी रूप तुलसीदास के प्रिय का भी है उस राम को तुलसी ने सीता के पति के रूप में, लक्ष्मण के भाई के रूप

में, दशरथ के पुत्र रूप में, हनुमान के स्वामी रूप में चित्रित किया है; देखिए वह कितना मार्मिक है ।

"कबहुँ नयन मम सीतल ताता । होइहिं निरखि स्याम मृदु गाता ।"

उसी घनश्याम की ओर आशाभरी दृष्टि से जानकी राम के वियोग में पड़ी लंका में जी रही हैं । चातक के द्वारा कवि ने अपनी अनन्यभक्ति का बड़ा सजीव चित्रण किया है ।

(आ) कवितावली—इसका रचनाकाल अधिकांश विद्वानों ने सं० १६६६ के निकट माना है । रचना से जान पड़ता है, समय-समय पर लिखे गए कवित्तों का इसमें संग्रह है । कुल छन्द सं० ३२५ है । सारी रचना सात कांडों में 'मानस' की भाँति विभक्त है । २२ छन्द बाल-काण्ड में, २८ छन्द अयोध्या-काण्ड, में, १ छन्द अरण्य-काण्ड में, १ छन्द किष्किन्धा-काण्ड में, ३२ छन्द सुन्दर-काण्ड में, ५८ छन्द लंका-काण्ड में और १८३ छन्द उत्तर-काण्ड के अन्तर्गत लिखे गए हैं । ग्रन्थ भर में सब से अधिक विस्तार उत्तर-काण्ड का है, जिसमें कवि ने विभिन्न-विषयों पर स्फुट रचना की है । कवित्त, सवैया, झूलना और छप्पय छन्दों में इस ग्रन्थ की रचना हुई है । क्योंकि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के ऐश्वर्य और शक्ति के चित्रण में ये ही छन्द उपयुक्त थे । रामचरित की सम्पूर्ण घटनाओं का विस्तृत वर्णन न कर ऐश्वर्य सम्बन्धी अर्थात् युद्धादि का बड़ा ओजस्वी वर्णन इसमें विशेष रूप से आया है । 'मानस' की भाँति इसमें नियमित रूप से कथा का विस्तार काण्डों में नहीं हुआ है । अरण्य और किष्किन्धाकाण्ड में एक-एक छन्द देकर मात्र काण्डों का निर्वहण किया गया है । कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि कथा-सूत्र सर्वथा छिन्न-भिन्न रूप में है । आगे चलकर उत्तर-काण्ड में राम-कथा से सम्बन्धित न होकर रचना व्यक्तिगत घटनाओं तत्कालीन परिस्थितियों और स्फुट भावों पर ही प्रकाश डालती है । जैसे सीतावट, काशी, कलियुग की अवस्था, बाहुपीर, रामस्तुति, गोपिका-उद्धव-संम्वाद, हनुमान-स्तुति और जानकी-स्तुति आदि स्वतंत्र विषय हैं । इनके पहले भी जो घटनाएँ रामचरित सम्बन्धी हैं वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं । 'मानस' की भाँति वे विस्तारपूर्वक नहीं लिखी गयी हैं । मात्र सात छन्दों में रामकी बाल-लीला का वर्णन है, इसके

पश्चात् सीता-स्वयम्बर का वर्णन आता है, जिसमें विश्वामित्र आगमन और अहल्या-उद्धार की घटनाओं का वर्णन नहीं आने पाया है। इसके अतिरिक्त जो कथाएँ आयी हैं, वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं। इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड में जिन प्रसङ्गों एवं पात्रों से श्रीरामचन्द्रजी की श्रेष्ठता और भक्त के आत्मसमर्पण की भावना दिखाई पड़ती है, उन्हें छोड़कर शेष कथा बहुत अस्त-व्यस्त है। घटनाओं के वर्णन में प्रबन्धात्मकता का दृष्टिकोण न रखने से कवि ने पारस्परिक संबन्ध का निर्वाह नहीं किया है। कैकेयी के वरदान का जिक्र भी न करके कवि ने राम-वन-गमन से काण्ड प्रारम्भ कर दिया है, जिसमें आगे चलकर केवट मुनि और ग्राम-वधू के चित्र अत्यन्त मार्मिक और खरे उतरे हैं:—

"रानी मैं जानी अयानी महा पवि पाहनहूँतें कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो कह्यो तिय को जिन कानकियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि राखिबे जोग, इन्हे किमि कै बनबास दियो है॥"

इसी प्रकार एक और छन्द है जिसमें भगवान श्रीरामचन्द्रजी की मर्यादा-पालन और उनकी शालीनता पर प्रकाश डाला गया है:—

"सीस जटा उर बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहैं॥"
तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग के सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछति ग्राम बधू सिय सों, कहौ, साँवरे से सखि रावरे को हैं॥
सुनि सुन्दरि बैन सुधा रस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु-उदै बिगसीं मनो मंजुल कंजकली॥"

उपर्युक्त छन्दों में 'चितै तुम्ह त्यों' 'तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली' में कवि ने एक में रामचन्द्रजी में एक पत्नीव्रत की मर्यादा का पालन करने का कितना सुन्दर संकेत दिया है। क्योंकि गांव की स्त्रियों ने

'चितै तुम त्यों' ही कहा, और: 'चितै हमत्यों नहीं कहा, पर स्त्री की ओर न निहारनेवाली मर्यादा का कितना सुन्दर चित्रण है और दूसरे छन्द में महारानी जानकी ने जिस ढग से समझाया कि श्रीरामचन्द्र मेरे पति हैं, वह अत्यन्त मार्मिक होकर जानकीजी की शालीनता पर अच्छा प्रकाश डाल रहा है।

अरण्य-काण्ड में एक छन्द देकर जिसमें "हेम कुरंग के पीछे रघुनायक धाए" देकर शेष कथा को कवि ने छोड़ दिया। जानकी-हरण जैसे महत्वपूर्ण घटना का भी संकेत नहीं मिलता। इसी प्रकार किष्किन्धा-काण्ड में भी सुग्रीव-मित्रता एवं बालि वध आदि घटनाओं का वर्णन न आकर केवल हनुमानजी का समुद्रोलंघन संबंधी एक छन्द दे दिया गया। कथा की दृष्टि से इसी प्रकार सुन्दर काण्ड भी महत्वहीन है, किन्तु रस की दृष्टि से बहुत ही श्रेष्ठ है। रौद्र और भयानक रसों का वर्णन तो 'मानस' से भी बढ़ कर है। इसका कारण यही है कि इन रसों के वर्णन में घनाचरी छन्द का उपयुक्त-प्रयोग है, जो कि मानस में नहीं अपनाया गया है। लंका-दहन के वर्णन में क्रोध और भय की भावना स्थायी रूप से रहने के कारण भयानक और रौद्र रसों के उद्रेक में सहायक है, देखिए कितना प्रभावकारी भय है :—

'लागि, लागि आगि भागि-भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार-बसन उघारे धूम धुन्ध अन्ध,
कहैं बारे बूढ़े 'बारि-बारि' बार-बारहीं॥
हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं॥
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति,
तात, तात! तौंसियत झौंसियत झारहीं॥ १५॥"
"लपट कराल ज्वाल-जाल-माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने, पहिचाने कौन काहि रे।
पानी को ललात बिललात जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात तू निबाहि रे।

प्रिया ! तूँ पराहि, नाथ ! नाथ ! तू पराहि बाप !
बाप ! तूँ पराहि पूत ! पूत ! तू पराहि रे ।।'
'तुलसी' बिलोकि लोग ब्याकुल बेहाल कहैं,
लेहि दससीस ! अब बीस चख चाहि रे ॥ १६ ॥"

कपि हनुमान् के अमित पराक्रम से लंका-निवासी अत्यन्त भयभीत ब्याकुल हो गये हैं :—

"बीथिका बाजर प्रति, अटनि अगार प्रति,
पवरि-प्रगार प्रति बानरु बिलोकिए ।
अर्ध-ऊर्ध बानर, बिदिस दिसि बानरु है,
मानो रह्यो है भरि बानरु तिलोकिए ॥
मूँदें आँखि हिय में, उघारें आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ, तहाँ और कोउ कोकिए ।
लेहु, अब लेहु, तब कोउ न सिखावो मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए ॥१७॥

एक विभत्स-दृश्य का भी उदाहरण लीजिए:—

'हाट-बाट हाटकु पिघिलि चलो घी-सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति तायसों ।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि-पागि ढेरी कीन्हीं भली-भाँति भायसों ।।
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाए चित-चाय सों ।
'तुलसी' निहारि अरि नारि दै दै गारि कहैं,
बावरे सुरारि बैरु कीन्हों रामराय सों ॥२४॥

लंका-काण्ड में, जिसमें कवि ने अङ्गद-रावण और मन्दोदरी-रावण सम्वाद विस्तार से वर्णन कर युद्ध-वर्णन प्रारम्भ कर दिया है, कथा नियमित रूप से नहीं चल पायी है। रस के विचार से इसमें भी वीर, रौद्र तथा वीभत्स

रसों का अच्छा वर्णन मिलता है, किन्तु 'मानस' की भाँति राम और हनुमान का युद्ध राक्षसों के साथ किस प्रकार हुआ, इसमें वैसा नहीं है। इसमें तो राम का युद्ध संक्षेप में है और हनुमान् का विस्तृत। वीर तथा रौद्र रस के वर्णन हनुमान्जी के युद्ध में देखे जा सकते हैं:—

"जो दससीस महीधर ईसु को बीस भुजा खुलि खेलनहारो।
लोकप, दिग्गज, दानव देव, सबै सहमे सुनि साहस मारो॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हन्यो मुठिकाँ गिरिगो गिरिराजु ज्यों गाज को मारो॥"

"साजि के सनाह-गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाए बीर जातुधान धीर के।
इहाँ भालु बन्दर बिसाल मेरु-मन्दर से,
लिए सैल-साल तोरि नीरनिधि तीर के॥

तुलसी तमकि-ताकि भिरे भारी युद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहे निज-निज भट भीर के।
रुंडन के झुण्ड झूमि झूमि झुकने से नाचैं,
समर सुमार सूर मारैं रघुबीर के॥"

'मानस' की भाँति राम-कथा उत्तर-काण्ड तक नहीं आ पायी है। लङ्का-काण्ड में ही वह समाप्त हो जाती है।

उत्तर-काण्ड इस ग्रन्थ का बृहत् अंश है। इसमें कवि ने नीति, भक्ति तथा आत्म-चरित्र का विशेष वर्णन किया है। इस प्रकरण में कितनी ही बातें कवि ने अपनी व्यक्तिगत लिखी हैं। जिससे इसके द्वारा कवि के जीवन के सम्बन्ध में अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस काण्ड में शान्त-रस के वर्णन अधिक मिलते हैं। इसके साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण, पौराणिक कथाएँ, भ्रमरगीत, कलि से विवाद और देवताओं की स्तुति के विवरण भी मिलते हैं। उत्तर-काण्ड राम-कथा से सम्बन्धित न होकर स्वतंत्र है। समग्र कवितावली में भयानक-रस का जितना सुन्दर वर्णन विस्तार के साथ मिलता है, वह हिन्दी-साहित्य में बेजोड़ है।

(३) गीतावली—इसका रचना काल कुछ लोग सं० १६२८ मानते हैं[1] और कुछ लोग सं० १६४३ मानते हैं।[2] यह कृति ग्रन्थ के रूप में सम्यक् न लिखी जाकर स्फुट पदों में ही रची गयी है। इसमें कोई मंगलाचरण नहीं है। श्रीरामचन्द्रजी के जन्मोत्सव से ही इसकी रचना प्रारम्भ होती है। 'मानस' की भाँति भगवान् राम के जन्म के कारणों का न तो उल्लेख है और न उसकी सब कथाएं ही वर्णित हैं। यह ग्रन्थ भी सात काण्डों में विभक्त है। इसमें कुल मिलाकर ३२८ पद ही रचे गये हैं। बाल-काण्ड में १०८, अयोध्या-काण्ड में ८६, अरण्य-काण्ड में १७२, किष्किंधा-काण्ड में २, सुन्दर-काण्ड में ५१, लंका-काण्ड में २३ और उत्तर-काण्ड में ३८ पद हैं। 'मानस' की भांति सभी काण्डों की कथा का पूर्ण-निर्वाह नहीं किया गया है। क्योंकि अयोध्या-काण्ड में प्रथम पद में ही वशिष्ठ से रामराज्याभिषेक के निमित्त दशरथजी की विनय है, दूसरे में राम-वनवास और माता कौशिल्या द्वारा राम को वन न जाने की प्रार्थना है, कैकेयी के वरदान वाली सभी विदग्धतापूर्ण कथाओं का वर्णन नहीं आने दिया गया है। 'मानस' की भाँति इस ग्रन्थ में कवि को चरित्र-चित्रण में सफलता नहीं प्राप्त हुई है। इसका भी कारण यही है कि इसमें भी घटनाओं की विशृङ्खलित वर्णना है। यदि 'गीतावली' स्फुटरूप में न लिखी गयी होती, तो चरित्र-चित्रण में कवि को अवश्य सफलता प्राप्त होती।

राम-कथा की रचना पदों में करने की प्रेरणा तुलसीदास को सूरसागर से मिली; क्योंकि 'गीतावली' के अनेक पद भी सूर-सागर के कुछ पदों से मिलते हैं। कहीं-कहीं तो इनमें इतनी समानता है कि 'तुलसी' और 'सूर' तथा 'राम' और 'श्याम' का ही अन्तर होता है और शेष पद ज्यों-के-त्यों एक-से हैं। इसके अतिरिक्त 'गीतावली' में बाल-वर्णन सूरसागर के ही समान विस्तार के साथ मिलता है, जब कि कवि ने अन्य ग्रन्थों—कवितावली', 'मानस'—आदि में बहुत संक्षिप्त रूप से इस प्रसंग को वर्णित किया है। जिस प्रकार सूरसागर में यशोदा श्रीकृष्ण के वियोग में अनेक कल्पनाएं करती हैं, अनेक पूर्व स्मृतियों को जगाती हैं, उसी प्रकार तुलसीदास ने भी माता कौशल्या का राम के वियोग

१—श्रीवेणी माधवदास का मत। २ डाक्टर श्रीरामकुमार वर्मा का मत।

में 'गीतावली' के अन्तर्गत चित्रण किया है। सूरसागर के समान ही 'गीतावली' में—रामराज्य में हिंडोला, वसन्त, होली और चाँचर-वर्णन मिलते हैं। इतना होते हुए भी 'सूरसागर' और 'गीतावली' के बाल-वर्णन में अन्तर है। साधारण तथा स्वाभाविक परिस्थितियों के वर्णन में गोस्वामीजी ने भगवान राम के उत्कृष्ट व्यक्तित्व और ब्रह्मत्व का ध्यान रखा है, जिससे मर्यादा का अतिक्रमण न होने पावे। गीतावली' का बाल-वर्णन वर्णनात्मक अधिक है; क्योंकि उसमें स्थिति का संपूर्ण निरूपण हुआ है। किन्तु 'गीतावली' का बाल-वर्णन अभिनयात्मक नहीं माना जा सकता। पात्रों के सम्भाषण के कुछ अभाव के कारण राम के शृंगार-वर्णन के प्रसङ्ग में मनोवेगों का स्थान गौण हो गया है। सूरसागर में मनोवैज्ञानिक भावनाओं का जो वर्णन पात्रों के अभिनय का रूप देकर सूरदास ने किया है, वह 'गीतावली' के ऐसे वर्णनों से श्रेष्ठ है। क्योंकि स्वाभाविक बाल-चेष्टाओं के अन्तर्गत स्वतन्त्रता, चञ्चलता और चपलता आदि की सृष्टि न करके तुलसीदासजी अपने आराध्य-देव श्रीरामचन्द्रजी के सौन्दर्य-चित्रण—उनके अंग, वस्त्र तथा आभूषण आदि के वर्णन में भी मर्यादा का सर्वथा ध्यान रखते ही रहे। उन्हें भय था कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के मनोवेगों के स्वाभाविक चित्रण में कहीं मर्यादा का उल्लंघन न हो जाय। सूरदास की भक्ति सख्यभाव के अन्तर्गत होने से विस्तृत क्षेत्र का उन्हें अवसर था। वे अधिक से अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक भावों की सृष्टि कर सकते थे, किन्तु महात्मा तुलसीदास की भक्ति दास्यभाव के अन्तर्गत थी, जिसके भीतर दृष्टि-विस्तार की क्षमता होनेपर भी मर्यादा के बाहर झाँकना वर्जित होने से कवि को एक संकुचित घेरे में ही रह जाना पड़ा। इसलिए रामचन्द्रजी नागरिक-जीवन से मर्यादित होने के कारण (मर्यादा पुरुषोत्तम होने के कारण) उच्छृङ्खलता के सम्पर्क में न लाए जा सके और कवि को उनके प्रायः बहुरूप-वर्णन में ही संतोष करना पड़ा। जहाँ सूरदास को भगवान् श्रीकृष्ण के अनेक गोपियों के सम्पर्क में आने और उनसे प्रेम करने जैसे विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के लिए अवसर था, वहां राम के एक पत्नीव्रती और अत्यधिक संयमी होने के कारण कवि तुलसीदास को सूर की भाँति व्यापक क्षेत्र ही नहीं मिल पाया, जिससे उन सभी बालचेष्टाओं को वे न अङ्कित कर सके। अत्यन्त संकुचित दायरे में भी रह कर कवि ने अपनी काव्य-कुशलता का जितना परिचय दिया है, वही क्या कम है?

वर्ण्य-विषय—गोस्वामी तुलसीदास के ग्रन्थों में कलेवर की दृष्टि से 'मानस' के पश्चात् 'गीतावली' ही है। इसमें समग्र राम-चरित्र पदों में वर्णित है। किन्तु 'मानस' की अपेक्षा इसकी वर्णन-शैली, दूसरे ढंग की है, 'मानस' महाकाव्य है, उसमें सभी रसों का सांगोपांग वर्णन है, यहाँ कवि-हृदय के समग्र भावों का गम्भीर विश्लेषण देखने में मिलता है। किन्तु 'गीतावली' की रचना गीतों में मुक्तक रूप से हुई है, जिसमें आद्योपान्त कवि का एक ही भाव देखने में आता है सच तो यह है कि आराध्य से आत्म-निवेदन की प्रसन्नता में रचना गेय हो जाती है तथा भावना के घनीभूत होने से संक्षिप्तता आ जाती है सफल गीति-काव्य के विद्वानों के द्वारा चार लक्षण गिनाए गए हैं:—१—आत्माभिव्यक्ति, २—विचारों की एकरूपता, ३—संगीत और ४—संक्षिप्तता। ये तत्व 'गीतावली' में पाए जाते हैं। इन तत्वों के संयोजन का प्रयत्न कवि ने किया है। इस रचना में प्रबन्धात्मकता की अपेक्षा न करके अपने इष्टदेव की मनोहर झाँकियाँ प्रस्तुत करने में कवि ललितभाव ही व्यक्त कर सका है। भगवान के रूप-माधुर्य अथवा करुण-रस का वर्णन कवि ने अन्य घटनाओं की अपेक्षा अधिक विस्तार से किया है, जितनी परुष घटनाएँ हैं; उनकी ओर तो कवि दृष्टिपात भी नहीं करता। इसी दृष्टिकोण से कवि ने कैकेयी-दशरथ-संवाद, लंका-दहन, राम-रावण-युद्ध आदि का वर्णन नहीं किया है। ये स्थल-गीत के कोमल एवं सरस उपकरणों के लिए अनुकूल नहीं पड़ सकते थे। संक्षेप में प्रत्येक काण्डों की समीक्षा इस प्रकार है:—

बाल-काण्ड—इसमें राम की बाल्यावस्था के अतीव सुन्दर और कोमल चित्र अंकित हैं। ४४ पदों में राम का बाल-चित्रण किया गया है। इसमें जनकपुर की स्त्रियों द्वारा राम को (किशोर मूर्ति की) सुन्दरता एवं उनके प्रति भक्ति-भावना की सर्वाङ्गीण पवित्र चित्रावली, उपस्थित करते हुए इस प्रसंग को कवि ने बहुत विस्तृत वर्णित किया है।

अयोध्या-काण्ड—इसमें दशरथ और कैकेयी के संवाद का वर्णन नहीं है। किन्तु प्रभु के तापस-वेष का वनमार्ग में ग्रामीण स्त्रियों द्वारा जो वर्णन किया गया है, वह भक्त के दृष्टिकोण से अत्यन्त श्रेष्ठ है। 'मानस' की अपेक्षा चित्र-कूट के प्रसंग में वसन्त और फाग के वर्णन भी मिलते हैं, जो कवि के

किसी दूसरे ग्रन्थ में नहीं मिलते। माता की करुणामयी भावना का वर्णन बड़ा ही सजीव है। इस काव्य में कथा की प्रधानता न होकर भावों की ही प्रधानता है।

अरण्य-काण्ड—इसमें भी 'मानस' की भाँति कथा का निर्वाह नहीं किया गया है, जयन्त-छल, अत्रि एवं अनुसूइया से तपस्वी वेष में राम-लक्ष्मण और सीता का मिलाप, विराध-वध, शरभंग, अगस्त एवं सुतीक्ष्ण से प्रभु-मिलन, शूर्पणखा-प्रसंग, खर-दूषण-वध, रावण और मारीच का वार्तालाप, राम और नारद का मिलन तथा उनका भक्ति-सम्बंधी संवाद, जो मानस में बिस्तारपूर्वक वर्णित है, इसमें नहीं लिया गया। इसका कारण जान पड़ता है कि ये घटनाएँ वर्णनात्मक और वीरात्मक हैं, जो कोमल भावनाओं से युक्त न होने के कारण छोड़ दी गयी हैं। रामचन्द्रजी की भक्तवत्सलता से सम्बन्धित होने के कारण गीध-प्रसंग पूर्वपक्ष में वीरतापूर्ण होने पर भी ले लिया गया है। शबरी के प्रसंग में भी यही बात है। इस काण्ड में कोमल भावनाओं का सुन्दर वर्णन है।

किष्किन्धा-काण्ड—इसमें मात्र दो पद लिखे गए हैं। कथा की दृष्टि से तथा 'मानस' में वर्णित प्रकृति-चित्रण के साथ जो उपदेश दिया गया है, उसका इसमें सर्वथा अभाव है।

सुन्दर-काण्ड—इसमें 'मानस' की भाँति अशोक-वाटिका-विध्वंस एवं लंका-दहन जैसे प्रमुख प्रसंग छूट गए हैं। रस की दृष्टि से, इसमें वीर, वियोग-शृङ्गार और रौद्र-रसों के अतिरिक्त शान्त-रस को भी अपनाया गया है, यह काण्ड श्रेष्ठ है। विभीषण का राम के समीप आकर शरणागत होना, तुलसीदासजी का अपनी आत्माभिव्यक्ति का द्योतक है। वियोग-शृङ्गार के वर्णन में सीता के हृदय की मर्मस्पर्शिनी-व्यथा, वीर-रस में श्रीरामचंद्रजी का सैन्य-संचालन, रौद्र-रस में रावण के प्रति हनुमानजी की ललकार तथा शान्त रस में विभीषण के उद्गारों का वर्णन अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस काण्ड में गीति-काव्य का पूर्ण-निर्वाह करने का प्रयत्न किया गया है।

लंका-काण्ड इस प्रकरण में राम-रावण-युद्ध, जिसके आधार पर इस काण्ड का नामकरण भी 'युद्ध-काण्ड' किया गया है, नहीं वर्णित है। अंगद-रावण संवाद के बाद ही लक्ष्मण-शक्ति का वर्णन कर दिया गया है। इस काण्ड

में 'मानस' की भाँति वीररस का अधिक वर्णन होना चाहिए था, किन्तु वीररस के बदले करुणरस का वर्णन आया है। इसमें हनुमानजी की वीरता के कुछ पद आ गए हैं और इसी प्रकार कथा को संक्षिप्त करते हुए कवि ने लक्ष्मण-शक्ति के बाद ही भगवान राम की विजय एक ही पद में वर्णित की है।

उत्तर-काण्ड—इसका वर्णन वाल्मीकि-रामायण और कृष्ण-काव्य से प्रभावित है। इन दोनों के संग तुलसीदास की कथा-वर्णन की मौलिकता के दर्शन भी होते चलते हैं। रामराज्याभिषेक, सीता वनवास, लव-कुश-जन्म आदि कथाएं तो वाल्मीकि-रामायण की-सी हैं; हिंडोला, नख-शिख-वर्णन कृष्ण-काव्य-सा है। बाल-काण्ड के समान ही अवस्था भेद के साथ इस काण्ड के प्रारम्भ में भी 'मानस' की भाँति सम्पूर्ण राम-कथा का सारांश दे दिया गया है। इसमें हिंडोला आदि वर्णनों के आ जाने से रामचन्द्रजी की जिस मर्यादा का उचित संरक्षण 'मानस' में किया गया है, वह इस ग्रन्थ में नहीं हो पाया है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि गीतावली में भावनाओं की ही प्रधानता है, घटनाओं की नहीं। इसलिए इसमें कथा का अनियमित विस्तार है, जिसमें भावनात्मक-चित्रण विशेष मार्मिक हैं। राम का सौन्दर्य-वर्णन विशेष ढंग से मिलता है। लोक-शिक्षण की ओर कवि का ध्यान 'मानस' की भाँति नहीं गया। गीति-काव्य के आदर्शों के संरक्षण में 'मानस' की भांति सभी घटनाएँ नहीं आयी हैं, जैसे करुण तथा ओजपूर्ण स्थल तो सारी 'गीतावली' में छूट ही गए, हैं। इतना सब कुछ होने पर भी हृदय के विविध भावों की अभिव्यक्ति 'गीतावली' के मधुर पदों में हुई है। 'गीतावली' की रचना ब्रज भाषा में हुई हैं, जिसमें भाषा पर कवि का अच्छा अधिकार दिखायी पड़ता है। इसमें काव्य-कला की दृष्टि से सबसे अधिक मधुर भावों की अभिव्यक्ति है। डाक्टर श्रीरामकुमार वर्मा के शब्दों में-'तुलसीदास गीति-काव्य के अन्तर्गत केवल सौन्दर्य की सृष्टि कर सके, किसी उत्कृष्ट काव्यादर्श की नहीं। न तो वे 'विनय पत्रिका' के समान आत्म-निवेदन ही कर सके और न 'मानस' के समान कथा-प्रसंग की सृष्टि ही। अतः 'गीतावली' एकान्त 'माधुर्य' की रचना है।'[१]

१—डा० श्रीरामकुमार वर्मा कृत देखिए "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" द्वितीय संस्करण पृ० ४०३।

रस की दृष्टि से 'गीतावली' 'शृङ्गार-रस-प्रधान रचना है। डा० श्रीराम-कुमार वर्मा के शब्दों में—१—'यदि वात्सल्य को भी शृङ्गार-रस के अन्तर्गत मान लिया जावे, तब तो संयोग-शृङ्गार ही प्रधान हो जाता है, क्योंकि—राम का बाल-वर्णन संयोगात्मक अधिक है, वियोगात्मक कम। इसके पर्याय कृष्ण का बाल-वर्णन वियोगात्मक अधिक है, संयोगात्मक कम। २—'तुलसी ने जैसा चित्रण राम-कथा का किया है, उसके अनुसार भी शृङ्गार-रस को प्रधान स्थान मिलता है। राम के उन्हीं चरित्रों का दिग्दर्शन अधिक कराया गया है, जो कोमल भावनाओं के व्यंजक हैं। ३—"गीतावली का अन्तिम भाग कृष्ण-काव्य से प्रभावित होने के कारण भी अधिक शृङ्गारात्मक बन गया है। वसन्त और हिंडोला आदि अवतरणों ने तो शृङ्गार को और भी अतिरंजित कर दिया है।'[१]

'गीतावली' में राम का बाल-वर्णन, सीता-स्वयम्वर, विवाह, वन-गमन, चित्रकूट-दर्शन और राम के पंचवटी-जीवन का वर्णन तथा राम के नख-शिख और हिंडोला, वसन्त आदि के वर्णनों में शृङ्गार-रस के वर्णन की उत्कृष्ट पदावलियाँ मिलेंगी। इसके अतिरिक्त वियोग-शृंगार के वर्णन में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के वर्णन में वियोग शृंगार विशेष सफल हुआ है। अयोध्या-काण्ड में वियोग-शृंगार तो अपनी चरम सीमा पर है।

करुण-रस का वर्णन अयोध्या-काण्ड के पद १२ वें और ५७ वें (दशरथ-मरण के प्रसंग) में इसी प्रकार के पद दूसरे से चौथे तक कौशल्या-विलाप और लंका-काण्ड के लक्ष्मण-शक्ति के बाद राम-विलाप के अन्तर्गत पाँचवें से सातवें पद में मिलता है, जो अत्यन्त मार्मिक है। हास्य-रस को कवि ने तो जान पड़ता है, इसमें लाने की चेष्टा ही नहीं की। यह बाल-काण्ड के ६५ वें पद में वर्णित अवश्य है; किन्तु अन्य रसों की भाँति उत्कृष्ट नहीं है। वीर-रस के लिए यद्यपि इस गीति-काव्य संग्रह में विशेष उपयुक्त अवसर नहीं था, किन्तु सुन्दर-काण्ड के

१—देखिए 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'—डा०श्रीरामकुमार वर्मा कृत पृ० ४०३।

१२ वें–१४ वें पद में जहाँ हनुमान-रावण प्रसंग है; अरण्य-काण्ड के आठवें पद में जहाँ जटायु-रावण-युद्ध प्रसंग है और लंका-काण्ड में ८–९ तथा १०वें पद में जहाँ हनुमान का संजीवनी लाने के लिए प्रस्थान का प्रसंग है, उत्तम व्यंजना है। इसी प्रकार बाल-काण्ड के ८९ वें पद में धनुष-चढ़ाने के प्रसंग में राम तथा लक्ष्मण का उत्साह तथा धनुर्भंग की प्रचण्डता का वर्णन भी अत्यधिक वीरोल्लासपूर्ण है। जनक जी के कहने पर :—

> "सप्तदीप नव खंडभूमि के भूपति वृन्द जुरे।
> बड़ो लाभ कन्या कीरति को, जहँ तहँ महिप मुरे॥
> डग्यो न धनु जनु वीर-विगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे।"

वीर लक्ष्मण कहते हैं :—

> "रोपे लखन विकट भृकुटी करि भुज अरु अधर फुरे॥
> सुनहु भानु कुल कमल भानु ! जो अब अनुसासन पावौं।
> का बापुरो पिनाकु, मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं॥
> देखौ निज किंकर को कौतुक, क्यों कोदंड चढ़ावौं।
> लै धावों, भंजौं मृनाल ज्यौं, तौ प्रभु-अनुग कहावौं॥"

इसी प्रकार लक्ष्मण–मूर्च्छा पर राम को व्याकुलता देख हनुमानजी के वचन :—

> "जौं हौं अब अनुसासन पावौं।
> तौ चन्द्रमहिं निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं॥
> कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृतकुण्ड महि लावौं॥
> भेद भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
> विबुध-बेद बरबस आनौं धरि तौं प्रभु अनुज कहावौं॥
> पटकौं मीच नीच मूषक ज्यौं सबहि को बायु बहावौं॥"

इत्यादि वीर-रस के श्रेष्ठ नमूने हैं।

रौद्र तथा भयानक-रस के वर्णनों का अवसर कवि को मिल सकता था, वह था—राम रावण-युद्ध का स्थल, किन्तु इस ग्रन्थ में यह कथा आने ही नहीं

पायी है। इसके अतिरिक्त अयोध्या-काण्ड के ६० वें तथा ६१ वें पद में, जहाँ कैकेयी के प्रति भरत की और लंका-काण्ड में दूसरे तथा चौथे पद में रावण के प्रति अंगद की भर्त्सना वर्णित है :—

"ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्योरी !
राम जाहु कानन कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्योरी ॥ १ ॥
दिनकर बंस पिता दसरथ से राम-लखन से भाई ॥
जननी तूँ जननी ! तौ कहा कहौं बिधि केहि खोरि न लाई ॥ २ ॥

× × ×

तुलसीदास मोको बड़ो सोच है, तू जनम कवन बिधि भरिहै ॥

इसके अतिरिक्त :—

"तू दस कंठ भले कुल जायो ॥"
"तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो ॥"
"सुनु खल ! मैं तोहि बहुत बुझायो ॥"

आदि रौद्र-रस के उदाहरण मिलते हैं।

राम के लंका प्रस्थान के प्रसंग में सुन्दर-काण्ड के २२ वें पद के अन्तर्गत भयानक-रस का वर्णन बड़ी ओजस्वी भाषा में हुआ है—

"जब रघुबीर पयानों कीन्हों।
छुभित सिन्धु डगमगत महीधर, सजि सारंग कर लीन्हों ॥ १ ॥

× × ×

तुलसीदास गढ़ देखि फिरे कपि, प्रभु आगमन सुनाइ ॥ ११ ॥"

बीभत्स-रस—का वर्णन 'गीतावली' में नहीं आ सका है, क्योंकि युद्ध की विकरालता का वर्णन, जहाँ राम-रावण-युद्ध में अधिक संभव था, उसे न आने से इसके वर्णन का अवसर ही नहीं मिल सका। अद्‌भुत-रस का साधारण वर्णन 'गीतावली' में मिलता है। बाल-काण्ड में पद १, २, १२, और २२, जहाँ राम की बाललीलाओं का वर्णन है; अयोध्या-काण्ड में पद १७–४२ में, जिसमें बन-मार्ग में तपस्वी-वेष धारणकर राम, लक्ष्मण और सीता को चलते

समय इनके प्रति लोगों का आकर्षण दिखाया गया है और लंका-कांड में हनुमान् द्वारा संजीवनी लाने के लिए जो पद लिखे गये हैं, अर्थात् १० वें, ११ वें पद में अद्भुत-रस की व्यंजना हुई है। शान्त-रस का वर्णन सुन्दर-काण्ड के अन्तर्गत ३७ से ४६, मात्र दस पदों में मिलती है, जिसमें विभीषण का श्रीराम की शरण में आने का प्रसंग है।

डा० श्रीरामकुमार वर्मा के मतानुसार 'गीतावली' में कवि के रस-निरूपण के अन्तर्गत एक दोष है—"उसमें शृङ्गार को छोड़ अन्य रसों में आत्मानुभूति नहीं है। परुष रसों की व्यंजना तो कहीं-कहीं केवल उद्दीपन विभावों के द्वारा ही की गयी है। यह भी देखने में आता है कि स्थायीभाव के चित्रण के बाद तुलसीदास ने संचारी-भावों के चित्रण का प्रयत्न बहुत कम किया है।[१]

कुछ भी हो इतना तो मानना ही होगा कि 'गीतावली' में अनेक स्थलों पर कवि ने मनोदशाओं के अनेक करुण चित्र अंकितकर रचना को सजीव कर दिया है। यद्यपि 'गीतावली' में 'मानस' तथा विनय-पत्रिका' की भाँति आध्यात्मिक और दार्शनिक सिद्धान्तों की झलक नहीं के बराबर है, किन्तु राम-कथा के कोमल अंशों का प्रकाशन तो इस ग्रन्थ में सफलतापूर्वक हुआ ही है। भाषा में तद्भव और तत्सम दोनों प्रकार के शब्दों के प्रयोग से इसमें व्रज-भाषा अत्यन्त मधुर और स्वाभाविक बन गयी है। इसकी रचना से कहा जा सकता है—जिस प्रकार कवि को अवधी पर पूर्ण अधिकार था, उसी प्रकार व्रज-भाषा पर भी क्षमता थी। इसमें भी अलंकारों का यथास्थान प्रयोग मौलिक और स्वाभाविक है, किन्तु प्रायः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, काव्यलिंग और अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकारों का ही प्रयोग है। गुणों में माधुर्य और प्रसाद का प्राधान्य है। एक ही प्रकार की उपमाओं का आवर्त्तन अनेक बार हो गया है। राम के सौन्दर्य कथन के प्रसंग में कामदेव की उपमा अधिक बार दी गयी है। सी प्रकार बादल और मोर भी अधिक बार याद किए गए हैं। 'गीतावली' 1 सबसे महत्वपूर्ण अंश वह है, जिसमें राम के सौन्दर्य और ऐश्वर्य का कथन है।

१—देखिए 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पृ० ४०७।

छन्दों की दृष्टि से 'गीतावली' में किसी एक छन्द को विशेष रूप में न अपनाकर आसावरी, जयतश्री, बिलावल, केदारा, सोरठ, धनाश्री, कान्हरा, कल्याण, ललित, विभास, नट टोड़ी, सारंग, सूहो मलार, गौरी, मारू, भैरव, चंचरी, वसन्त तथा रामकली आदि रागों की योजना के दर्शन होते हैं।

(ई) विनय-पत्रिका— इसके रचन-काल के सम्बन्ध में वेणीमाधवदास ने सं० १६३९ के लगभग और कुछ विद्वानों ने सं० १६६६ तथा १६८० के बीच माना है। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से विनय-पत्रिका में कोई कथा ऐसी नहीं है, जो प्रबन्धात्मक-काव्य मानने में सहायक हो, इसमें तो भक्ति-सम्बन्धी कवि की प्रार्थना अपने उद्धार के लिए अपने इष्टदेव से पदों में की गयी है। गोस्वामी तुलसीदास स्मार्तवैष्णव थे, इसलिए विनय-पत्रिका में इन्होंने पाँचों देवताओं—विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश—की स्तुति से रचना प्रारम्भ की है : भगवान श्रीराम विष्णु रूप हैं, जिनकी स्तुति तो ग्रन्थ में सबसे अधिक है। आरम्भ में शेष चारों देवताओं की वन्दना करके तब ग्रन्थ की रचना की गयी है। पदों में रचना होने से 'विनय-पत्रिका' मुक्तक रचना है, जिसमें सम्पूर्णतः प्रबन्धात्मकता की रक्षा नहीं हो सकती थी। इसमें कवि ने आत्म-निवेदन किया है, जिसमें भावों का नियमन नहीं हो सका है। किन्तु श्रीवियोगीहरिजी ने यह नहीं माना है, वे लिखते हैं :—

"कोष-काव्य होते हुए भी 'विनय-पत्रिका' का क्रम बड़ा ही सुन्दर है। किसी-किसी मत से यह ग्रन्थ गोसाईंजी के फुटकर पदों का संग्रह-मात्र है, पर हमें यह कथन सत्य नहीं जान पड़ता। हो सकता है, इसके कुछ पद समय-समय पर बनाए गये हों, किन्तु इसकी रचना यथाक्रम ही हुई है। राजा-महाराजा के पास कोई याता-वाला अर्जी नहीं भेजता। पहले दरबार के मुसाहबों को मिलाना पड़ता है, तब कहीं पैठ होती है। इस बात को ध्यान में रखकर गोसाईंजी ने पहले देवी-देवताओं को मनाया है, तब कहीं हजूर में अर्जी पेश की है। सिद्ध-गणेश श्रीगणेशजी की वन्दना से किया गया है। फिर भगवान् भास्कर की वन्दना की गयी है। अनेक जन्म-संचित अविद्या-अन्धकार के दूर करने के लिए मरीचिमाली की स्तुति युक्तियुक्त ही है। फिर पार्वती-वल्लभ जगद्गुरु शिव का गुणगान किया गया है। यहीं से कल्याण का प्रशस्त पथ दृष्टिगोचर

होता है। कलि को डराने-धमकाने के लिए भीषण मूर्ति भैरव का भी ध्यान किया गया है। तदनन्तर पार्वती, गंगा, यमुना, काशी और चित्रकूट का यशोगान किया गया है···अब यहाँ से हनुमानजी की वन्दना प्रारम्भ होती है। यह गोसाईंजी के खास वकील हैं। इनके आगे अपनी सारी व्यथा-कथा खोलकर रख दी है।— इसके बाद लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न से विनय की है। यहाँ तक दरबार के सारे मुसाहिब साध लिए गये हैं। अब किसी की ओर से कोई शंका नहीं है। श्रीरघुनाथजी के सामने अपनी चर्चा छेड़ने के लिए गोसाईंजी ने जनकनंदिनीजी की क्या ही उक्ति बताई है :—

"कबहुँक अंब अवसर पाइ।

मेरियौ सुधि द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ॥"

किसी पद में स्वामी का प्रभुत्व, तो किसी में सौहार्द वा किसी में औदार्य एवं शील प्रदर्शित किया गया है। किसी पद में जीव का असामर्थ्य, किसी में आत्म-ग्लानि वा किसी में मनोराज्य दिखाया गया है, किसी पद में अपनी राम-कहानी सुनाई गयी है तो किसी में अत्याचार-पीड़ित मानव-समाज का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया गया है। इस प्रकार २७६ पद तक पत्रिका लिखी गयी है। पत्रिका पूरी हो चुकी। अब पेश कौन करे? फिर हनुमान, शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरत से प्रार्थना की गयी। सेवक होने के कारण अगुवा बनने का किसी को साहस न हुआ। एक दूसरे का मुँह देखने लगे। पर सब में लक्ष्मण अधिक ढीठ थे, उन पर श्रीरामचन्द्रजी का अपरमित-स्नेह था। सो उन्होंने पत्रिका पेश की, यहीं ग्रन्थ समाप्त होता है।[१]

'विनय-पत्रिका' में छः प्रकार के पद हैं—१—प्रार्थना या स्तुति, २—स्थानों का वर्णन, ३—मन के प्रति उपदेश, ४—संसार की निस्सारता, ५—ज्ञान-वैराग्य-वर्णन और ६—आत्मनति-संकेत।

प्रार्थना या स्तुति जिसके अन्तर्गत गणेश से राम तक की वन्दना की गयी है, रूपकों और कथाओं द्वारा गुण-वर्णन के पद और हैं। रूप-

---

१—देखिए 'विनय-पत्रिका हरितोषिणी टीका', श्रीवियोगीहरिजी कृत अनुवाद पृ० १५, १६ और १७।

वर्णन अलंकारों द्वारा तथा राम की भक्ति-याचना पदों की अन्तिम पंक्तियों के द्वारा की गयी है। स्थानों के वर्णन में चित्रकूट तथा काशी का विवरण मिलता है। राम की प्रार्थना के प्रसंग में राम की लीला, नख-शिख-वर्णन, हरि-शंकरी रूप, दशावतारी महिमा तथा आत्म-निवेदन के भावों की व्यंजना हुई है।

इस ग्रन्थ में वर्णित भावनाएँ स्वतन्त्र हैं। कहीं कवि संसार की निस्सारता का वर्णन करता है, तो कहीं मन को उपदेश देता है। रचना में कहीं कवि के व्यक्तिगत जीवन की व्यंजना है, तो कहीं भगवान के दशावतारों से सम्बन्ध रखनेवाली उदारता तथा भक्तवत्सलता की पौराणिक कथाओं की झलक है। यही कारण है कि गणिका, अजामिल, गज, व्याध और अहल्या आदि की इतिवृत्तों का बार-बार आवर्तन हुआ है। क्योंकि कवि का हृदय भक्ति से भरा है, जिससे वह भगवान के गुणगान में सर्वथा संलग्न है और राम की भक्ति में वह अनेक साधना-पद्धतियों पर अनेक पदों की रचना करता है। भक्तिकाल में तुलसीदास के पूर्व विद्यापति, कबीर और सूरदास ने जिस गीत पद्धति पर भक्ति-भावना की अभिव्यंजना की थी, उसे उन्होंने भी अपनाया। विद्यापति ने जयदेव का अनुकरण करते हुए 'गीतगोविन्द' की रचना-शैली को अपनाया; किन्तु राधा-कृष्ण का गुण-गान करते हुए भी वे शुद्ध भक्ति-भावना की स्थापना अपने पदों में न कर पाए। इसी प्रकार महात्मा कबीर की रचना में भी भक्तियुक्त होने पर भी साकार रूप के निरूपण में न आ सकी। क्योंकि आत्म-समर्पण की भावना उनकी रचना में स्थिर ही न हो सकी। ऐकेश्वर-वाद की भावना तथा रहस्यवाद की अनुभूति, इन दोनों ने मिलकर कबीर की भक्ति को उपासना का रूप दे दिया था, जिससे स्पष्ट है कि विद्यापति और कबीर महात्मा तुलसी के समक्ष भक्ति का कोई आदर्श न उपस्थित कर सके थे, अतः तुलसी की भक्ति का आदर्श एक मौलिक प्रयास था। रहे सूरदास, उनकी उपासना का दृष्टिकोण तुलसीदास की उपासना के दृष्टिकोण से भिन्न था, उनकी (सूरकी) भक्ति सख्यभाव के अन्तर्गत है और तुलसी की भक्ति दास्यभाव के अन्तर्गत। महात्मा सूर की रचना में संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली एवं अनुप्रासों की वह योजना नहीं है, जो तुलसीदास की रचना में पायी जाती है। आचार्य शुक्लजी लिखते हैं—"दोनों भक्त शिरोमणियों की रचना में यह भेद ध्यान देने योग्य है

और इसपर ध्यान अवश्य जाता है। गोस्वामीजी की रचना अधिक संस्कृत-गर्भित है. पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इनके पदों में शुद्ध देश भाषा का माधुर्य नहीं है। उन्होंने दोनों प्रकार की मधुरता का बहुत ही अनूठा मिश्रण किया है। १

इसके अतिरिक्त गोस्वामीजी के समकालीन कवियों ने भी पुष्टिमार्ग का अवलम्बन कर भक्ति की विवेचना की; परन्तु उनकी रचनाओं में भक्ति-भावना का समावेश होते हुए भी आत्म-समर्पण की भावना की व्यंजना नहीं हो पायी है। इस विचार से विनय-पत्रिका' हिन्दी-साहित्य में अपना एक मौलिक दृष्टिकोण उपस्थित करती है तुलसीदास की इस रचना में (दास्य-भाव की भक्ति में) आत्मा की समग्र वृत्तियों की व्यंजना सफल रूपसे हुई है।

'विनय-पत्रिका' में कविने संगीत का आधार लिया है, हर्ष और करुण की भावना में जयतश्री, केदारा, सोरठ तथा आसावरी; वीर की भावना में मारू और कान्हरा; शृंगार की भावना में ललित, गौरी, सूहो और वसन्त; शान्त की भावना में रामकली, विभास, कल्याण, मलार और टोड़ी का राग प्रयोग में लाया गया है। तुलसीदास ने विशेष रागिनी में भावना विशेष के लिए रचना की है। कुल मिलाकर 'विनय-पत्रिका के अन्तर्गत २१ रागों में आत्म-निवेदन है, जिनके नाम हैं – बिलावल धनाश्री, रामकली, वसन्त, मारू भैरव, कान्हरा, सारंग, गौरी, दण्डक, केदारा, आसावरी, जयतश्री, विभास, ललित टोड़ी नट, मलार, सोरठ, भैरवी और कल्याण; किन्तु ध्यान देने की बात है कि इस प्रसंग में भावों का तात्पर्य रस नहीं है।

'विनय-पत्रिका' में एक ही रस की व्यंजना है, वह है शान्त-रस। विविध भाव उसके संचारी होकर ही आए हैं। "विनय-पत्रिका" में शान्त-रस की जितनी मार्मिक-व्यंजना हुई है, 'मानस' को छोड़कर किसी और ग्रन्थ में वह देखने को नहीं मिलती। 'विनय-पत्रिका' में शान्त-रस के प्राबल्य से किसी और रस के प्रस्फुटन का अवसर कवि को नहीं मिल सका है। क्योंकि इसमें कवि की आत्म-निवेदन की भावना प्रबल है। जितने और भी रस रचना में आए, वे सब शान्त-

१—देखिए "हिन्दी-साहित्य का इतिहास" परिवर्द्धित सं० पृ० १३५।

रस के ही संचारी बन गए हैं। सूरदास के भी विनय के पद महत्वपूर्ण हैं। किन्तु तुलसी के विनय के पदों की भांति उनमें अनुभूति की गहराई नहीं है। जो प्रौढ़ता तुलसीदास के स्थायीभाव में झलकती है, वह सूरदास के स्थायीभाव में नहीं मिलती; क्योंकि रस के आलम्बन विभाव को रामचरित ने जो अवधेश और मर्यादा पुरुषोत्तम के गुणों से विभूषित है बहुत सहायता दी है। सूरदास को कृष्ण-चरित से यह उपकरण नहीं प्राप्त हो सका है। दूसरा कारण यह है कि तुलसीदास की उपासना 'दास्यभाव की है। जिससे आत्म-निवेदन में भी प्रौढ़ता आ गयी है।

'विनय-पत्रिका' की रचना के पदों को नीचे की श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है:—

(१) दीनता—"कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि॥"

(२) मानमर्षता—'काहे ते हरि! मोहि बिसारो।
जानत निज महिमा, मेरे अघ तदपि न नाथ सँमारो॥
नाहिन नरक परत मोकहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो॥
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो॥'

'केसव कारन कौन गोसाईं।
जेहिं अपराध असाधु जानि मोहिं तजेउ अग्य की नाईं॥
जद्यपि नाथ! उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाईं॥
तुलसिदास सीदति निसिदिन देखत तुम्हार निठुराई॥'

(३) भय-दर्शना—'राम कहत चलु राम कहत चलु—···।"

(४) मनोराज्य—"कबहुँक हौं इहि रहनि रहौंगो······।"

(५) विचारणा—"केसव कहि न जाइ का कहिए ······।"

(६) निर्वेद—"अब लौं नसानी अब न नसैहौं···"।

(७) ग्लानि - "ऐसी मूढ़ता या मनकी।"

(८) विषाद-सम्बन्धी पद—'रघुबर रावरि यहै बड़ाई॥'

(९) चिन्ता-सम्बन्धी पद - "ऐसे राम दीन हितकारी॥"

इन उपर्युक्त श्रेणियों में विनय के प्रायः सभी पद आ जाते हैं।

'विनय-पत्रिका' में काव्य-सौष्ठव—यों तो 'रामचरित-मानस' जो गोस्वामीजी की ही नहीं समग्र हिन्दी-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जो साहित्य-शास्त्र के सभी लक्षणों से संयुक्त है, जो भावाभिव्यंजना और भाव-प्रवणता आदि दृष्यों से महत्वपूर्ण कृति है, छोड़कर इसकी समानता में अन्य कोई ग्रन्थ नहीं हो सकता। यहाँ पर 'विनय-पत्रिका' के काव्य की उत्कृष्टता का थोड़ा प्रसंग उपस्थित करना आवश्यक है।

गोस्वामीजी के सभी ग्रन्थ धर्म-प्रधान-साहित्यिक-ग्रन्थ हैं और 'विनय-पत्रिका' भी ऐसी ही रचना है। इसमें जो उक्ति-वैचित्र्य के साक्षात्कार होते हैं और जो अर्थगौरव का जीता-जागता वर्णन मिलता है, वह अन्यत्र कम पाया जाता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

"नाहिन नरक परत मोकहँ डर जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो॥"

अर्थात्—मुझे सुगति पाने की चिन्ता नहीं है, चिन्ता है तो केवल इस बात की कि प्रभु की अनन्त शक्ति की भावना बाधित हो गई! इस प्रकार एक दूसरा पद:—

"विषय-बारि मनमीन भिन्न नहि होत कबहुँ पल एक।
ताते सहौं बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥
कृपा-डोरि बनसी-पद-अंकुस, परम-प्रेम-मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख कौतुक राम तिहारो॥"

कितनी अनूठी उक्तियां हैं। एक और पद देखिए:—

"मैं केहि कहौं बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा॥
अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा। मद, क्रोध, बोध रिपु मारा॥
× × ×
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तस्कर तव धामा॥
चिन्ता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा॥"

इस प्रकार की उक्तियों के अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं। भक्तिरस के पदों से सारा ग्रन्थ भरा पड़ा है। आचार्य शुक्लजी के शब्दों में :—

"भक्ति-रस का पूर्ण परिपाक जैसा विनय-पत्रिका में देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं। भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलम्बन के महत्व और अपने दैन्य का अनुभव परम आवश्यक अंग है। तुलसी के हृदय से इन दोनों अनुभवों के ऐसे निर्मल-शब्द-स्रोत निकले हैं, जिसमें अवगाहन करने से मन की मैल कटती है और अत्यन्त पवित्र प्रफुल्लता आती है।[१]

—o—

६—तुलसी की राम-कथा की दार्शनिक पृष्ठभूमि

(१)—राम-नाम के विविध अर्थ—कितने ही जन दाशरथि राम को विष्णु का अवतार मानते हैं, कितने ही उन्हें परात्पर ब्रह्म और कितने ही जन उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं तथा उन्हें ईश्वर का अवतार मानने से इन्कार कर देते हैं। कहने का तात्पर्य सबकी राय या मान्यता एक-सी नहीं है। अतः इसके निर्णय की समस्या कठिन है। कठिन इसलिए है कि किसी एक निर्णय पर सब सहमत न होंगे। किसी भी निर्णय पर पहुँचने के बाद भी प्रश्नवाचक चिन्ह का निवारण नहीं किया जा सकता। क्योंकि बहुतों ने प्रमाण से और शास्त्रीय पद्धति से भी राम को परात्परब्रह्म, विष्णु का अवतार घोषित किया और प्रमाणित भी किया; किन्तु दूसरों ने इस मान्यता को तर्कों द्वारा खण्डित कर दिया। अतः इसके संबंध में कुछ भी कहने और प्रमाणित करने की आवश्यकता

१—देखिए 'विनय-पत्रिका' श्रीवियोगीहरिजी कृत हरितोषिणी टीका की भूमिका पृ० १।

नहीं है, क्योंकि अब तक जो कुछ भी कहा गया और सुना गया वही पर्याप्त है। किन्तु इतना कह देने से भी काम नहीं चल सकता, यहाँ पर इस वाद-विवाद से तटस्थ होकर 'राम' शब्द के सम्बन्ध में प्राचीन साहित्य और परम्परा से जो स्पष्ट है, उस पर विचार करना है, क्योंकि राम-कथा के लेखकों ने राम के जिस रूप की कल्पना करके रचना की, उस भाव-भूमि पर हमें उतरना ही होगा और उन्हीं रचनाओं के दृष्टिकोण से राम के उसी रूप को देखते हुए विचार करना होगा। राम ईश्वर थे या नहीं; यहाँ पर इस प्रश्न के उत्तर की आवश्यकता नहीं। यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि राम के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किस प्रकार कवियों ने किया। उन कवियों के दृष्टिकोण विशेष के अनुसार ही राम के रहस्य पर प्रकाश डाला जाय, क्योंकि यहाँ यही प्रधान प्रश्न है।

तो, प्राचीन-साहित्यमें 'राम' शब्द के कितने अर्थ हुए ? सर्वप्रथम अवतारवाद की भावना शतपथ-ब्राह्मण में मिलती है। प्रारंभ में विष्णु की अपेक्षा प्रजापति को इस संबंध में अधिक महत्व दिया जाता था। कुछ विद्वानों के मतानुसार शतपथ-ब्राह्मण से ही प्रजा-पति के मत्स्य (दे० १ ८.१.१.); कूर्म (७.५.१.५. १४. १. २-११) एवं वाराह (१४.१.२.११.) के अवतार हुए थे। प्रजापति के वाराह रूप धारण करने की कथा तैत्तरीय ब्राह्मण (१.१.३.५) और काठक संहिता में भी (८. २) बीज रूप में पायी जाती है।

महाभारत' में मत्स्य ब्रह्मा का अवतार माना गया है (दे० ३,१८७) किन्तु कालान्तर में जब विष्णु श्रेष्ठ माने जाने लगे, तो मत्स्य, कूर्म और वाराह विष्णु के अवतार माने जाने लगे। शतपथ-ब्राह्मण में—(१.२.५.५.)— वामनावतार प्रारम्भ से ही विष्णु का अवतार माना जाता है। कुछ विद्वान इसे ऋग्वेद की एक कथा का विकसित रूप मानते हैं—(दे० ऋ० १.२२.१७); शतपथ-ब्राह्मण (१. २. ५.१), तैत्तरीय आरण्यक के परिशिष्ट में (१०.१.६) विष्णु के अवतार नृसिंह की कथा उद्धृत है।[१]

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि अवतारवाद बहुत प्राचीनकाल से

१ —देखिए 'राम-कथा, पृ० १४४।

ब्राह्मण-साहित्य में माना जा चुका था। आगे चलकर कृष्णावतार के साथ-साथ अवतारवाद के विकास में विद्वानों ने महत्वपूर्ण परिवर्त्तन माना। वासुदेव कृष्ण भागवतों के इष्टदेव थे, जिन्हें कुछ विद्वान् पहले विष्णु से संबंधित नहीं मानते थे। समय पाकर लगभग तीसरी शताब्दी ई० पूर्व से वासुदेव कृष्ण और विष्णु की अभिन्नता की भावना का उद्भव हुआ।[१]

बौद्धधर्म और भागवत का भक्ति-मार्ग, दोनों को समान रूप से ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड एवं यज्ञ की प्रधानता के प्रतिक्रिया स्वरूप विकसित और पल्लवित मानते हुए अवतारवाद के विकास को बौद्ध-धर्म का प्रभाव माना जाता है। विद्वानों का अनुमान है कि बौद्ध-धर्म एवं भागवत के भक्ति-मार्ग के पल्लवन से ब्राह्मणों का धर्म-विषय में एकाधिकार जब लुप्त हो गया, तब बौद्ध-धर्म का अधिक प्रचार देखकर ब्राह्मणों ने भागवतों को अपनी ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से उनके देवता वासुदेवकृष्ण को विष्णुनारायण का अवतार मान लिया, जिससे अवतारवाद को बड़ा प्रोत्साहन मिला और साथ ही साथ विष्णु की महिमा बढ़ने लगी। इस प्रकार धीरे-धीरे अवतारवाद की समस्त भावना विष्णु-नारायण में केन्द्रित होने लगी और वैदिक-साहित्य के अन्य अवतारों के कार्य विष्णु में ही आरोपित किए गए। इधर जब अनेक शताब्दियों से राम का आदर्श भारतीय जनता के समक्ष प्रस्तुत था, तब रामायण की लोकप्रियता के साथ-साथ राम का महत्व भी बढ़ता रहा, उनकी वीरता के वर्णन में अलौकिकता का अंश भी बढ़ने लगा। रावण पाप और दुष्टता का प्रतीक बन गया; राम पुण्य तथा सदाचार के। अतः इस विकास की स्वाभाविक परिणति यह हुई कि कृष्ण की भाँति राम भी विष्णु का अवतार माने जाने लगे। यद्यपि इस मान्यता का समय अभी तक विद्वानों ने निर्धारित नहीं किया है; किन्तु रामायण में उत्तर-काण्ड के अन्तर्गत वर्णित अवतारवाद-संबन्धी वर्णित सामग्री के पहले ज्ञ इसे माना है।

प्राचीनतम् पुराणों—वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य और हरिवंश आदि—में अवतारों के वर्णन में राम का नाम आया है और उधर बौ द्धएवं जैन-साहित्य

१—देखिए 'राम-कथा' पृ० १४४।

में राम-कथा का जो वर्णन मिलता है, उसके अन्तर्गत बौद्धों ने ईस्वी के अनेक शताब्दियों पहले राम को बोधिसत्व मानकर और जैनियों ने अपने धर्म में आठवें बलदेव के रूप में मानकर उस समय के तीन प्रचलित धर्मों में एक निश्चित स्थान प्रदान कर राम के महत्व को बढ़ाया है।

भारतीय-भक्तिमार्ग का बीजारोपण वेदों में ही हुआ था और उसका पल्लवन भागवत-धर्म में हुआ। भागवतों का भक्तिमार्ग भी बौद्ध एवं जैन धर्मों के समान कर्मकाण्ड और यज्ञ प्रधान ब्राह्मण-धर्म के प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न तो हुआ किन्तु इसमें विशेषता यह थी कि वेदोंकी निन्दा को इसमें स्थान नहीं मिला। आगे चलकर ब्राह्मण-धर्म और भागवत-धर्म का समन्वय हुआ, जिसके फल-स्वरूप वैष्णव-धर्म की उत्पत्ति मानी जाती है। इसमें प्राचीन वैदिक देवता विष्णु भागवतों के देवता वासुदेव कृष्ण के अवतार माने गए और भक्ति भावना इन्हीं विष्णु-नारायण वासुदेवकृष्ण में केन्द्रित होकर उत्तरोत्तर विकासोन्मुख होती गयी। विष्णु के दूसरे अवतार भी माने जाने लगे, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण रामावतार ही हुआ।[१]

यद्यपि कुछ विद्वान राम-भक्ति की परम्परा के सम्बन्ध में यह मानते हैं कि ईस्वीसन् के प्रारम्भ से राम विष्णु के अवतार माने जाते हैं, किन्तु उनकी विशेष रूप से प्रतिष्ठा ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग प्रारम्भ हुई तथा राम और राधा की एकान्तिक पूजा जिन वैष्णव संहिताओं में प्रतिपादित की गयी; वे अर्वाचीन हैं और पंचरात्र के प्रामाणिक साहित्य के अनुकरण से उत्पन्न हुई हैं।[२]

परन्तु भक्ति-परम्परा के मूलस्रोत का अस्तित्व वैदिक-साहित्य तक में भी ढूँढ़ा जाता है और किसी आरम्भिक रूप का पता मोहेञ्जोदड़ो के भग्नावशेषों के म आधार पर माना जाता है।[३] "भक्ती द्राविड़ ऊपजी" के अनुसार कुछ

१—देखिए 'राम-कथा' पृ० १४६।

२—सर रामगोपाल भंडारकर और डा० ग्राहर का मत (राम-कथा से उद्धृत) पृ० १५०।

३—देखिए "भारतीय-साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ" श्रीपरशुराम चतुर्वेदी कृत पृ० २।

विद्वान् यह भी मानते हैं कि राम-भक्ति का आविर्भाव दक्षिण भारत में ही हुआ था।

वैष्णव-संहिताओं और उपनिषदों में भी राम-भक्ति और राम-पूजा का शास्त्रीय प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि सायण के अनुसार 'राम' का अर्थ 'रमणीय-पुत्र' है—(राम कथा पृ० ४) किन्तु "श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् में 'राम' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है—ॐ सच्चिदानन्दमय महाविष्णु श्रीहरि जब रघुकुल में दशरथजी के यहाँ अवतीर्ण हुए, उस समय उनका नाम 'राम' हुआ जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'जो महीतल पर स्थित होकर भक्त-जनों का सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते और राजा के रूप में सुशोभित होते हैं, वे राम हैं'—ऐसा विद्वानों ने लोक में 'राम' शब्द का अर्थ व्यक्त किया है। (*"राति राजते वा महीस्थितः सन् इति रामः"*—इस विग्रह के अनुसार 'राति' या 'राजते' का प्रथम अक्षर 'रा' और 'मही-स्थितः' का आदिम अक्षर 'म' लेकर 'राम' बनता है; इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।) राक्षस जिनके द्वारा मरण को प्राप्त होते हैं, वे राम हैं। अथवा अपने ही उत्कर्ष से इस भूतल पर उनका 'राम' नाम विख्यात हो गया (उसकी प्रसिद्धि में कोई व्युत्पत्तिजनित अर्थ ही कारण है, ऐसा नहीं मानना चाहिए) अथवा वे अभिराम (सबके मन को रमानेवाले) होने से राम हैं अथवा जैसे राहु मनसिज (चन्द्रमा) को हतप्रभ कर देता है, उसी प्रकार जो राक्षसों को मनुष्य रूप से प्रभाहीन (निष्प्रभ) कर देते हैं, वे राम हैं। अथवा वे राज्य पाने के अधिकारी महीपालों को अपने आदर्श-चरित्र के द्वारा धर्ममार्ग का उपदेश देते हैं, नामोच्चारण करने पर ज्ञानमार्ग की प्राप्ति कराते हैं, ध्यान करने पर वैराग्य देते हैं और अपने विग्रह की पूजा करने पर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं; इसलिए भूतल पर उनका 'राम' नाम पड़ा होगा। परन्तु यथार्थ बात तो यह है कि *उस अनन्त, नित्यानन्दस्वरूप चिन्मय ब्रह्म में योगीजन रमण* करते हैं; इसलिए वह परब्रह्म परमात्मा ही 'राम' पद के द्वारा प्रतिपादित होता है ॥ १-६ ॥"[१]

१—उपनिषद् अंक—*गीता प्रेस, गोरखपुर* पृ० ५३१।

इसके अतिरिक्त श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् के द्वितयी खण्ड में श्रीराम के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है और राम-बीज की व्याख्या की गयी है जो इस प्रकार है :—

"भगवान किसी कारण की अपेक्षा न रखकर स्वतः प्रकट होते या नित्य विद्यमान रहते है, इसलिए 'स्वयंभू' कहलाते हैं। चिन्मय प्रकाश ही उनका स्वरूप हैं; अतः वे ज्योतिर्मय हैं। रूपवान होते हुए भी वे अनन्त हैं—देश, काल और वस्तु की सीमा से परे हैं। उन्हें प्रकाशित करनेवाली दूसरी शक्ति नहीं है, वे अपने से ही प्रकाशित होते हैं। वे ही अपनी चैतन्यशक्ति से सबके भीतर जीवन रूप से प्रतिष्ठित होते हैं, तथा वे ही रजोगुण, सत्वगुण तथा तमोगुण का आश्रय लेकर समस्त जगत की उत्पत्ति, रक्षा और संहार के कारण बनते हैं; ऐसा होने से ही यह जगत् सदा प्रतीतिगोचर होता है। यह जो कुछ दिखायी देता है, सब ॐकार है—परमात्मा-स्वरूप है। जैसे प्राकृत वट का महान् वृक्ष वट के छोटे-से बीज में स्थित रहता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत् राम बीज में स्थित है ('राम' ही रामबीज है।) ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीन मूर्तियाँ 'राम' के रकार पर आरूढ़ हैं तथा उत्पत्ति, पालन एवं संहार की त्रिविध शक्तियाँ अथवा बिन्दु, नाद और बीज से प्रकट होने वाली रौद्री, ज्येष्ठा और वामा—ये त्रिविध शक्तियाँ भी वहीं स्थित हैं। ('राम' का अक्षर-विभाग इस प्रकार है—र, आ, अ, और म्। इनमें रकार तो साक्षात् श्रीराम का वाचक है तथा उस पर आरूढ जो 'आ', 'अ' और म्' हैं, ये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—इन तीन देवों के और उपर्युक्त त्रिविध शक्तियों के वाचक हैं।) इस बीजमंत्र में प्रकृति-पुरुष रूप सीता तथा राम पूजनीय हैं। इन्हीं दोनों से चौदह भुवनों की उत्पत्ति हुई है। इनमें ही इन लोकों की स्थिति है तथा उन आकार, अकार और मकार रूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव में इन सब का लय भी होता है। अतः श्रीराम ने माया (लीला) से ही अपने को मानव माना। जगत् के प्राण एवं आत्मारूप इन भगवान् श्रीराम को नमस्कार है। इस प्रकार नमस्कार करके गुणों के भी पूर्ववर्ती परब्रह्म स्वरूप इन नमस्कार योग्य देवता श्रीराम के साथ — —

एकता का उचारण करे अर्थात् दृढ़ भावना पूर्वक 'मैं श्रीराम ही ब्रह्म हूँ' यों कहे ॥ १-४ ॥[१]

इसी प्रकार रामोपासना से संबन्ध रखनेवाली 'श्रीरामोत्तरतापनीय' और 'श्रीरामरहस्य' दो अन्य उपनिषदें भी हैं, जिनमें राम-यंत्र, राम-मंत्र और सीता-मंत्र आदि का उल्लेख है और जिसमें राम परम पुरुष और सीता मूल प्रकृति मानी जाती हैं।

(२) राम और-विष्णु का रहस्य—जिस राम-भक्ति का प्रचार भारतवर्ष में हुआ, वह वैष्णव-धर्म से निकली। वैष्णव-धर्म का आदि रूप विष्णु के देवत्व में और उसकी प्रधानता में मिलता है। विष्णु हिन्दुओं के वेदकालीन प्रमुख देवता हैं।[२] विष्णु—'विश' धातु से व्याप्त होने के अर्थ में आता है विष्णु में संरक्षण एवं व्याप्त होने की भावना प्रमुख है। आगे चलकर आचार्यों और कवियों द्वारा इस भावना ने सामान्य जनता में भी प्रचार पाया। शतपथब्राह्मण मे तो विष्णु यज्ञ रूप होकर (वामन रूप से) असुर से समग्र पृथ्वी प्राप्त कर लेते हैं और ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु सर्वश्रेष्ठ देवता माने गये हैं। अग्नि का स्थान सबसे छोटा है तथा दूसरे देवताओं का स्तर विष्णु और अग्नि के मध्य का है :—

> अग्निर वै देवानाम् अवमो । विष्णुः परमम्।
> तदन्तरेण सर्वाः अन्याः देवताः ॥—ऐतरेय ब्राह्मण—१,१।

वाल्मीकि रामायण में भी विष्णु का विशेष महत्त्व है।

महाराज दशरथ के द्वारा जब पुत्रेष्टि-यज्ञ में अपना-अपना यज्ञ-भाग लेने के लिए सब देवता एकत्र हुए और सबसे अन्त में—

> एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
> शङ्ख चक्र गदा पाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥ १६ ॥
> —वा० रा० बालकाण्ड पंचदश सर्ग।

१—उपनिषद् अंक (गीता-प्रेस गोरखपुर) पृ० ५३२।

२—ऋग्वेद में वर्णन आता है—"अतो देवा अवंतु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥ आदि

अर्थात् "इतने ही में शंख, चक्र गदा और पीताम्बर धारण किए महातेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु वहाँ आए।"

"जब वे (विष्णु) आकर पितामह ब्रह्मा से मिले और उनके समीप बैठ गए तब सभी देवताओं ने बड़ी विनम्रता के साथ उनकी वन्दना की और कहा हे प्रभो! आप सब की भलाई के लिए अपने चार अंशों से महाराज दशरथ की तीनों रानियों में पुत्रभाव स्वीकार करें। महाभिमानी रावण को युद्ध में परास्तकर हम सबका भला करें।"—(१८ । १९ । २० । २१ । २२ ।–वा० रा० पं० सर्ग)

× ×

"पितामहपुरोगांस्तान्सर्व लोक नमस्कृतः
अब्रवीत्त्रिदशान्सर्वान्समेतान्धर्म संहितान्" ॥ २६ ॥

अर्थात्" सर्वलोकों से नमस्कार किए जानेवाले अर्थात् सर्व पूज्य भगवान विष्णुने, शरण आए हुए एकत्रित ब्रह्मादि देवताओं से कहा ॥"—(वा० रा० बालकाण्ड श्लोक ८६ सर्ग १५।")

'महाभारत' श्रीमद्भागवद् महापुराण' 'विष्णुपुराण' 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण' और 'ब्रह्मांड पुराण' आदि में भी विष्णु का बहुत ऊँचा स्थान घोषित किया गया है। 'सर्व शक्तिमयो विष्णु' 'शंख चक्र गदा पाणिः पीत वस्त्रः जगत्पति' आदि उदाहरणों से स्पष्ट है कि भगवान् विष्णु भारतीय—प्राचीन साहित्य में सर्वश्रेष्ठ देवता माने गए हैं। आगे चलकर भगवान् विष्णु अवतार के रूप में उसी श्रेष्ठता से माने जाते हैं। संरक्षक होने से वे बहुत ही लोक-प्रिय देवता हैं। उनके सहस्र नाम हैं, उनकी पत्नी लक्ष्मी या श्री हैं, जो समग्र सम्पति और वैभव की स्वामिनी हैं। उनका स्थान वैकुण्ठ है और उनके वाहन अमित तेजस्वी पक्षिराज गरुड़ हैं। भगवान् विष्णु चतुर्भुज हैं, उनका श्याम वर्ण है। उनके हाथों में पांचजन्य नामक शंख, सुदर्शन नामक चक्र, कौमोद की गदा और पद्म (कमल) हैं। 'सारंग' नामक उनका धनुष है, 'नन्दक' नामक उनकी तलवार है। उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स (विष्णु के वक्षस्थल पर भृगु के लात मारने का चिन्ह अथवा बालों का चक्र-समूह) है और कौस्तुभमणि है। उनकी भुजा स्यामन्तकमणि से सुशोभित है। कभी वे लक्ष्मी के साथ कमल पर

बैठते हैं, कभी वे सर्प-शय्या पर विश्राम करते हैं और कभी वे गरुड़ पर गमन करते हैं। संसार में माने जानेवाले सभी देवताओं से वैष्णव-धर्म केवल विष्णु को ही परब्रह्म के रूप में मानता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमूर्ति से भी परे विष्णु ब्रह्म के आदि रूप हैं। इसी में वैष्णव धर्म की चरम भावना है।

विष्णु के अवतार राम और श्रीकृष्ण को आगे चलकर आचार्यों ने विशेष महत्व दिया। अनन्तकाल से आते हुए विष्णु की श्रेष्ठता के विचार में स्वामी शंकराचार्य के पश्चात् होनेवाले आचार्यों ने (राम और कृष्ण की श्रेष्ठता में) बहुत बड़ा जोर दिया स्वामी शंकराचार्य के सम्पर्क में जब वैष्णव धर्म आया तब अपनी भक्ति के आदर्श के कारण उसे आचार्य शंकर के मायावाद से बड़ा संघर्ष करना पड़ा, जिसका पल्लवित रूप ग्यारहवीं शताब्दी में जब स्वामी रामानुजाचार्य हुए, तब उनके श्री सम्प्रदाय में देखने को मिलता है। आगे चलकर स्वामी निम्बार्काचार्य ने विष्णु के अवतार भगवान श्रीकृष्ण की परम्परा से आती हुई भक्ति और श्रेष्ठता में योग दिया। इसी प्रकार मध्वाचार्य ने भी इस विचारधारा को और भी पुष्ट किया। स्वामी रामानन्दजी ने भी अनन्तकाल से आई हुई राम-भक्ति और उसकी श्रेष्ठता की विचारधारा पर बल दिया।

ऊपर लिखा जा चुका है कि अनन्तकाल से आती हुई राम भक्ति यद्यपि विभिन्न मनीषियों के द्वारा श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर चुकी थी, किन्तु रामभक्ति का विशेष प्रचार स्वामी रामानन्दजी ने किया। कालान्तर में यही राम-भक्ति गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा अपनी उन्नति की चरम सीमा को स्पर्श करने लगी। गोस्वामी तुलसीदास के राम के महत्व का यहाँ विचार कर लेना आवश्यक समझता हूँ। क्योंकि आर्षकालीन ग्रन्थों में राम का जो महत्व है, तुलसीदास के राम का महत्व उससे भी बढ़कर है। मनु और शतरूपा के घोर तप करने पर उन्होंने उनसे कहलाया है :—

"उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई ॥
अगुन अखण्ड अनन्त अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथवादी ॥

नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा॥
संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥"

इस प्रकार की कामना से संयुक्त होकर मनु और शतरूपा ने तेइस सहस्र वर्ष घोर तप किया। उन दोनों का घोर तप देख कर :-

"बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥
मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहि चलहिं चलाए॥"

किन्तु इतने पर भी जब राजा मनु और उनकी रानी शतरूपा अपने तप से विमुख न हुईं और उनका शरीर हड्डियों का ढाँचामात्र रह गया था और उनके मन में इतने पर भी कुछ पीड़ा नहीं थी, तब 'विधि' 'हरि' तथा 'हर' से भिन्न सर्वज्ञ प्रभु ने अनन्यगति (आश्रय) वाले तपस्वी राजा तथा रानी को 'निज दास' समझ कर परम गम्भीर और कृपा रूपी अमृत से सराबोर "वर माँगो मैं तुम्हारी अभिलषा पूरी करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है" की आकाशवाणी से उन दोनों को अत्यन्त हर्षित कर दिया। वे दोनों बहुत हृष्ट-पुष्ट हो गए। उन 'परम प्रभु' को दण्डवत् प्रणाम कर मनु ने कहा—हे प्रभो! यदि आप की मेरे ऊपर कृपा है और आप प्रसन्न हैं तो :—

"सुनु सेवक सुरतरु सुर धेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो स्वरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुण्डि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥"

अर्थात् मुझे उस रूप का दर्शन दें, जिसका ध्यान सर्व वंदित स्वयं भगवान शिव किया करते हैं अर्थात् वह रूप परात्परब्रह्म का है जिसके अंश से अगणित ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न होते हैं; जिसे तुलसीदास जी 'परमप्रभु' कहते हैं। महाराज मनु के ऐसा कहने पर 'परमप्रभु' उनके समक्ष प्रकट हुए जिनका रूप कैसा है :—

"नील सरोरुह नीलमनि, नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम॥

× × ×

पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनिमन मधुप बसत जेन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

उपर्युक्त विवरण में राम का वर्णन ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भिन्न परमसत्ता का है। इस प्रकार का वर्णन 'मानस' में स्थान-स्थान पर और भी हुआ है। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे।

"जग पेखन तुम्ह देखन हारे। बिधि हरि संभु नचावन हारे॥
तेउ न जानिअहिं मरम तुम्हारा। और तुम्हहिं को जाननिहारा॥"

काकभुशुण्डि के मन में जब सन्देह हुआ :—

"प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहिं मोह।
कवन चरित करत प्रभु, चिदानन्द सन्दोह॥"

तब—"एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥

× × ×

मूँदेउँ नयन त्रसित जब भयउँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥
मोहिं बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥
उदर माँझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक तें एका॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडुगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥
सागर सरि-सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥ क॥ ८०॥

एक एक ब्रह्माण्ड महुँ रहेउँ बरस सत एक।
एहि बिधि देखत फिरेउँ मैं अंड कटाह अनेक ॥ ख ॥ ८० ॥

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसि त्राता ॥
नर गंधर्व भूत बेताला। किन्नर निसिचर पसु खग ब्याला ॥
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहिं भांती ॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनहिं आना ॥
अण्डकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा ॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी ॥
दसरथ कौसिल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता ॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखेउँ बाल बिनोद अपारा ॥

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउं आन ॥ क ॥ ८१ ॥

सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन-भुवन देखत फिरउं प्रेरित मोह समीर ॥ ख ॥ ८१ ॥"

× + +

"रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा ॥

मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास ॥ (क) ॥
काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत ॥ (ख) ॥

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरित कराला ॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन ॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा ॥
काम धेनु सत कोटि समाना। सकलकाम दायक भगवाना ॥
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई ॥
बिष्नु कोटि सम पालन कर्त्ता। रुद्रकोटि सत सम संहर्ता ॥

धनद कोटि सत मम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवाधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि राम ब्रह्मा, विष्णु और शिव से बहुत ऊँचे परात्परब्रह्म हैं।

(३) दार्शनिक-भावना—यद्यपि हिन्दू जनता में अत्यन्त प्राचीनकाल से अवतार की भावना चली आ रही है; किन्तु जब अद्वैतवाद के प्रतिपादक स्वामी शंकराचार्य ने *ब्रह्म की जिस व्यावहारिक सगुण-सत्ता को स्वीकार किया*, वह स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा सं० १०७३ में सम्प्रदाय के घेरे में प्रतिष्ठित हुई, अर्थात् राम-भक्ति ने संप्रदाय का रूप ग्रहण किया। इस समय रामानुज के 'श्री' सम्प्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासन का विधान हुआ। आगे चलकर इस सम्प्रदाय में उच्चकोटि के सन्त हुए। विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के अन्त में वैष्णव 'श्री' सम्प्रदाय के प्रधानाचार्य राघवानन्दजी हुए, जो काशी में रहते थे, उन्होंने रामानन्दजी को दीक्षा दी। दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त श्रीरामानन्दजी ने समग्र भारत का पर्यटन कर इस सम्प्रदाय का प्रचार किया, जिसमें उन्हें उत्तर-भारत में विशेष सफलता प्राप्त हुई। इस सम्प्रदाय में श्रीरामानन्दजी ने जाँति-पाँति का प्रतिबन्ध न रखा, इसलिए यह सम्प्रदाय सर्वसाधारण के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

श्रीरामानन्दजी ने श्रीरामानुजाचार्य के सम्प्रदाय में दीक्षित होकर भी अपनी उपासना-पद्धति भिन्न रखी; अर्थात् उपासना के निमित्त वैकुण्ठ-निवासी विष्णु का स्वरूप न ग्रहणकर दाशरथि राम (जो राम विष्णु के अवतार हैं) का ही आश्रय ग्रहण किया। इनके राम इष्टदेव हुए और राम-नाम मूलमंत्र हुआ। यद्यपि इनके पूर्व भी राम की भक्ति प्रचलित थी, क्योंकि रामनुजाचार्य ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, उसके प्रवर्त्तक शठकोपाचार्य पाँच पीढ़ी प्रथम हो चुके हैं।[१] शठकोपाचार्य ने अपनी 'सहस्रगीति' में कहा है—

"दशरथस्य सुतं त विना अन्य शरणवान्नास्मि।"

१—दे० 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' आचार्य शुक्लकृत, छठां संस्करण पृ० १२८।

स्वामी रामानुज के पश्चात् उनके शिष्य कुरेश स्वामी ने राम-भक्ति संबंधी 'पंचस्तवी' ग्रन्थ की रचना की। आगे चलक श्रीरामानन्द के शिष्य हुए—कबीर, रैदास, सेन नाई और गांगरौनगढ़ के राजा पीपा; जो विरक्त होकर पक्के भक्त हुए। भक्तमाल में रामानन्दजी के बारह शिष्यों का उल्लेख है, इन्हीं शिष्यों की परम्परा में भक्तवर कवि गोस्वामी तुलसीदास हुए, जिन्होंने स्वामी रामानन्दजी के सिद्धान्तों को लेकर अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा व्यापक ढंग से रामभक्ति का प्रचार किया। रामभक्ति के पीछे तुलसीदास की जो दार्शनिक भावना मिलती है, वह उनके 'विनय-पत्रिका' और 'मानस' के अन्तर्गत अत्यन्त विशुष्ट और रहस्यपूर्ण होने पर भी बड़े ही सरल ढंग से देखने को मिलती है। स्तुति, आत्म-बोध और आत्म-निवेदन का अधिक अंश हो जाने के कारण 'विनय-पत्रिका' में अधिक स्पष्टीकरण नहीं हो पाया है, किन्तु फिर भी कुछ पद अवश्य ऐसे हैं, जिसमें आचार्य शंकर के मायावाद का निरूपण और उसे भ्रम तक कह डालने का संकेत मिलता है :—

> "केसव कहि न जाइ का कहिए।
> देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिए।
> सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे॥
> धोए मिटै न मरइ भीति, दुख पाइअ एहि तनु हेरे।
> रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं॥
> बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं।
> कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै॥
> तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै।"

'विनय-पत्रिका' के इस पद के अनुसार तुलसीदासजी आचार्य शंकर के अद्वैतवाद को मानते हुए भी उसे 'भ्रम' मानते थे। इसके अतिरिक्त 'मानस' में जहाँ तुलसीदास ने घटना प्रसंग में भी दर्शन का पुट दे दिया है, दर्शन का व्यापक और परिमार्जित रूप देखने को मिलता है। बाल-काण्ड में जहाँ उन्होंने ईश्वर-भक्ति का निरूपण किया है, अपने दार्शनिक विचारों का आभास दे दिया है। इसी प्रकार लक्ष्मण-निषाद-सम्वाद, राम-नारद-सम्वाद, वर्षा-शरद-वर्णन,

राम-लक्ष्मण संवाद, गरुड़ और काकभुशुण्डि-संवाद में गोस्वामीजी ने अपनी दार्शनिक विचार-धारा का परिचय दे दिया है। तुलसीदास ने पूर्ण ब्रह्म राम को ही माना है। 'विधि हरिहर बंदित पद रेनू।' 'विधि हरि संभु नचावनिहारे' आदि का जो वर्णन अनेक बार आये हैं, वे अद्वैतवादी ब्रह्म के ही विशेषण हैं। इस अद्वैतवाद की व्याख्या में माया के लिए भी स्थान है, जिसका वर्णन स्थान-स्थान पर गोस्वामीजी ने किया है। इनके वैष्णव होने में तो कोई संदेह है ही नहीं, अतः ये अवतारवादी भी माने जायँगे। क्योंकि 'मानस' में अपने इष्टदेव को *अद्वैतवाद के शब्दों में व्यक्त करते हुए भी उसे गोस्वामीजी ने* विशिष्टाद्वैत के गुणों से विभूषित कर दिया है :—

'एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा॥
व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपालु प्रनत अनुरागी॥'

जहाँ तुलसीदास अपने ब्रह्म को अद्वैतवाद के अन्तर्गत यह दिखाते हैंकिः—
"गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।"
"नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥"
"व्यापक एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥"
"ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥"

वहाँ उसे विशिष्टाद्वैतवाद के अन्तर्गत लाने के लिए सती से प्रश्न उपस्थित करा देते हैं :—

"ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥"

जिसके उत्तर में कहा गया—
"*सगुनिहिं अगुनिहिं नहिं कछु भेदा।* गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिय बिमोह *प्रसंगा॥*"

× × ×

"जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान-गुन धामू ॥
जासु सत्यता तें जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥
रजत सीप महँ मास जिमि जथा भानुकर बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि ॥"
"एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई । जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौं सपने सिर काटै कोई । बिन जागे न दूरि दुख होई ॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई ॥
आदि अन्त कोउ जासु न पावा । मति अनुमान निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु कामा । कर बिनु करम करै बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । गहै घ्रान बिनु बास असेखा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइनहिं बरनी ॥
जेहि इमि गावहि बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान ॥"

अर्थात् गोस्वामीजी ने अद्वैतवाद के अन्तर्गत विशिष्टाद्वैत की सृष्टि कर
ी है । 'मानस' के समग्र अवतरणों से पता चलता है कि तुलसीदास अद्वैतवाद
ो तो श्रद्धा की दृष्टि से देखते तो हैं; किन्तु वे अनुयायी थे, विशिष्टाद्वैत के
ी । आचार्य शुक्लजी के शब्दों में :—

'साम्प्रदायिक-दृष्टि से तो वे रामनुजाचार्य के अनुयायी थे, जिनका
नेरूपित सिद्धान्त भक्तों की उपासना के अनुकूल दिखायी पड़ा ।'

गोस्वामीजी ने ब्रह्म को व्यापक दिखलाने के लिए अद्वैतवाद का रूप अवश्य अपनाया और उसे माया से समन्वित भी किया, किन्तु भक्त होने के नाते भक्ति का अवलम्ब ग्रहण कर उन्होंने ब्रह्म को विशिष्टाद्वैत के द्वारा ही निरूपित किया है । यही कारण था, जहाँ कहीं भी उन्होंने अद्वैतवाद के अन्तर्गत ब्रह्म का निरूपण किया है, वहाँ उसे उन्होंने भक्ति-मार्ग का आराध्य भी माना है ।

लक्ष्मण के पूछने पर :—

"ईस्वर जीवहिं भेद प्रभु कहहु सकल समुझाइ ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥"

भगवान् राम उत्तर देते हैं।—

"माया ईस न आपु कहँ जान कहिय सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव॥"

"जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥"

'मानस' में ब्रह्म राम को गोस्वामीजी (अद्वैतवादरूप में मानते हुए भी) विशिष्टाद्वैतवाद के अन्तर्गत ही निरूपित करते हैं—१—पर-रूप, २—व्यूह-रूप, ३—विभव-रूप, ४—अन्तर्यामी-रूप और ५—अर्चावतार रूप ये पाँच कोटियाँ विशिष्टाद्वैतवाद की हैं, जिनका विश्लेषण निम्न प्रकार से है :—

१—पर-रूप—जिसके अनुसार यह रूप वासुदेव स्वरूप है। यह परमानन्दमय और अनन्त है। 'मुक्त' तथा 'नित्य' जीव उसी में लीन हैं; यह ऐश्वर्य, तेज, ज्ञान वीर्य और बल आदि षड्गुण्य विग्रहरूप है। राम को यही रूप दिया गया है, उनके प्रत्येक कार्यों पर देवता जो नित्य जीव हैं, फूल बरसाते हैं और अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं, इसका वर्णन यत्र-तत्र 'मानस' में मिलता है।

"ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम-भगति-बस कौसिल्या के गोद॥"

२—व्यूहरूप—यह स्वरूप विश्व की सृष्टि तथा लय के हेतु है। षड्गुण्य विग्रह में से मात्र दो गुण ही स्पष्ट होते हैं, वे छःगुणों में से चाहे ज्ञान और बल हों, चाहे ऐश्वर्य और वीर्य, चाहे शक्ति या तेज हों। 'मानस' में इसका निरूपण इस प्रकार है :—

"जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥"

३—विभव-रूप—इसके अन्तर्गत विष्णु के अवतार मुख्य हैं, वास्तव में यह रूप नर-लीला के लिए होता है, 'मानस' में इसका वर्णन इस प्रकार है :—

"जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहिं लागि धरिहौं नर बेसा॥
अंसन सहित मनुज अवतारा। लेहहउँ दिनकर बंस उदारा।
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निरभय होहु देव समुदाई॥"

निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥"

(४) अन्तर्यामी-रूप—इसके अनुसार ईश्वर समग्र ब्रह्माण्ड की गति से अवगत रहता है। वह जीवों के अन्तःकरण में प्रविष्ट कर उनका नियमन करता रहता है। इसी रूप में श्रीरामचन्द्रजी ने अवतार के रहस्यों को सुलझाया है। 'मानस' में स्थान-स्थान पर इसका संकेत मिलता है :—

"तुम सर्वग्य कहउँ सति भाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ ॥"
"तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सवाँरन ॥"

(५) अर्चावतार-रूप—इसके अनुसार ब्रह्म का स्वरूप भक्तों के हृदय में अधिष्ठित होता है, वे जिस रूप से ब्रह्म को चाहते हैं, वह उसी रूप में उन्हें प्राप्त होता है। 'मानस' में इसका उदाहरण देखिए :—

"माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजिय सिसु लीला अतिप्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भव-कूपा ॥"

अद्वैतवाद को मानने पर भी विशिष्टाद्वैतवाद के पोषक महात्मा तुलसीदास ने 'मानस' में भलीभाँति स्पष्ट कर दिया है कि उनके सम्प्रदायगत विचार विशिष्टाद्वैतवाद से अधिक प्रभावित हैं। राम-जन्म के प्रसंग में माता कौशल्या द्वारा जो स्तुति करायी गयी है, वह पूर्णरूप से विशिष्टाद्वैतवाद के अन्तर्गत मानी जायगी। स्तुति की पृष्ठ-भूमि एवं रूप-चित्रण :—

"भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप बिचारी ॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी ॥"

इसके पश्चात् १—पर-रूप का संकेत :—

"कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता ॥

२—व्यूह-रूप का संकेत :—

"करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता ।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ॥"

३—विभव-रूप का संकेत :—

"ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै ।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥"

४—अन्तर्यामी-रूप का संकेत :—

"उपजा जब ग्याना प्रभु मुस्काना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै ।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥"

५—अर्चावतार-रूप का संकेत :—

"माता पुनि बोली सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा ।
कीजै सिसु लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ।
यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥"
बिप्र धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार ।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार ॥"

गोस्वामीजी ने धार्मिक-सिद्धान्तों में अति सहिष्णु होने के कारण अद्वैतवाद-विशिष्टाद्वैतवाद का विरोध दूर करने के उद्देश्य से राम के व्यक्तित्व में दोनों वादों का समन्वय कर दिया है। तुलसीदास के पहले 'अध्यात्म-रामायण' में सारी राम-कथा अद्वैतवाद की भावना के अन्तर्गत वर्णित है और गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' का प्रधान आधार ग्रन्थ 'अध्यात्म रामायण' को बनाया था अतः 'मानस' में स्थान-स्थान पर उसकी दार्शनिक भावना की स्वतः छाप पड़ी हुई है, किन्तु यह मानकर ग्रन्थ की रचना करने के कारण कि—

"सीय राममय सब जग जानी । करौं प्रनाम जोरि जुगपानी ।"

मानना पड़ेगा कि, गोस्वामीजी ने जिस ब्रह्म का निरूपण किया है वह विशिष्टाद्वैतवाद के सिद्धान्तों के अनुसार है।

१०—भाषा सम्बन्धी विचार

गोस्वामीजी की रचनाओं के पहले ही अवधी भाषा में काव्य-रचना हो चुकी थी, किन्तु उसमें साहित्यिक-परिष्करण की कमी थी, वह 'मानस' की रचना से पूरी हुई। तुलसीदास के समय में कृष्ण-काव्य ब्रजभाषा में लिखा जा रहा था, अतः उससे प्रभावित होकर 'गीतावली' 'कृष्ण गीतावली' 'कवितावली' और 'विनय पत्रिका' की रचना उन्होंने ब्रजभाषा में भी की।

अवधी एवं ब्रजभाषा के अतिरिक्त गोस्वामीजी ने अन्य भाषाओं के शब्दों को भी अपनी कृतियों में अपनाया है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

(१) भोजपुरी भाषा का प्रयोग—

'राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलु भाई रे।

× × ×

हमहिं दिहल करि कुटिल करम चंद मंद मोल बिनु डोला रे ॥

× × ×

मन्द बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ॥'

—'विनय-पत्रिका'

"खोटो खरो रावरे हौं रावरी सौं, रावरे सों,
झूठ क्यों कहौंगो ? जानौ सबही के मनकी।"

—'विनय-पत्रिका'

'सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल।'

'राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार।"

'धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहँवाँ ॥

—'मानस'

उपर्युक्त अवतरणों के 'दिहल', 'रावरे' 'मरायल' 'धायल' 'तहँवा' और 'जहँवा' आदि शब्द भोजपुरी भाषा के प्रभाव के सूचक हैं।

(२) बुन्देलखण्डी भाषा का प्रयोग—

"ए दारिका परिचारिका करि पालबी करूनामई।
अपराध छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यो कई॥

× × ×

"परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानिवी॥"
'पठए भरत भूप ननिअउरे। राम मातु मत जानव रउरे'
—'मानस'

'लषनलाल कृपाल निपटहि अरिबो न बिसारि।' —'गीतावली'
'मेरिओ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चालइ।' —विनय-पत्रिका'
"तौ लौं मातु आपु नीके रहिबो।
जौ लौं हौं ल्यावौं रघुबीरहि दिन दस और दुसह दुख सहिबो।"
—'गीतावली'

आदि में 'पालबी, 'जानबी' 'मानिबी' 'अरिबो' 'द्याइबी' 'रहिबो' 'ल्यावौं' और 'सहिबो' आदि शब्द बुन्देलखण्डी के प्रयुक्त हुए हैं।

(३) खड़ी बोली का प्रयोग—

"अब जनमि तुम्हरे भवन निजपति लागि दारुन तप किया।"
'गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा।'
'यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुरनर नाह आपन, दास अंगद कीजिए॥"
'रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहँ गई॥"
—'रामचरित-मानस'

'प्रातकाल रघुबीर बदन छवि चितै चतुर चित मेरे।
होहिं बिबेक बिलोचन निर्मल सफल सुसीतल तेरे॥"
'करि आई, करिहैं, करती हैं, तुलसिदास दासन पर छाहैं।'
—'गीतावली'

'नष्ट मति दुष्ट अति कष्ट रत खेद गत
दासतुलसी संभु सरन आया। —'विनयपत्रिका'

आदि में 'किया', 'गए', 'लीजिए', 'कीजिए', 'गई' 'मेरे', 'तेरे', कहते हैं; और 'आया' आदि खड़ी-बोली के प्रयोग हैं।

(४) बंगला भाषा का प्रयोग—

'सोक बिबस कछु कहै न पारा।'

"जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर तहँ भैंसा॥"

"अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसें॥"

'सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं।'

—'राम-चरित-मानस'

उपर्युक्त अवतरणों में 'पारा'=सका, 'बैसा'=बैठा, बैसे'=बैठे और 'खटाहिं'= निभाना आदि बंगला के शब्दों के प्रयोग हैं। जिनका हिन्दी के शब्दों के साथ सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(५) गुजराती भाषा का प्रयोग—

"का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें॥"

'इन्द्र सम काहुँ न सिव अवराधे। काहुँ न इन्द्र समान फल लाधे॥"

—'राम-चरित-मानस'

"तजि आस भो दास रघुप्पति को दसरत्थ को दानि दया-दरिया।"

"पालों तेरो टूकको परेहू चूक मूकिए न कूट कौड़ी दूका हौं आपनी ओर हेरिए।"

—'कवितावली'

"सुनि खग कहत अब मौगी रहि समुझि प्रेम पथ न्यारो।'

—'गीतावली

उपर्युक्त अवतरणों में—

'जून' 'लाधे' 'दरिया' और मौगी' आदि क्रमशः 'जीर्ण' 'प्राप्त किया' 'समुद्र' और 'मौन' के अर्थ में (गुजराती शब्दों का) प्रयोग हुआ है।

(६) राजस्थानी भाषा का प्रयोग—

"तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥"

"एहि अवसर चाहिय परम सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल॥"

"मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥"

—'मानस'

"काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल ।"
"जियत न नाई नारि, चातक घन तजि दूसरहिं ॥"
—"दोहावली"

"दास तुलसी समय बदति मय-नन्दिनी, मंदमति कंत सुनु मंत म्हाको ।"
—"कवितावली"

आदि में 'मेला'='डालना' 'मेले'–'डाले' 'मारा'='लगाया' "दारू" ='बारूद', और 'नारि'='गर्दन' 'म्हाको'–'हमारा' आदि राजस्थानी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

(७) अरबी-फारसी का प्रयोग—

"गनी गरीब ग्राम नर नागर। पंडित मूढ़ मलीन उजागर ॥"
"गई बहोरि गरीब निवाजू। सरल सबल साहिब खुराजू ॥"
"असमंजस अस मोहिं अदेसा।" 'लोकप. जाके बंदीखाना ॥'
"जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥" "कुंभकरन कपि फौज बिडारी ॥"
"भइ बकसीस याचकन्ह दीन्हा ॥" —'मानस'

आदि में 'गनी गरीब' 'उजागर' 'निवाजू' 'साहिब' 'अँदेसा' 'बंदीखाना' 'जहाना' 'फौज' और बकसीस' आदि अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग विदेशीसे देशी बनाकर किये गये हैं।

(८) संस्कृत शब्दावली का प्रयोग—

'मानस' और 'विनय-पत्रिका' में इसके उदाहरण भलीभाँति देखे जा सकते हैं। इनमें संस्कृत के शुद्ध तत्सम शब्दों का और कहीं-कहीं उन्हें विकृत करके रचना में प्रयोग किया गया है :—

"सो गोसाइं नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहौं पन रोपी ॥"
"सिद्ध विरक्त महामुनि जोगी। तेपि काम बस भए बियोगी॥"
"पश्यंति यं जोगी जतन करि। करत मन गो बस सदा।"
"सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेश करत करि दाया ॥"
—'मानस'

आदि में 'कोपी', 'तेपि', 'पश्यंति' 'यं' और 'सोपि' क्रमशः 'कोऽपि' 'तेऽपि', 'पश्यन्ति' '' और सोऽपि के ही विकृत रूप हैं—

(६) प्राकृत और अपभ्रंश का प्रयोग—

'सम्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहो ॥"

—'मानस'

"डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्रसर।
दिग्गमन्द लरखरत परत दसकण्ठ मुक्खभर ॥"

"मानों प्रत्यच्छ परब्बत को नभ लीक लसी कपियों धुकि धायो।"
आदि उदाहरण दिए जा सकते हैं।

—'कवितावली'

गोस्वामीजी के पूर्व 'भाषा' में जो रचना की जाती थी, वह आदरहीन रचना समझी जाती थी। इसका संकेत स्वयं कवि के ही शब्दों में मिलता है :—

"भाषा भनित मोरि मति थोरी। हँसिबे जोग हँसे नहि खोरी॥

किन्तु 'भाषा' में राम-कथा की रचना कर इन्होंने इसका बड़ा ही महत्व बढ़ाया है। 'भाषा' में रचना करने के कारण गोस्वामीजी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को भी तद्भव कर सरल बना दिया है। इस प्रणाली के अनुसार तुलसीदास की रचना की वर्णमाला निम्नांकित होगी :—

स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, अं।

व्यंजन—क, ख, प्रायः 'ष' के रूप में इसका प्रयोग किया गया है।

ग, घ, च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, प, स, ह, ड़, और, ढ़, हैं।

११—भाषा संबंधी अन्य विचार

तुलसी की काव्यगत भाषा का विचार वैज्ञानिक, शास्त्रीय और भावात्मक-दृष्टिकोण से पूर्ण संतुलित है, यहाँ कुछ विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भाषा संबंधी विचार के अन्तर्गत भाषा-विज्ञान और व्याकरण आता है, जिसके अन्तर्गत विविध बोलियों के रूपों की छान-बीन, व्याकरणीय विशिष्टताओं का विश्लेषण, संज्ञा, सर्वनाम, लिंग, वचन, विभक्ति तथा कारक

चिह्नों का विवेचन, विशेषणों, क्रियापदों और अव्ययों का विश्लेषण आदि का विचार किया जाता है । शास्त्रीय दृष्टि के अन्तर्गत लक्षण-ग्रन्थों के आधार पर एक निश्चित मापदण्डानुसार शब्द-शक्तियों, रीति, ध्वनि-अलंकार आदि काव्य के गुण-दोष तथा खण्ड काव्य, गीति-काव्य और महाकाव्यादि विभिन्न काव्य-कोटियों का निर्धारण होता है । इसी प्रकार भावात्मक दृष्टिकोण से काव्य की पदावली की रमणीयता, शब्द-चयन वाक्य-विकास का नैपुण्य, लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग की कुशलता, शब्दों की संगीतमयता तथा नाद-सौन्दर्य आदि का विचार किया जाता है । तुलसी की रचनाओं में यथा स्थान इन सभी विशेषताओं के दर्शन होते हैं ।

गोस्वामीजी अपनी प्रतिभा से संस्कृत-भाषा का पुट देकर अपने 'मानस' में पूरी सफलता से 'भाषा' में 'राम-कथा' की रचना की । तुलसीदास की वर्णमाला में अवधी का बड़ा व्यापक प्रभाव है ; क्योंकि अवधी की समस्त व्याकरण संबंधी विशेषताएँ उनकी रचनाओं की भाषा में पूरी तरह व्याप्त हैं । शब्दों के प्रयोग में उन्होंने स्वतंत्रा से काम लिया है; यहाँ कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं, छन्द की दृष्टि से गोस्वामीजी ने जहाँ चाहा है, वहीं ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर दिया है; जैसे 'आशंका' को 'असंका', 'आशीर्वाद' को 'आसिर-वाद', । 'मुनीश' को 'मुनीसा', हरीश' को 'हरीसा' 'राहु' को 'राहू' आदि का प्रयोग ।

संस्कृत शब्दावली को तोड़मरोड़ कर किस प्रकार सुन्दर ढंग से गोस्वामीजी ने 'भाषा में प्रयुक्त किया है, उसके लिए भी किस नियम का पालन हुआ है; यहाँ पर इस प्रकार के शब्दों के रूपान्तर पर प्रकाश डाला जा रहा है :—

१ — कुछ अकारादिक क्रियाओं के आदि के 'अ' का विकल्प से लोप हो जाता है, उदाहरण के लिए 'अह' को लीजिए जिसके 'अहइ', 'अहहिं' और 'अहहु' रूप होते हैं । इसका विकल्प से 'अ' का लोप होकर 'हइ', 'है', 'हहिं'-'हैं', 'हहु'-'हौ' रूप बन जाता है—'हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई ।'–'मानस' ।

२—कुछ शब्दों में आरम्भ या बीच के किसी व्यंजन के साथ लगे हुए 'अ' के स्थान में 'उ' किया गया है; जैसे 'शिशिपा', 'अञ्जलि' और 'सफल' आदि में गोस्वामीजी ने 'सि[illegible]पा' 'अंजुलि' और 'सफल' बनाकर व्यवहृत किया है।

३—कुछ शब्दों में पूर्व उच्चारण की सरलता के हेतु 'अ' जोड़ दिया गया है; जैसे 'स्तुति', 'स्नान', 'स्थान' आदि में 'अस्तुति', 'अस्नान' और 'अस्थान' कर दिया है।

४—अकारान्त स्त्रीलिंग भाववाचक संज्ञा शब्दों के पीछे-पीछे कहीं-कहीं 'ई' भी जोड़ दी गयी है। जैसे 'प्रभुता', 'सजा', 'रजा' और 'मनोहरता' आदि को 'प्रभुताई', 'सजाई', 'रजाई' और मनोहरताई' आदि रूप दिया गया है।

५—संयुक्ताक्षरों के अव्यवहित पूर्व में आनेवाले दीर्घ स्वरों को प्रायः ह्रस्व कर दिया गया है। जैसे—'आज्ञा', 'मुनीन्द्र', 'दीक्षा', 'परीक्षा' आदि को 'अग्या', 'मुनिन्द्रा', 'दिच्छा' और 'परिच्छा' आदि रूप में प्रयुक्त किया गया है।

६—उकारादि शब्दों में आदि के 'उ' के स्थान में कहीं-कहीं 'हु' कर दिया गया है, जैसे 'उल्लास' शब्द को 'हुलास' बना दिया गया है।

७—शब्दों के आदि, अन्त और मध्य में आनेवाले उकारान्त व्यंजनों को कहीं-कहीं अकारान्त कर दिया गया है जैसे 'गुरु', 'दयालु', 'कृपालु', 'उडुगण', 'भीरु', 'कुधातु', 'तनु', 'कुपुत्र', 'अनुरूप', 'अनुकूल' आदि शब्दों का रूप 'गुर', 'दयाल', 'उडगन', 'भीरु', 'कुधात', 'तन', 'कपूत', 'अनरूप' और 'अनकूल' किया गया है।

८—कहीं-कहीं शब्द के आदि 'उ' को वहाँ से हटाकर उसके आगे के व्यंजन के साथ जोड़ दिया गया है और कहीं-कहीं इसके विपरीत आदि के उकारान्त व्यंजन को अकारान्त बनाकर 'उ' को उसके प्रथम जोड़ दिया गया है। जैसे 'उल्का' शब्द के 'उ' को आदि में से हटाकर 'ल' में जोड़ दिया गया और इस प्रकार उसका रूप 'लूक' कर दिया गया, इसी प्रकार 'पुरोहित' के 'उ' को 'प' से हटाकर उसके पूर्व में बैठा दिया गया, जिससे उसका रूप 'उपरोहित' हो गया।

९—किसी वर्ण का उसी वर्ण के साथ संयोग होने पर उसके अव्यवहित पूर्व में आनेवाले ह्रस्व स्वर को प्राय दीर्घ कर दिया गया है, जैसे 'उत्तर' का 'ऊतर', 'मत्त' का 'माता' और 'मल्ल' का 'माल'।

१०—शब्दों के प्रारम्भ के अकारान्त व्यंजनों के 'ऋ' को 'ऊ' अथवा 'ऊँ' रूप में बदल दिया गया है, जैसे, 'वृद्ध' से 'बूढ़ा', 'पृच्छ' से पूछ या पूँछ और

२२—शब्दों के मध्यवर्ती अथवा पदान्त के 'श', 'ष' और 'स' के स्थान में 'ह' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'बीस' के स्थान पर 'बीह', 'दश' के 'दह' इसी प्रकार 'एकादश' से 'एगारह', 'द्वादश' से 'बारह', 'केसरी' से 'केहरी', 'एष' से 'एह' और 'नष्काम' से 'निहकाम' आदि।

२३—किसी-किसी शब्द के पूर्व छन्द के अनुरोध से 'स' जोड़ा गया है; जैसे—'अवकास', 'चकित', 'नर', 'चेतन', 'प्रेम', 'अनुकूल', 'भीत' और 'संकेउ' आदि में 'सावकास', 'सचकित', 'सचर', 'सचेतन', 'सप्रेम', 'सानुकूल', 'सभीत' और 'ससंकेउ' आदि। कहीं-कहीं 'स' के साथ 'य' का संयोग होने पर 'स' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'स्थापयन्ति' क्रिया का 'थापहि', 'स्थपित', से 'थपित', 'स्थिति' का 'थिति, 'स्थिर' का 'थिर' आदि रूप कर दिया गया है। इसी प्रकार 'स' के पहले 'त' अथवा 'प' का संयोग होने पर और कहीं-कहीं केवल 'स' को भी 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'अप्सरा' से 'अपछरा', 'वत्स' से 'बच्छ' 'मत्सर' से 'मच्छर', 'उत्संग' से 'उछंग', 'उत्साह' से 'उछाह' कर दिया गया है। 'स' के आगे 'त' का संयोग होने पर दोनों के स्थान में एक रूप से 'थ' का प्रयोग हुआ है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'हस्त' से 'हाथ' और 'अस्त' से 'अथैना' आदि।

२४—शब्दों के आरम्भ, मध्य अथवा अन्त में 'ष' के स्थान में कहीं-कहीं 'स' कर दिया गया है; जैसे—'षष्ठि' से 'साठि', 'तुषार' से 'तुसार', 'रोष' से 'रोस', 'शेष' से 'सेस' और 'दोष' से 'दोस', 'मनुष्यता' से 'मनुसाई', कहीं-कहीं शब्दों के आरम्भ में 'ष' को 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'षट्' से 'छह'। 'ष' के साथ 'ट' अथवा 'ठ' का संयोग होने पर दोनों स्थानों में एक रूप 'ठ' कर दिया गया है और पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'दष्ट' से 'दीठा', 'अष्ट' से 'आठ', 'मुष्टि' से 'मूठी' और 'पृष्ठ' से 'पीठि' आदि।

२५—व के प्रथम किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर 'व' के स्थान में कहीं-कहीं और 'उ' कहीं 'ओ' कर दिया गया है; जैसे 'स्वभाव' से 'सुभाऊ' 'त्वरित' से 'तुरित' 'त्वरावती' से 'तोरावति' कहीं-कहीं ऐसे स्थानों में 'व' का लोप भी कर दिया गया है जैसे-'श्वसुर' से 'ससुर' 'सरस्वती' से 'सरसइ' 'जिह्वा' में 'जीहा' 'पार्श्व' से 'पास' 'तेजस्वी' से 'तेजसी' और कहीं-कहीं शब्दों के मध्यवर्ती 'व' का भी लोप करके उसके साथ का स्वर मात्र रखा गया है, जैसे—'भुवन' का 'भअन'।

२६—कहीं-कहीं शब्दों के आरम्भ अथवा मध्य के 'ल' के स्थान में 'न' कर दिया गया है; जैसे—'पलास' से 'पनास' और 'लंघ' से 'नाघना'। कहीं-

कहीं इसके विपरीत 'न' के स्थान में 'ल' का प्रयोग हो गया है; जैसे—'नौका' से 'लौका' आदि। शब्दों के मध्यवर्ती एवं पदान्त के 'ल' के स्थान 'र' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'काली' से 'कारी' 'विकराल' से 'बिकरार', 'कदली' से 'कदरी', 'अन्त्रावली' से 'अंतावरी' 'शीतल' से सिअर' आदि

२७ रेफ के आगे किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर कभी-कभी रेफ का लोप कर दिया जाता है, और पूर्ववर्ती स्वर को प्रायःदीर्घ कर दिया जाता है, जैसे 'वर्ति' से 'बाती' 'कीर्त्ति' से 'कीती' 'सर्व' से 'सब' तथा 'कार्य' से 'काज' हुआ है। रेफ अथवा 'ऋ' के परवर्त्ती 'त' 'ध' अथवा 'द्ध' को कभी-कभी क्रमशः 'ट' और 'ढ' के रूप में बदल दिया गया है और 'ट' एवं 'ढ' के संयुक्त रेफ अथवा अन्य किसी व्यंजन को भी क्रमशः 'ट' अथवा 'ढ' कर दिया गया है; जैसे 'वर्त्म' का 'बट्ट' 'सार्द्ध' का 'सड्ढ' 'वृद्ध' का 'बुड्ढ' । रेफ के पीछे 'प' का संयोग होने पर कभी-कभी, 'प' के स्थान में 'प' का प्रयोग है, जैसे 'सर्प' से 'सप्प' 'खर्पर' से 'खप्पर'। रेफ के आगे 'य' अथवा 'म' का संयोग होने पर कहीं-कहीं रेफ 'य' के पूर्ववर्त्ती व्यंजन के आगे संयुक्त हो गया है,—'पर्यन्त' से प्रर्जत 'तिर्यक' (पशु-पक्षी आदि योनि) से 'त्रिजग' 'कर्म' से 'क्रम' हो गया है।

२८—उकारान्त विशेषण शब्दों के आगे पुल्लिंग में 'अ' और स्त्रीलिंग में 'इ' या 'ई' जोड़ा गया है; जैसे—'कडु' (कटु) से 'कडुअ', 'हरु' से 'हरुअ', या 'हरुइ' 'गुरु' से 'गरुअ' अथवा 'गरुइ' आदि।

२९—'र' के पूर्व किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर 'र' का प्रायः लोप हो गया है, जैसे 'प्रन' से 'पन', 'त्रिय' से 'तिय' 'प्रिय' से 'पिय' 'प्रेम' से 'पेम', 'प्रयाग' से 'पयाग', 'प्रयाण' से 'पयान', 'अन्यत्र' से 'अनत', 'गात्र' से 'गात' और 'द्रोह' से 'दोह'। पदान्त के 'य' के अव्यवहित पूर्व में आनेवाले 'इ' को कहीं-कहीं दीर्घ करके 'य' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'तिय' (स्त्री) का 'ती', 'पिय' (पति) का 'पी', 'हिय' (हृदय) का 'ही', 'सुनिय' (सुनिअ) का 'सुनी', 'पाइय' (पाइअ) का 'पाई' हो गया है।

३०—'य' के पूर्व किसी कि और वर्ण का संयोग होने पर कभी-कभी 'य' का लोप हो गया है, जैसे 'स्यन्दन' का 'संदन', 'अन्यत्र' का 'अनत', 'ज्योति' का 'जोति', 'माणिक्य' का 'मानिक', 'श्यामल' का 'साँवरो', 'श्यामकर्ण' का

'वृद्ध' के 'ध' का लोप होकर 'रूँख' हो गया है। कहीं-कहीं ऐसे स्थानों में 'ऋ' का रूप 'इ' कर दिया गया है, जैसे 'तृण', 'निकृष्ट' 'दृढ़ाई' 'प्रावृट्', 'दृष्ट', शृंगार', 'दृगञ्चल', 'पृष्ठ' आदि शब्दों के स्थान में 'तिन', 'निकिष्ट', 'दिढ़ाई', 'प्राविट', 'दीठा', 'सिंगार', दिगंचल' और 'पीठि' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

११—'ऋ' के स्थान में कहीं-कहीं 'उ' भी हो गया है; जैसे 'मातृ' 'पितृ' से 'मातु', 'पितु' और मृत से 'मुए' बन गया है। 'वृद्ध', 'सृजा' आदि शब्दों में 'ऋ' के स्थान पर 'इ' होकर उसके पीछे 'रि' जोड़ा गया है जिससे 'बिरिध' और सिरिजा' शब्द बने हैं। 'वृद्ध' के 'द' का कहीं-कहीं लोप हो गया है जैसे 'रिधि' सिधि' जो 'ऋद्धि' और 'सिद्धि के विकृत रूप हैं।

१२ —शब्दों के मध्यवर्ती 'क' के स्थान में कहीं-कहीं' 'अ' हो जाता है — जैसे सूकर' से 'सूअर', 'निकट' से निअराना आदि। कहीं-कहीं पदान्त के और मध्य के 'क' को 'ग' रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। जैसे 'काक' से 'काग', 'वक' से 'बग' 'पर्यंक' से 'पलंग' 'प्रकट' से प्रगट' 'विकसित' से 'बिगसित', 'युक्ति' से 'जुगुति' और 'भक्ति' से 'भगति'। 'क' के आगे 'त' का संयोग होने पर कहीं-कहीं 'क' का लोप हो जाता है और उसका पूर्ववर्ती ह्रस्वस्वर दीर्घ हो जाता है—जैसे 'रक्त' (अनुरक्त) से 'राता' और रिक्त' से 'रीता' (खाली) बन गया।

१३—'क्ष' के स्थान में कहीं-कहीं 'ह' का प्रयोग हुआ है, जैसे 'दक्षिण' से 'दहिन'। इसी प्रकार पदान्त के 'क्ष' के स्थान में कहींकहीं 'ख' और कहीं 'छ' का प्रयोग हुआ है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है, जैसे 'लक्ष' का 'लाख' 'अक्षि' का 'आँखि' 'मक्षी' का 'माखी' और 'ऋक्ष' का 'रीछ' हो गया है। इसी प्रकार ख' के स्थान में कहीं-कहीं 'ह' हो गया है, जैसे 'मुख' से 'मुह'।

१४ —पदान्त के 'ग' और 'ज' का लोपकर कहीं-कहीं उसके साथ का स्वर-मात्र ही प्रयुक्त हुआ है, जैसे—संजोगू' के स्थान पर 'सजोऊ' 'समाजु' के स्थान पर 'समाउ' 'आम्रराजि' का 'अँवराई' और 'राजु' का 'राउ' आदि। शब्दों के बीचवाले 'ग' के स्थान पर 'य' का प्रयोग हुआ है, जैसे-'मृगांक' के स्थान पर 'मयंक'।

१५—'ग' आगे 'ध' का संयोग होने पर कहीं-कहीं 'ग' का लोप हो जाता है और कहीं-कहीं दोनों के स्थान में 'ढ़' एकरूप हो जाता है। दोनों ही स्थलों में पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घकर दिया गया है, जैसे 'दुग्ध' का 'दूध' तथा दग्ध का 'दाढ़ा'।

१६—'र' के साथ 'न' का संयोग होने पर कहीं-कहीं 'न' का विकल्प से लोप होकर पूर्ववर्ती ह्रस्वस्वर दीर्घ कर दिया गया है, जैसे—'अग्नि' से 'आगि' और जहां लोप नहीं होता, वहाँ बीच में 'इ' का आगम होकर 'अगिनि' हो गया है। 'ष' के स्थान में कहीं-कहीं 'ह' का प्रयोग हुआ है जैसे 'श्लाघ' से 'सराहना' और इसके विपरीत 'ह' से 'घ' का भी प्रयोग किया गया है, जैसे—'सिंह' से 'सिंघ' 'सिंहासन' से 'सिंघासन', 'सिंहल' से 'सिंघल' तथा 'नहुष' से 'नघुष'।

१७ कहीं-कहीं 'च' के स्थान में शब्दों के बीच 'य' का प्रयोग किया गया है; जैसे 'लोचन' से 'लोयन' बचन' से 'बयन' या बैन; 'ज' के स्थान में 'य' का प्रयोग; जैसे—'राज' का 'राय', 'गज' का 'गय' और 'गजेन्द्र' का 'गयंद' आदि।

१८—'ज्ञ' के स्थान में कहीं 'ज' और कहीं 'य' कर दिया गया है, जैसे—'ज्ञान' से 'जान' और 'सज्ञान' से 'सयान' इसी प्रकार अज्ञान' से 'अयान'।' पदान्त के 'ज्ञ' के स्थान में कहीं-कहीं 'न' हो गया है; जैसे -'राज्ञी' से 'रानी'। पदान्त के 'च' के पूर्व 'ञ' का और 'त' के पूर्व 'न' का संयोग होने पर 'ञ' और 'न' लोपकर पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ तथा सानुनासिक कर दिया गया है; जैसे—'पञ्च' का 'पाँच' और 'दन्त' का 'दाँत'।

१६--पदान्त के 'ट' के स्थान पर कहीं-कहीं 'र' हो गया है—'ललाट' का 'लिलार' 'कोटि' का 'कोरि' 'कटु' का 'करु' 'उत्पाट' से 'उपार' 'पुष्पवाटी' से फुलवारी'। कहीं-कहीं 'ज' के स्थान पर 'द' का प्रयोग हुआ है। जैसे—'कागज' से 'कागद'। पदान्त चे 'ठ' के स्थान पर 'ट' का प्रयोग भी कहीं-कहीं किया गया है; जैसे—'पट्' से पढना 'ष' के साथ संयोग होने पर 'ठ' के स्थान पर 'ट' का प्रयोग; जैसे -'वसिष्ठ' के स्थान पर 'बसिष्ट', 'विष्ठा' के स्थान पर 'बिष्टा', 'कुष्ठ' का 'कुष्ट' 'तिष्ठति' का 'तिष्टइ' और 'पापिष्ठ' का 'पापिष्ट'।

२० हलन्त शब्दों को अकारान्त के रूप में प्रयुक्त किया गया है, जैसे—'राजन्' के स्थान पर 'राजन', 'पूषन्' से 'पूषन', 'सकृत्' 'सकृत', से 'उपनिषद्' से 'उपनिषद' इसी प्रकार 'मूर्तिमत्' से 'मूरतिमंत' 'हिमवत्' से हिमवंत' आदि।

२१—शब्दों के आदि अथवा अन्त के 'ह' का कहीं-कहीं लोप होकर उसके साथ का स्वर मात्र शेष रह जाता है; जैसे—'मोही' के स्थान पर 'मोई' (मोहित हुई) तथा 'हृष्ट पुष्ट' के स्थानपर 'रिष्ट-पुष्ट' शब्दों का प्रयोग हुआ है।

२२—शब्दों के मध्यवर्त्ती अथवा पदान्त के 'श', 'ष' और 'स' के स्थान में 'ह' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'बीस' के स्थान पर 'बीह', 'दश' के 'दह' इसी प्रकार 'एकादश' से 'एगारह', 'द्वादश' से 'बारह', 'केसरी' से 'केहरी' 'एष' से 'एह' और 'नष्काम' से 'निहकाम' आदि।

२३—*किसी-किसी शब्द के पूर्व छन्द के अनुरोध से 'स' जोड़ा गया है*; जैसे—'अवकाश', 'चकित', 'चर', 'चेतन', 'प्रेम', 'अनुकूल', 'भीत' और 'संकेत' आदि में 'सावकास', 'सचकित', 'सचर', 'सचेतन', 'सप्रेम', 'सानुकूल', 'सभीत' और 'ससंकेत' आदि। कहीं-कहीं 'स' के साथ 'थ' का संयोग होने पर 'स्' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'स्थापयन्ति' क्रिया का 'थापहिं', 'स्थपित', से 'थपित', 'स्थिति' का 'थिति', 'स्थिर' का 'थिर' आदि रूप कर दिया गया है। इसी प्रकार 'स' के पहले 'त' अथवा 'प' का संयोग होने पर और कहीं-कहीं केवल 'स' को भी 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'अप्सरा' से 'अपछरा', 'वत्स' से 'बच्छ' 'मत्सर' से 'मच्छर', 'उत्संग' से 'उछंग', 'उत्साह' से 'उछाह' कर दिया गया है। 'स' के आगे 'त' का संयोग होने पर दोनों के स्थान में एक रूप से 'थ' का प्रयोग हुआ है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'हस्त' से 'हाथ' और 'अस्त' से 'अथैना' आदि।

२४—शब्दों के आरम्भ, मध्य अथवा अन्त में 'ष' के स्थान में कहीं-कहीं 'स' कर दिया गयाहै; जैसे—'षष्ठि' से 'साठि', 'तुषार' से 'तुसार', 'रोष' से 'रोस', 'शेष' से 'सेस' और 'दोष' से 'दोस', 'मनुष्यता' से 'मनुसाई', कहीं-कहीं शब्दों के आरम्भ में 'ष' को 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'षट्' से 'छह'। 'ष' के साथ 'ट' अथवा 'ठ' का संयोग होने पर दोनों स्थानों में एक रूप 'ठ' कर दिया गया है और पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'दृष्ट' से 'दीठा', 'अष्ट' से 'आठ', 'मुष्टि' से 'मूठी' और 'पृष्ठ' से 'पीठि' आदि।

२५—व के प्रथम किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर 'व' के स्थान में कहीं-कहीं और 'उ' कहीं 'ओ' कर दिया गया है; जैसे 'स्वभाव' से 'सुभाऊ' 'त्वरित' से 'तुरित' 'त्वरावती' से 'तोरावति' कहीं-कहीं ऐसे स्थानों में 'व' का लोप भी कर दिया गया है जैसे—'श्वसुर' से 'ससुर' 'सरस्वती' से 'सरसइ' 'जिह्वा' से 'जीहा' 'पार्श्व' से 'पास' 'तेजस्वी' से 'तेजसी' और कहीं-कहीं शब्दों के मध्यवर्ती 'व' का भी लोप करके उसके साथ का स्वर मात्र रखा गया है, जैसे—'भुवन' का 'भुअन'।

२६—कहीं-कहीं शब्दों के आरम्भ अथवा मध्य के 'ल' के स्थान में 'न' कर दिया गया है; जैसे—'पलाश' से 'पनास' और 'लंघ' से 'नाघना'। कहीं-

कहीं इसके विपरीत 'न' के स्थान में 'ल' का प्रयोग हो गया है; जैसे—'नौका' से 'लौका' आदि। शब्दों के मध्यवर्ती एवं पदान्त के 'ल' के स्थान 'र' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'काली' से 'कारी' 'विकराल' से 'विकरार', 'कदली' से 'कदरी', 'अन्त्रावली' से 'अंतावरी' 'शीतल' से सिअर' आदि

२७ रेफ के आगे किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर कभी-कभी रेफ का लोप कर दिया जाता है, और पूर्ववर्ती स्वर को प्रायःदीर्घ कर दिया जाता है, जैसे 'वर्ति' से 'बाती' 'कीर्ति' से 'कीती' 'सर्व' से 'सब' तथा 'कार्य' से 'काज' हुआ है। रेफ अथवा 'ऋ' के परवर्त्ती 'त' 'थ' अथवा 'द्ध' को कभी-कभी क्रमशः 'ट' और 'ट' के रूप में बदल दिया गया है और 'ट' एवं 'ट' के संयुक्त रेफ अथवा अन्य किसी व्यंजन को भी क्रमशः 'ट' अथवा 'ट' कर दिया गया है; जैसे 'वर्त्म' का 'वट्ट' 'साद्ध' का 'सड्ड' 'वृद्ध' का 'बुड्ड'। रेफ के पीछे 'प' का संयोग होने पर कभी-कभी, 'प' के स्थान में 'प' का प्रयोग है, जैसे 'सर्प' से 'सप्प' 'खर्पर' से 'खप्पर'। रेफ के आगे 'य' अथवा 'म' का संयोग होने पर कहीं-कहीं रेफ 'य' के पूर्ववर्ती व्यंजन के आगे संयुक्त हो गया है,—'पर्यन्त' से प्रजंत 'तिर्यक' (पशु-पक्षी आदि योनि) से 'त्रिजग' 'कर्म' से 'क्रम' हो गया है।

२८—उकारान्त विशेषण शब्दों के आगे पुल्लिंग में 'अ' और स्त्रीलिंग में 'इ' या 'ई' जोड़ा गया है; जैसे—'करु' (कटु) से 'करुअ', 'हरु' से 'हरुअ', या 'हरुइ' 'गुरु' से 'गरुअ' अथवा 'गरुइ' आदि।

२९—'र' के पूर्व किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर 'र' का प्रायः लोप हो गया है, जैसे 'प्रन' से 'पन', 'त्रिय' से 'तिय' 'प्रिय से 'पिय' 'प्रेम' से 'पेम', 'प्रयाग' से 'पयाग', 'प्रयाण' से 'पयान', 'अन्यत्र' से 'अनत', 'गात्र' से 'गात' और 'द्रोह' से 'दोह'। पदान्त के 'य' के अव्यवहित पूर्व में आनेवाले 'इ' को कहीं-कहीं दीर्घ करके 'य' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'तिय' (स्त्री) का 'ती', 'पिय' (पति) का 'पी', 'हिय' (हृदय) का 'ही', 'सुनिय' (सुनिअ) का 'सुनी', 'पाइय' (पाइअ) का 'पाई' हो गया है।

३०—'य' के पूर्व किसी कि और वर्ण का संयोग होने पर कभी-कभी 'य' का लोप हो गया है, जैसे 'स्यन्दन' का 'संदन', 'अन्यत्र' का 'अनत', 'ज्योति' का 'जोति', 'माणिक्य' का 'मानिक', 'श्यामल' का 'सांवरो', 'श्यामकर्ण' का

२२—शब्दों के मध्यवर्ती अथवा पदान्त के 'श', 'ष' और 'स' के स्थान में 'ह' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'दीश' के स्थान पर 'दीह', 'दश' के 'दह' इसी प्रकार 'एकादश' से 'एगारह', 'द्वादश' से 'बारह', 'केसरी' से 'केहरी', 'एष' से 'एह' और 'नष्काम' से 'निहकाम' आदि।

२३—*किसी-किसी शब्द के पूर्व छन्द के अनुरोध से 'स' जोड़ा गया है;* जैसे—'अवकाश', 'चकित', 'चर', 'चेतन', 'प्रेम', 'अनुकूल', 'भीत' और 'संकेउ' आदि में 'सावकास', 'सचकित', 'सचर', 'सचेतन', 'सप्रेम', 'सानुकूल', 'सभीत' और 'ससंकेउ' आदि। कहीं-कहीं 'स्' के साथ 'थ' का संयोग होने पर 'स्' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'स्थापयन्ति' क्रिया का 'थापहि', 'स्थपित', से 'थपित', 'स्थिति' का 'थिति', 'स्थिर' का 'थिर' आदि रूप कर दिया गया है। इसी प्रकार 'स' के पहले 'त' अथवा 'प' का संयोग होने पर और कहीं-कहीं केवल 'स' को भी 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'अप्सरा' से 'अपछरा', 'वत्स' से 'वच्छ' 'मत्सर' से 'मच्छर', 'उत्संग' से 'उछंग', 'उत्साह' से 'उछाह' कर दिया गया है। 'स' के आगे 'त' का संयोग होने पर दोनों के स्थान में एक रूप से 'थ' का प्रयोग हुआ है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'हस्त' से 'हाथ' और 'अस्त' से 'अथैना' आदि।

२४—शब्दों के आरम्भ, मध्य अथवा अन्त में 'ष' के स्थान में कहीं-कहीं 'स' कर दिया गया है; जैसे—'षष्ठि' से 'साठि', 'तुषार' से 'तुसार', 'रोष' से 'रोस', 'शेष' से 'सेस' और 'दोष' से 'दोस', 'मनुष्यता' से 'मनुसाई', कहीं-कहीं शब्दों के आरम्भ में 'ष' को 'छ' कर दिया गया है; जैसे—'षष्ठ' से 'छट्ठ'। 'ष' के साथ 'ट' अथवा 'ठ' का संयोग होने पर दोनों स्थानों में एक रूप 'ठ' कर दिया गया है और पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ कर दिया गया है; जैसे—'दृष्ट' से 'दीठा', 'अष्ट' से 'आठ', 'मुष्टि' से 'मूठी' और 'पृष्ठ' से 'पीठि' आदि।

२५—व के प्रथम किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर 'व' के स्थान में कहीं-कहीं और 'उ' कहीं 'ओ' कर दिया गया है; जैसे 'स्वभाव' से 'सुभाउ' 'त्वरित' से 'तुरित' 'स्वरावती' से 'तोरावति' कहीं-कहीं ऐसे स्थानों में 'व' का लोप भी कर दिया गया है जैसे-'श्वसुर' से 'ससुर' 'सरस्वती' से 'सरसइ' 'जिह्वा' से 'जीहा' 'पार्श्व' से 'पास' 'तेजस्वी' से 'तेजसी' और कहीं-कहीं शब्दों के मध्यवर्ती 'व' का भी लोप करके उसके साथ का स्वर मात्र रखा गया है, जैसे—'भुवन' का 'भुअन'।

२६—कहीं-कहीं शब्दों के आरम्भ अथवा मध्य के 'ल' के स्थान में 'न' कर दिया गया है; जैसे—'पलास' से 'पनास' और 'लंघ' से 'नाघना'। कहीं-

कहीं इसके विपरीत 'न' के स्थान में 'ल' का प्रयोग हो गया है; जैसे—'नौका' से 'लोका' आदि। शब्दों के मध्यवर्ती एवं पदान्त के 'ल' के स्थान 'र' का प्रयोग हुआ है; जैसे—'काली' से 'कारी' 'विकराल' से 'बिकरार', 'कदली' से 'कदरी', 'अन्त्रावली' से 'अंतावरी' 'शीतल' से सिअर' आदि

२७ रेफ के आगे किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर कभी-कभी रेफ का लोप कर दिया जाता है. और पूर्ववर्ती स्वर को प्रायःदीर्घ कर दिया जाता है, जैसे 'वर्ति' से 'बाती' 'कीर्त्ति' से 'कीती' 'सर्व' से 'सब' तथा 'कार्य' से 'काज' हुआ है। रेफ अथवा 'ऋ' के परवर्त्ती 'त' 'थ' अथवा 'द्ध' को कभी-कभी क्रमशः 'ट' और 'ट' के रूप में बदल दिया गया है और 'ट' एवं 'ट' के संयुक्त रेफ अथवा अन्य किसी व्यंजन को भी क्रमशः 'ट' अथवा 'ढ' कर दिया गया है; जैसे 'वर्त्म' का 'वट्ट' 'शाद्व' का 'सड्ढ' 'वृद्ध' का 'बुड्ढ'। रेफ के पीछे 'प' का संयोग होने पर कभी-कभी, 'प' के स्थान में 'प' का प्रयोग है, जैसे 'सर्प' से 'सप्प' 'खर्पर' से 'खप्पर'। रेफ के आगे 'य' अथवा 'म' का संयोग होने पर कहीं-कहीं रेफ 'य' के पूर्ववर्त्ती व्यंजन के आगे संयुक्त हो गया है,—'पर्यंत' से प्रयंत 'तिर्यक' (पशु-पक्षी आदि योनि) से 'त्रिजग' 'कर्म' से 'क्रम' हो गया है।

२८—उकारान्त विशेषण शब्दों के आगे पुल्लिग में 'अ' और स्त्रीलिंग में 'इ' या 'ई' जोड़ा गया है; जैसे—'करु' (कटु) से 'करुअ', 'हरु' से 'हरुअ', या 'हरुइ' 'गुरु' से 'गरुअ' अथवा 'गरुइ' आदि।

२९—'र' के पूर्व किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर 'र' का प्राय: लोप हो गया है. जैसे 'प्रन' से 'पन', 'त्रिय' से 'तिय' 'प्रिय' से 'पिय' 'प्रेम' से 'पेम', 'प्रयाग' से 'पयाग', 'प्रयाण' से 'पयान', 'अन्यत्र' से 'अनत', 'गात्र' से 'गात' और 'द्रोह' से 'दोह'। पदान्त के 'य' के अव्यवहित पूर्व में आनेवाले 'इ' को कहीं-कहीं दीर्घ करके 'य' का लोप कर दिया गया है; जैसे—'त्रिय' (स्त्री) का 'ती', 'पिय' (पति) का 'पी', 'हिय' (हृदय) का 'ही', 'हुनिय' (हुनिअ) का 'हुनी', 'पाइय' (पाइअ) का 'पाई' हो गया है।

३०—'य' के पूर्व किसी कि और वर्ण का संयोग होने पर कभी-कभी 'य' का लोप हो गया है, जैसे 'स्पन्दन' का 'संदन', 'अन्यत्र' का 'अनत', 'ज्योति' का 'जोति', 'नारिकेल' का 'नारिकेर', 'श्यामल' का 'सांवरो', 'स्यन्द' का

'सावकरन' किया गया है। कहीं-कहीं ऐसे शब्दों में 'य' के स्थान में 'इ' कर दिया गया है और वह उसके पूर्ववर्ती व्यंजन में मिल गया है जैसे—'अगस्त्य से 'अगस्ति', 'अवश्य' से 'अवसि', 'विन्ध्य' से विधि', 'व्यंजन' से 'बिजन' 'सत्य' से 'सति', व्यवहार' से 'बिय्य', 'सत्यभावा से 'सतिभाल' 'व्यवहार' से 'बिहार' आदि।

३१—कहीं-कहीं शब्दों के मध्यवर्ती अथवा पदान्त के 'य' का लोप होकर उनके साथ का स्वर मात्र शेष रह गया है, जैसे 'विषयी' का 'विसई', 'विजयी' का 'बिजई', 'यातनामयी' का 'जातनामई', 'वायु' का 'बाउ', 'पीयूष' का 'पीऊष' तथा कहीं-कहीं 'य' के स्थान में 'इ' हो गया है; जैसे—'समुदाय' का 'समुदाई', 'विस्मयक' का 'बिसइक', 'सहाय' का 'सहाइ' आदि।

३२—शब्दों के मध्यवर्ती एवं पदान्त के 'म' के स्थान में 'व' का कहीं-कहीं प्रयोग कर दिया गया है, जैसे—'प्रमान' से 'प्रवान', 'गमन' से 'गवन', 'दमन' से 'दवन' आदि। इसके विपरीत कहीं-कहीं 'व' के स्थान में 'म' कर दिया गया है, जैसे 'यवन' के स्थान पर 'यमन', 'यवनिका' के स्थान पर 'जमनिका' कर दिया गया है। कहीं-कहीं 'म' के स्थान में व भी कर दिया है, जैसे 'आम्र' से 'आँव' आदि।

३२—कहीं-कहीं शब्दों के मध्यवर्ती और पदान्त के 'भ' के स्थान में 'ह' कर दिया गया है, जैसे 'सौभाग्य' से 'सोहाग', 'लाभ' से 'लाह' आदि। इसी प्रकार शब्दों के मध्यवर्ती 'फ' के स्थान में 'ह' कर दिया दिया गया है जैसे—'मुक्ताफल' से 'मुकताहल'।

३२—कहीं कहीं शब्दों के मध्यवर्ती अथवा पदान्त के 'द' का लोप होकर उसके साथ का स्वरमात्र शेष रह गया है, जैसे 'हृदय' का 'हियउ' अथवा 'हिअ 'प्रस्वेद' से 'पसेउ' 'भेदु' से 'भेउ' आदि।

गोस्वामीजी की रचना में भाषा और शब्दों के विविध रूपों को इस प्रकार देखकर कहना पड़ेगा, कि उनकी रचना दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जितना महत्व रखती है, उससे अधिक महत्व उसका भाषा के दृष्टिकोण से भी है।